कालिदास

वा. वि. मिराशी

पॉप्युलर प्रकाशन, बम्बई

कालिदास

का लि दा स

महामहोपाध्याय डॉ. वासुदेव विष्णु मिराशी
एम्. ए., डी. लीट्.

पॉप्युलर प्रकाशन, बम्बई

तृतीय संशोधित संस्करण : १९६७

मुद्रक : धीरूभाई जे. देसाई, स्टेट्स पीपल प्रेस, जन्मभूमि भवन, घोगा स्ट्रीट, बम्बई १.
प्रकाशक : ग. रा. भटकळ, पॉप्युलर प्रकाशन, ३५ सी ताडदेव रोड, बम्बई ३४ डब्ल्यु बी.

समर्पण

मध्यप्रदेश के सुप्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता

और

हिन्दी साहित्य के सन्मान्य लेखक

स्वर्गीय डॉ. हिरालालजी की

पुण्यस्मृति में

प्रास्ताविक

प्रस्तुत पुस्तक नागपुरकी प्रसिद्ध 'नवभारत ग्रंथमाला' में प्रकाशित मराठी पुस्तकका अनुवाद है। हिन्दी जनता कालिदासके काव्यों और नाटकोंसे अपरिचित नहीं है। आजतक उनके काव्य और नाटकोंके अनेक अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। पं. महावीरप्रसादजी द्विवेदीने कालिदासकी कविताके गुणदोषोंपर भी समालोचनात्मक रीतिसे बहुत कुछ लिखा है। किन्तु कालिदाससम्बन्धी सभी विषयोंपर व्यापक रूपसे सर्वाङ्गीण विवेचन करनेवाले ग्रन्थका अभी तक हिन्दी साहित्यमें ही नहीं किन्तु अन्य भारतीय और विदेशीय साहित्यमें भी जहाँ तक मैं जानता हूँ – अभाव ही है।

कालिदासके जन्मस्थान और समयसम्बन्धी विवादग्रस्त प्रश्नोंका विचार अनेक विद्वानोंने किया है। फिर भी वे प्रश्न अभी तक अनिश्चित ही है। इसीलिए प्रस्तुत पुस्तक में उन प्रश्नोंके विषयमें केवल अपना ही मत न देकर आज तक इस विषयमें प्रतिपादित प्रधान मतोंका उल्लेख तथा तर्क और युक्तियोंका ऊहापोहपूर्वक विवेचन किया गया है। इसलिए आशा है पाठकोंको अपना मत निश्चित करनेमें सहायता मिलेगी। साथ ही मुझे विश्वास है कि संस्कृतज्ञ पाठकोंको प्रस्तुत पुस्तकका यह भाग मनोरञ्जक तथा महत्त्वपूर्ण प्रतीत होगा। अन्य पाठकोंको भी सरल रीतिसे कालिदासकी कविताका रसास्वादन हो इसलिए कालिदासकालीन परिस्थिति, तथा उनके काव्य और नाटकोंके विषयमें भी विस्तारपूर्वक लिखा गया है। यदि इन विषयोंको पाठकगण पहले ही पढ़ लेंगे तो अन्य भागोंके समझनेमें कठिनाई न पड़ेगी।

कालिदासके विषयमें मिले हुए सभी ग्रन्थों और लेखोंका उपयोग प्रस्तुत पुस्तकमें किया गया है। इसका निर्देश मैंने उन उन स्थलोंपर कृतज्ञतापूर्वक किया है। जिज्ञासु पाठक सत्यासत्यके निर्णयका स्वयं परीक्षण कर सकें इसलिए फुटनोटमें स्थलनिर्देश भी मैंने कर दिया है। इस पुस्तकमें अन्वेषकोंके मतोंका केवल उल्लेख नहीं है किन्तु उन विषयोंपर मैंने नवीन अन्वेषण, मौलिक विचार और स्वतन्त्र मत देनेका प्रयत्न किया है। मुझे दृढ विश्वास है कि बहुश्रुत और अध्ययनशील पाठकोंको यह पसन्द आयगा।

प्रस्तुत अनुवाद करनेका श्रेय पं. हृषीकेश शर्मा, भारतीय साहित्यपरिषद् वर्धाको है। इसलिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ। साथ ही उस अनुवादको सुसंस्कृत करनेमें प्रो. सरस्वतीप्रसाद चतुर्वेदी, मॉरिस कालेज, नागपुर, तथा पं. उदयशंकर भट्ट, लाहौरने जो सहायता दी है उसका कृतज्ञतापूर्वक उल्लेख करना आवश्यक है। लाहौरके प्रसिद्ध संस्कृत-हिन्दी-प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदासने इस पुस्तकको प्रकाशनार्थ स्वीकार किया, तदर्थ वे भी धन्यवादार्ह हैं।

नागपुर विश्वविद्यालय, **वा० वि० मिराशी**
नाग पंचमी, संवत् १९७५.

द्वितीय संस्करण

गत पंद्रह-बीस वर्षोंमें जो कालिदास-कालविषयक अनुसन्धान हुआ है उसका भी अन्तर्भाव प्रस्तुत संस्करणमें कर दिया गया है। इसमें मेरे मित्र प्रा. शुकदेव-प्रसादजी तिवारीने मुझे सहायता दी, इसलिए मैं उनका ऋणी हूँ। बम्बईके सुविख्यात प्रकाशक श्री नाथूरामजी प्रेमीने इस संस्करणको प्रकाशनार्थ स्वीकार किया और कुछ उपयुक्त सूचनाएँ दीं, तदर्थ मैं उनको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

नागपुर, **वा० वि० मिराशी**
अक्षय तृतीया, संवत् २०१२.

तृतीय संस्करण

इस संस्करण में अवशिष्ट अशुद्धियां निकालकर कालिदासविषयक अद्ययावत् अनुसंधान का अन्तर्भाव किया है। इसम मेरे मित्र डॉ. अजयमित्र शास्त्री का साहाय्य हुआ है, तदर्थ मैं उनका आभारी हूँ। बम्बई के सुप्रसिद्ध प्रकाशक श्री रामदासजी भटकल ने इस संस्करण को प्रकाशनार्थ स्वीकार किया एतदर्थ मैं उनका कृतज्ञ हूं।

नागपुर **वा० वि० मिराशी**
आश्विन शुक्ल प्रतिपदा
विक्रमसंवत् २०२२

अनुक्रमणिका

कालिदास

१–काल-निर्णय

'ख्यातिं कामपि कालिदासकृतयो नीताः शकारातिना।'

(शकारि विक्रमादित्यने कालिदासकी कृतियोंको अत्यन्त प्रसिद्धि दी।)

—अभिनन्दकृत रामचरित.

हमारा संस्कृत साहित्य अत्यन्त सम्पन्न और अगाध है। वेद, वेदांग, उपनिषद्, दर्शन, पुराण, धर्मशास्त्र, काव्य, नाटक, इत्यादि विविध विषयोंके सैकड़ों ग्रन्थ अब तक प्रकाशित हो चुके हैं और सैकड़ों ग्रन्थ अब भी हस्तलिखित रूपमें किसी प्रकाशककी कृपादृष्टिकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त हमारे सैकड़ों अनमोल ग्रन्थ विधिकी विडम्बनासे अकालहीमें काल-कवलित हो चुके हैं। हजारों वर्षोंतक अनेक विद्वान् लेखकोंने अपना अपार बुद्धि-वैभव व्यय करके इस विशाल ग्रन्थ-भण्डारको शास्त्र-सम्पत्तिसे भरा है। यह सब होते हुए भी इस विशाल भण्डारमें ऐतिहासिक ग्रन्थोंका अभाव प्रत्येक संस्कृत साहित्य-प्रेमीको खटकता है। यह बात नहीं कि ऐतिहासिक ग्रन्थ हमारे यहाँ हैं ही नहीं। हैं अवश्य; उदाहरणार्थ कल्हण कविकी 'राजतरंगिणी', बाण कविका 'हर्षचरित', पद्मगुप्तका 'नवसाहसाङ्कचरित', और बिल्हण कविका 'विक्रमाङ्कदेव-चरित'। अंगुलियोंपर गिनने लायक ये कुछ ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं। परन्तु इनमेंसे यथार्थ ऐतिहासिक सामग्रीका निकालना कष्ट-साध्य है। क्योंकि इनमें अंट-संट घटनाओं, विचित्र कथा-प्रबन्धों और अतिशयोक्तियोंकी इतनी भरमार है कि उनमेंसे ऐतिहासिक सत्यको ढूँढ निकालना असम्भव-सा है। जब हमें अपने प्रतापी प्राचीन सम्राट् अशोक, विक्रमादित्य, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त, भोज, इत्यादि के शासन-कालकी खास खास घटनाओं तथा उनके गुण-दोषोंका पूरा पूरा पता नहीं, तब उनके आश्रित कवियों, लेखकों और कलाकारोंके सम्बन्धमें प्रामाणिक जानकारी प्राप्त कर लेना तो और भी कठिन है। भवभूति, बाण, राजशेखर, बिल्हण आदि कवियोंने स्व-रचित ग्रन्थोंमें अपने वंश, पाण्डित्य और आश्रयदाताके सम्ब-न्धमें थोडाबहुत उल्लेख अवश्य किया है; पर उससे आधुनिक युगके पुरातत्त्व-प्रेमी

पाठकको सन्तोष नहीं होता। फिर भी जिन्होंने अपने विषयमें एक अक्षर तक नहीं लिखा, उन कवियोंकी अपेक्षा इन कवियोंने दिया हुआ अपना अल्प-परिचय ऐतिहासिक आधारके लिए बहुत सहायक है। अगर इन कवियोंने 'अहम्मन्यता'का दोष स्वीकार करके अपने ग्रन्थोंमें अपना थोड़ा-बहुत परिचय न दिया होता तो उनके कालका भी निर्णय करनेमें विवाद बना रहता; क्योंकि यह निश्चय है कि समकालीन लेखकों द्वारा उनके जीवनकालमें अथवा मृत्युके बाद उनकी कितनी ही प्रशंसा की गई हो फिर भी उनका 'जीवन-चरित' लिखना किसीको न सूझता।

कालिदासकी ही बातको लीजिए। संसारके प्रायः समस्त प्राचीन और अर्वाचीन देशी विदेशी विद्वानोंने उनकी मुक्त कंठसे प्रशंसा की है और उनको 'कविकुलगुरु' की उपाधिसे संमानित कर संस्कृत कवियोंमें सर्वोच्च स्थान दिया है। यही क्यों, उन्हें संसारके साहित्य सम्राटोंकी श्रेणीमें बिठाया है। बतलाइए, इस महाकविके वंश, जन्म-चरित्र, स्वभाव, योग्यता आदिके बारेमें जानने लायक विश्वसनीय सामग्री हमें अपने प्राचीन साहित्य भण्डारसे कितनी उपलब्ध होगी? स्वयं अत्यन्त विनयी होनेके कारण उन्होंने स्व-रचित नाटकोंमें प्राचीन पद्धतिका अनुसरण कर केवल अपना नाम-निर्देश किया है। परन्तु स्व-रचित काव्योंमें तो यह भी छोड़ दिया है। कालिदासकी इस निःस्पृहताका कुछ ठिकाना है? वे जिस सहृदय रसिक राजाके आश्रयमें रहे, उसके सम्बन्धमें उन्होंने धन-लालसासे प्रेरित होकर एक भी प्रशस्ति-पंक्ति तक नहीं लिखी। यदि परोक्षभावसे किये हुए उल्लेखोंको छोड़ दें, तो अपने नामकी तरह आश्रयदाताके नामका भी उन्होंने कहीं अपने ग्रन्थोंमें उल्लेख नहीं किया है। अपने यहाँ देशकी महान् विभूतियों, विश्व-विजयी सम्राटों तथा महाकवियोंके जीवनचरित्र लिखनेकी प्रथा न होनेके कारण उनकी मृत्युके बाद शीघ्र ही उनके चरित्रकी ऐतिहासिक सामग्री लुप्त हो गई और उस ऐतिहासिकताका स्थान बे-सिरपैरकी दन्तकथाओंने ले लिया। संस्कृतमें बल्लाल कविका 'भोज-प्रबन्ध' ऐसी ही मनगढ़ंत कथाओंका गट्ठड़ है। काव्यकलाकी दृष्टिसे इसकी शब्दयोजना में भले ही माधुर्य हो और अर्थवैशद्यमें सौन्दर्य हो, परन्तु इतिहासकी कसौटीपर यह खरा नहीं उतरता। 'भोज-प्रबन्ध' का रचना-काल सोलहवीं शताब्दी है। यह कालिदासके सैकड़ों वर्षों बाद लिखा गया था। इसलिए इसका ऐतिहासिक महत्त्व या मूल्य बहुत ही कम है — आश्चर्य तो यह है कि भिन्न-कालीन कवियोंको एक ही समयमें और एक ही कतारमें बल्लालने लाकर खड़ा कर दिया है। भोजके दरबारमें कालिदास, भवभूति,

भारवि, दण्डी, वाण, इन सबको आप समस्या-पूर्ति करते हुए पाएंगे। इन कवियोंका आश्रय-दाता प्रसिद्ध धाराधीश भोज भी उक्त कवियोंके कई सौ वर्ष वाद ११ वीं सदीमें हुआ था, यह तो उसके ताम्र-पत्रोंसे ही सिद्ध हो चुका है। अब पाठक स्वयं इसका निर्णय करें कि कवियोंके काल-निर्णय करने में उक्त 'प्रबन्ध' कितना अविश्वसनीय है।

परम्परागत विश्वसनीय सामग्रीके अभावमें कालिदासके जन्म-स्थान, स्थिति-काल तथा चरित्रके सम्बन्धमें अनेकोंने अनेक तरहकी मनमानी कल्पनाएँ की हैं। इन सब प्रश्नोंमें उनका स्थिति-काल एक अत्यन्त विवादग्रस्त विषय है, साथ ही वह अत्यन्त महत्त्वका और अन्य सब प्रश्नोंका विवेचन करनेमें आधारभूत भी है। इससे प्रस्तुत परिच्छेदमें इसी विषयका विचार किया जायगा।

कालिदासके कालकी दो स्पष्ट सीमायें विद्वानोंने मानी हैं। कालिदासने अपने 'मालविकाग्निमित्र' नाटकका कथानक शुंगवंशीय राजा अग्निमित्रके चरित्रसे लिया है। यह अग्निमित्र मौर्यवंशका उच्छेद कर मगध साम्राज्य को छीननेवाले सेनापति पुष्यमित्रका पुत्र था। इसका समय ईसासे लगभग १५० वर्ष पूर्व विद्वानोंने निर्धारित किया है। तव कालिदासका समय इससे पहले नहीं हो सकता। कालिदासके नामका स्पष्ट उल्लेख पहले पहले कन्नौजके सम्राट हर्षके (ई. स. ६०६–६४७) आश्रित प्रसिद्ध संस्कृत महाकवि वाणभट्टकृत हर्षचरितकी प्रस्तावनामें और दक्षिणभारतके 'ऐहोले' नामक ग्राममें प्राप्त हुई शिलापर (ई. स. ६३४) खुदी हुई प्रशस्तिमें आया है। ये दोनों उल्लेख ईसाकी सातवीं शताब्दीके हैं। इससे इसके वाद कालिदासका काल नहीं हो सकता। इन दो सीमाओं में कालिदासके स्थिति-कालके विषयमें निम्न-लिखित मत प्रस्तुत किये जाते हैं :—

(१) ईसापूर्व दूसरी शताब्दी (डॉ. कुन्हन राजा); (२) ईसाकी पहली शताब्दी (श्री. चिंतामणि वैद्य); (३) ईसाकी तीसरी शताब्दी (श्री. द. वें. केतकर); (४) ईसाकी चौथी शताब्दीका उत्तरार्ध (डॉ. सर रामकृष्ण भाण्डारकर आदि भारतीय तथा अनेक यूरोपियन विद्वान); (५) ईसाकी पांचवी शताब्दी (प्रो. पाठक); (६) ईसाकी छठी शताब्दी (प्रो. मॅक्समूलर, महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री, प्रा. प्रवोधचन्द्र सेनगुप्त)। ये मत जिस प्रमाणों की भित्तिपर अधिष्ठित हैं, उनकी छानबीन उपलब्ध प्रमाणोंके आधारपर नीचे की जा रही है।

(१) ईसासे पूर्व द्वितीय शताब्दी

'मालविकाग्निमित्र' नाटकके भरतवाक्यमें—

आशास्यमीतिविगमप्रभृति प्रजानां सम्पत्स्यते न खलु गोप्तरि नाग्निमित्रे ।।
यह शुंगकुलोत्पन्न अग्निमित्र राजाका उल्लेख आया है। प्राय: भरतवाक्यमें शान्तता, समृद्धि, सौराज्यके विषयमें प्रार्थना होती है। क्वचित् राजाका निर्देश भी दिखाई देता है, और वह तत्कालीन राजाका निदर्शक माना जाता है। 'मालविकाग्निमित्र' का भरतवाक्य दूसरे प्रकारका है। इससे डॉ. कुन्हन राजाने अनुमान किया है कि कालिदास ईसासे पूर्व द्वितीय शताब्दीमें विदिशाके राजा अग्निमित्रके आश्रित थे। इस मतके पोषक कुछ अन्य प्रमाण भी उन्होंने दिये हैं। उनमेंसे एक यह है कि कालिदासने 'मेघदूत' में 'तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीम्।' (दशार्ण देशकी सर्वत्र प्रसिद्ध विदिशा नामक राजधानी) इन शब्दोंमें जो विदिशाका वर्णन किया है वह शुंगकालीन विदिशाहीको ठीक लागू होता है।

किन्तु यह मत ठीक नहीं जान पड़ता। 'मालविकाग्निमित्र' कालिदासका प्रथम नाटक है। जो नाटक निश्चितरूपसे कालिदास-पूर्वकालीन माने जा सकते हैं वे अत्यन्त विरल हैं, और जो विद्यमान हैं उनमेंसे बहुत से त्रुटित या संक्षिप्त रूपमें उपलब्ध हैं। अत: उनके आधार पर कालिदास-कालमें भरतवाक्यकी कौन-सी प्रथा प्रचलित थी यह नहीं कहा जा सकता। कालिदासके अन्य दो नाटकोंका भरतवाक्य सामान्य पद्धतिका है। अत: केवल 'मालविकाग्निमित्र' के भरतवाक्यके आधारपर कालिदास अग्निमित्रके समसामयिक थे, यह अनुमान निश्चितरूपसे नहीं निकल सकता। दूसरी बात यह कि अत्यन्त पुरातन आख्यायिकाके अनुसार कालिदास किसी विक्रमादित्यके आश्रित थे। किन्तु अग्निमित्रने यह पदवी धारण की थी, इसका कोई भी आधार नहीं है। विदिशाका महत्त्व गुप्त कालमें भी अबाधित रहा था, यह भेलसा (प्राचीन विदिशा) के पास उदयगिरि (प्राचीन नीचैर्गिरि) की गुफाएँ, शिल्प और उत्कीर्ण लेखोंके प्रमाणसे सिद्ध है। अत: मेघदूतका विदिशावर्णन भी इस मतको पुष्ट नहीं करता।

(२) ईसासे पूर्व पहली शताब्दी

(अ) प्राचीन पण्डितोंमें परंपरासे यह बात प्रचलित है कि कालिदास विक्रमादित्यकी राज-सभाके कवि थे। कालिदासने अपने 'विक्रमोर्वशीय' नाटकके नामकरणमें और नाटकके पात्रोंके सम्भाषणमें दो स्थानोंपर* विक्रम शब्दका सहेतुक उपयोग किया है। जिस प्रकार शेक्सपीयरने अपने नाटकोंमें इंग्लैंडके जेम्स

*'दिष्टया महेन्द्रोपकारपर्याप्तेन विक्रममहिम्ना वर्धते भवान्'—विक्रमोर्वशीय, अंक १।
'अनुत्सेक: खलु विक्रमालंकार:'।—विक्रमोर्वशीय, अंक १।

राजाका उल्लेख किया है, उसी प्रकार कालिदासने भी अपने आश्रयदाताका श्लिष्ट-पदगर्भित उल्लेख किया है। इससे यह अनुमान निकलता है कि वे किसी विक्रमादित्य-नामधारी राजाके दरबार में थे। लोगोंकी धारणा है कि आजकलका प्रचलित विक्रम नामक संवत्सर इसी विक्रमादित्य राजाका चलाया हुआ है। यह विक्रम संवत् ईसासे ५७ वर्ष पहले चला था। अतः कालिदास ईसासे पूर्व प्रथम शताब्दीमें हुए थे, यह प्राचीनोंका मत है और इसकी पुष्टि श्री. चिं. वैद्य, प्रो. आपटे, प्रो. शारदारंजन राय, प्रोफेसर क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय, प्रो. शेंबवणेकर आदि विद्वानोंने की है। इस मतके समर्थनमें इन विद्वानोंने जो प्रमाण दिये हैं, उनमेंसे कुछ मुख्य प्रमाणोंका विवेचन हम आगे करेंगे, परन्तु इस मतपर हमारा पहला आक्षेप यह है कि ईसापूर्व पहली शताब्दीमें विक्रमादित्य नामका कोई राजा हुआ, इसका निश्चित प्रमाण अबतक नहीं मिला है। इस राजासे पूर्वकालीन अशोक आदि प्राचीन राजाओंके शिला-लेख मिलते हैं। लेकिन विक्रमादित्य-नामधारी राजाके शिला-लेखका कहीं पता नहीं लगता। संस्कृत और प्राकृत भाषाके साहित्यमें कहीं कहीं विक्रमादित्यका थोड़ा बहुत उल्लेख मिलता है। उदाहरणार्थ, 'गाथासप्तशती' या 'सत्तसई' में विक्रमादित्यकी दानशीलताका, तथा कथासरित्सागर और बृहत्कथामञ्जरीमें भूतवेतालोंपर उसकी विजयका वर्णन मिलता है। जैन कथाओंमें भी विक्रमका, जिसने शकोंको परास्त किया था, उल्लेख है। परन्तु 'सत्तसई' में अनेक उत्तरकालीन गाथाओं का समावेश है और ईसाकी कई शताब्दी बाद उक्त अन्य ग्रन्थोंका निर्माण हुआ है। इस कारण इनमें लिखी बातोंपर हमें कहाँ तक विश्वास करना चाहिए, यह एक जटिल समस्या है। दूसरी बात यह है कि ऐतिहासिकोंने प्राचीन इतिहासकी जो रूपरेखा खींची है, उसमें विक्रमादित्यको कहीं-पर स्थान नहीं दिया गया है। ईसासे पहले, प्रथम शताब्दीमें शकोंने हिन्दुस्तान–पर आक्रमण किया और काठियावाड़, मालवा, महाराष्ट्र, कोंकण आदि प्रदेशोंको अपने अधिकारमें कर लिया। क्षत्रप नहपान तथा उसके जामाता ऋषभदत्त (प्राकृत, उषवदात) इन दोनोंके शिलालेख नासिक, कार्ले आदि स्थानोमें प्राप्त हुए हैं, जिनमें इन घटनाओंका वर्णन है। परन्तु जिसने इस नहपानका पराभव कर शकोंको इन प्रान्तोंसे मार भगाया उस गौतमी-पुत्र सातकर्णीने 'विक्रमादित्य' पदवी धारण की तथा अपने नामका एक 'संवत्' भी प्रचलित किया, इस बातका उन लेखोंमें कहीं भी जिक्र नहीं आया है। इसके अतिरिक्त एक बात यह भी है कि ईसासे पूर्व प्रथम शताब्दीमें यदि विक्रमादित्य-नामधारी कोई व्यक्ति होता, जो इस संवत्का प्रवर्तक होता, तो उसका नाम शीघ्र ही उससे सम्बद्ध हो गया होता, पर वस्तुस्थिति कुछ

और ही है। 'विक्रमकाल' सामासिक पद 'एक खास संवत्' के अर्थमें पहले पहल ईसाकी नवम शताब्दीमें प्रयुक्त हुआ दीख पड़ता है। और इस 'विक्रम' पदसे विक्रमादित्यका ही मतलब निकलता है, इसमें हमें शंका है। अमितगतिके 'सुभाषित-रत्नसंदोह' में, जो विक्रम संवत् १०५० में लिखा गया था, 'विक्रम' शब्द विक्रमादित्य राजाके अर्थमें पहले पहल निःसन्देह रूपसे प्रयुक्त हुआ है। प्रोफेसर कीलहॉर्नने यह निष्कर्ष निकाला है कि इस संवत्को किसी विक्रमादित्यने शुरू नहीं किया; बल्कि उसका नाम धीरे-धीरे इस संवत्से सम्बद्ध हो गया। इसका कारण यह है कि जैसे 'शालिवाहन शक संवत्' का आरम्भ चैत्र मासमें होता है उसी प्रकार विक्रम संवत्का आरम्भ शरद् ऋतु अर्थात् कार्त्तिक मासमें होता था। इस ऋतुमें राजा लोग युद्धके लिए प्रस्थान करते थे, इस कारण उस ऋतुको 'विक्रम-काल' का नाम दिया गया। इस अर्थमें हर्षचरित आदि अनेक ग्रन्थोंमें 'विक्रम' शब्दका प्रयोग किया गया है। शरद् ऋतुमें आरम्भ होना ही विक्रम-संवत्की एक विशेपता हो गई। उसीको लोग विक्रम-काल कहने लगे। आगे इस सामासिक शब्दका ठीक अर्थ समझमें न आनेसे लोग उस शब्दका 'विक्रमादित्यका चलाया हुआ संवत्' इस अर्थमें उपयोग करने लगे। इस तरह विक्रमादित्यका नाम धीरे-धीरे प्रचलित संवत्सरके साथ जुड़ गया। दूसरे विद्वानोंके मतमें यह संवत् मालव देशमें बहुत वर्षों तक प्रचलित रहा और उस प्रान्तमें चौथी शताब्दीमें प्रसिद्ध पराक्रमी, दानशूर महाराज द्वितीय चन्द्रगुप्तने विक्रमादित्यकी पदवी धारण कर राज्य किया। आगे चलकर कई शताब्दी बाद जब इस संवत्का आरम्भ किसने किस तरहसे किया, इसका लोगोंको ध्यान नहीं रहा, तब विक्रमादित्यके नामसे उसका सबन्ध जोड़ दिया गया होगा। उपर्युक्त दोनों मतोंमेंसे किसीको भी स्वीकार करें तो भी विक्रमादित्यने यह संवत् जारी किया, ऐसी धारणा ईसवी नवम शताब्दी तक नहीं थी, यह बात स्पष्ट है। संवत् २८२, २८४, २९५, ३३५, ४२८, ४६१, ४८१, ४९३, ५२९, ५८९ के अभि-लेखोंमें इस संवत्का सर्व प्रथम उल्लेख पाया जाता है। इनमें इस संवत्का नाम 'कृत' दिया है या 'मालवानां गणस्थित्या,' 'श्रीमालवगणाम्नाते,' 'मालवगणस्थितिवशात्' ऐसी शब्दयोजना करके उसका उल्लेख किया है, इससे इस संवत्का प्रचार मालवगणसे हुआ होगा ऐसा अनुमान होता है। पाणिनिकी अष्टाध्यायी (अ. ५, पा. ३, सू. ११४) से पता चलता है कि प्राचीन कालमें मालव लोगोंका एक ऐसा संघ था जो हथियार बाँध कर युद्धद्वारा अपनी आजीविका करता था। ये लोग वेतन लेकर किसी भी पक्षकी ओरसे लड़ते थे। सिकन्दरको ये लड़ाकू योद्धा पंजाबमें मिले थे। बादमें ये पंजाब छोड़ कर धीरे-धीरे दक्षिणकी ओर बढ़ते गये और आजके मालवा प्रान्तकी उत्तरकी

ओर उन्होंने एक गण अर्थात् प्रजासत्तात्मक राज्य स्थापित किया और अपने नामसे सिक्का भी चलाया। ऐसे सैकड़ों सिक्के राजस्थानके 'नगर' नामक ग्राममें पाये गये हैं। उनमेंसे कई सिक्कोंपर 'मालवानां जयः' अथवा 'मालवगणस्य जयः' ऐसे लेख पाये जाते हैं। इससे सुप्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता काशीप्रसाद जायसवालने यह अनुमान निकाला है कि उन्होंने तत्कालीन किसी प्रबल शत्रु पर (सम्भवतः शकों पर) विजय पाई, तथा अपने गणराज्यकी स्थापना करके किसी प्रबल शत्रुपर प्राप्त विजयकी यादगारमें यह संवत् चला दिया। बादमें वे स्वयं मालवेमें आकर रहने लगे। होते होते लोग इस संवत्का व्यवहार करने लगे। वस्तुतः यह संवत् मालवगणका ही है, यह बात जब तक लोगोंके ध्यानमें रही तब तक, अर्थात् ईसाकी छठी शताब्दी तक, मालवोंका नाम इस संवत्के साथ जुड़ा रहा।

उपर्युक्त विवेचनसे पाठकोंके ध्यानमें यह बात आ गई होगी कि ईसासे पूर्व प्रथम शताब्दीमें विक्रमादित्य नामक राजाके आधुनिक विक्रम-संवत् चलानेकी धारणा निराधार है। ईसासे पूर्व पहली शताब्दीमें विक्रम राजाका अस्तित्व ही जब संशयग्रस्त है तब कालीदासकी स्थिति उस कालमें संभव नहीं। कारण, उनका आश्रयदाता कोई विक्रमादित्य नामधारी राजा था, यह बात उनके ग्रन्थान्तर्गत उल्लेखोंसे विदित होती है, यह हम पहले ही कह चुके हैं। अब इस मतकी पुष्टिके लिये जो इतर प्रमाण दिये जाते हैं उनमेंसे कुछ महत्त्वपूर्ण प्रमाणोंकी परीक्षा की जायगी।

(आ) रघुवंशके छठे सर्गमें इन्दुमती-स्वयंवरके वर्णनमें निम्नलिखित श्लोक आये हैं :–

अथोरगाख्यस्य पुरस्य नाथं दौवारिकी देवसरूपमेत्य।
इतश्चकोराक्षि विलोकयेति पूर्वानुशिष्टां निजगाद भोज्याम् ॥५६॥
पाण्डचोऽयमंसार्पितलम्बहारः क्लृप्ताङ्गरागो हरिचन्दनेन ॥
आभाति बालातपरक्तसानुः सनिर्झरोद्गार इवाद्रिराजः ॥६०॥

उक्त श्लोकोंमें पाण्डच राजा उरगपुरमें राज्य करते थे ऐसा उल्लेख है। आगे ६३ वें श्लोकमें 'इस पाण्डच राजासे तू विवाह करके दक्षिण दिशाकी सपत्नी बन'* यह उपदेश इन्दुमतीकी सखी सुनन्दाने उसे दिया है। इसी तरह चौथे सर्गके ४९ वें श्लोकमें 'रघुने दक्षिण दिशामें पाण्डचोंको पराजित किया' ऐसा कविने उल्लेख किया है। कई बार यह देखा गया है कि असावधानीके कारण बड़े बड़े कवि भी ऐतिहासिक काल-विपर्यास (Anachronism) को भूल कर डालते हैं और अज्ञानवश अपने समयकी परिस्थितिका वर्णन कर बैठते हैं। काव्य-शास्त्रकी दृष्टिसे तो यह

* 'रत्नानुविद्धार्णवमेखलाया दिशः सपत्नी भव दक्षिणस्याः।'

दोप समझा जाता है परन्तु इसके लिये इतिहासज्ञ प्राचीन संस्कृत कवियोंको धन्यवाद देते हैं। कारण यह है कि कई बार ऐसे ही स्थलोंपर कविके काल-निर्णयकी अचूक कुंजी हाथ लग जाती है। इस दृष्टिसे उपर्युक्त श्लोकका विचार करके श्रीयुत चिंतामणि वैद्यने कालिदासका अस्तित्व ईसासे पूर्व पहली शताव्दीमें सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है*। वह इस प्रकार है :—

'उक्त श्लोकोंमें पाण्डच राजा दक्षिण में प्रवल हो गया था और वह उरगपुरमें राज्य करता था, ऐसा वर्णन है। मल्लिनाथ और हेमाद्रि इन दो टीकाकारोंने उरगपुरका अर्थ नागपुर निकाला है। पर कौनसा नागपुर, विदर्भका? यह संभव नहीं। कारण, यह नागपुर न तो वि र्भ की दक्षिण में है और न कभी इसपर पाण्डच राजाओंका शासन था। इससे उरगपुर आजकलका 'उरय्यूर' होगा। प्राकृत व्याकरण के नियमानुसार उरगपुरमें 'ग' और 'प' इन दो व्यंजनोंका लोप होकर मध्यमें एक 'य' घुस पड़ा और 'उरय्यूर' बन गया। ईसवी प्रथम शताव्दीमें करिकाल नामक प्रसिद्ध चोल राजासे पराजित होने तक पाण्डच राजा दक्षिण में प्रवल थे। करिकालने पराजित करके उन्हें उरय्यूरसे हटा दिया तब कावेरीपत्तनको उन्होंने अपनी राजधानी बनाया। इसके पहले उरय्यूर ही पाडच राजाओंकी राजधानी रही होगी। ईसाकी तीसरी शताव्दीमें पाण्डच राजा फिर प्रबल हुए सही, किन्तु तब उनकी राजधानी उरय्यूर न होकर मदुरा हुई। उपर्युक्त श्लोकमें कालिदासने अपने समयकी परिस्थितिका वर्णन किया है ऐसा मानें तो उनका काल ईसवी पहली शताव्दीके पूर्व होना चाहिए। कारण, इस शताव्दीके अनन्तर उरय्यूर कभी पाण्डच राजाओंकी राजधानी न थी।'

उपर्युक्त प्रमाण परीक्षाकी कसौटीपर ठीक नहीं उतरता। उरगपुरका 'उरय्यूर' बन जाना असम्भव नहीं है। पर उरय्यूर किसी समय पाण्डचोंकी राजधानी थी, इसका न तो किसी इतिहासमें और न किसी दन्तकथाओंमें उल्लेख मिला है। अपितु मदुरा नगरी प्राचीन कालमें सदैव पाण्डचोंकी राजधानी थी। विन्सेंट स्मिथ आदि इतिहासकारोंका यही मत है। तामिल भाषामें मदुराका नाम 'अलवाय' है। और इसका 'नाग' अर्थ होता है। यदि कविका तात्पर्य उरगपुरसे मदुराका है तो यह प्रमाण जैसे ईसासे पूर्व प्रथम शताव्दीके पक्षका समर्थक है वैसे ही ईसाके बाद चौथी अथवा पाँचवी शताव्दीके पक्षका भी समर्थक है। कारण, ईसाकी तीसरी शताव्दीसे लेकर सातवीं शताव्दीमें पल्लवराज सिंहविष्णु द्वारा पराभव होने तक पाण्डच राजा दक्षिणमें प्रवल थे और मदुरा उनकी राजधानी थी, यह बात प्रसिद्ध है। अतः उक्त प्रमाण ठीक सिद्ध नहीं होता।

* Annals of the Bhandarkar Institute, Vol. II, p. 63.

(इ) **मालविकाग्निमित्रमें अनावश्यक उल्लेख** :–– स्वर्गीय प्रोफेसर शिवराम पंत परांजपेने अपने 'साहित्य-संग्रह' के एक सरस निवन्ध 'मेघदूत और कालिदास' (भाग १, पृ. ८८) में कहा है कि मालविकाग्निमित्र नाटकमें इरावती और धारिणी नामक दो उपनायिकाओंको रखना और धारिणीके भाईको हीनवंशीय बतलाना आवश्यक न था। पाँचवें अंकमें, अपने पत्रमें पुष्यमित्रने 'विगतरोष-चेतसा' 'रोष छोड़कर' यज्ञ में सम्मिलित हो इस प्रकार अग्निमित्रको जो लिखा, उसमें रोषका कारण न वतलाना इत्यादि अनावश्यक प्रसंगोंसे यह सिद्ध होता है कि कालिदासको शुंगकालीन परिस्थितिकी सूक्ष्म बातोंका अच्छा ज्ञान था। इससे यह अनुमान निकलता है कि कालिदास अग्निमित्रके या उसके आसपासके समयमें हुए होंगे। इस तरहका मत प्रोफेसर चट्टोपाध्यायने भी व्यक्त किया है। इससे यह अनुमान लगाया गया कि शुंगोंकी कथा लोगोंके स्मृति-पटलसे लुप्त होनेके पहले, अर्थात् अग्निमित्रके कालसे एक शताब्दीके अन्दर अथवा ईसापूर्व ५७ वर्षके लगभग कालिदासका स्थिति-काल होना चाहिए।

एक ही उल्लेखके आधारपर ऐतिहासिक विद्वान् भिन्न भिन्न अनुमान किस प्रकार निकाल सकते हैं इसका यह अच्छा निदर्शन है। डॉ. श्री. व्यं. केतकर कालिदासको गुप्तकालीन ईसाकी पाँचवीं शताब्दीका मानते हैं। वे कहते हैं कि साढ़े पाँचसौ वर्षके अनन्तर कविको ऐसी प्राचीन और बहुत ही सूक्ष्म कथाका ज्ञान बना रहना सम्भव नहीं है। उपरिलिखित पात्रों और घटनाओंका इस नाटकमें समावेश करने और इस तरहके संविधानक रचनेमें कालिदासका उद्देश्य कुछ दूसरा ही था, यह सिद्ध करनेका प्रयत्न उक्त विद्वान्ने किया है। उनकी कारण-मीमांसा इस प्रकार है : "मालविकाग्निमित्रमें तत्कालीन समाजपर टीका टिप्पणी करके तालियाँ पिटवानेका कालिदासका उद्देश्य छिपा नहीं रहता। किसी रानीको मदिरा पिलाकर खुल्लमखुल्ला रंगमंचपर लाना और उसके भाईको हीनजातीय दिखाना इत्यादि घटनाओंको नाटकमें प्रदर्शित करनेके लिए कविमें वहुत वड़ा साहस होना चाहिये। कविका अपने नाटकमें प्राचीन कालका दृश्य दिखलानेका ढोंग रचना बड़े मार्केकी वात है। ग्रामीण लोगोंके बीचमें रानीकी हँसी उड़वाना और मदिरा पिलानेका ऐतिहासिक आधार मौजूद है, ऐसी धारणा उत्पन्न करके वाहवाही लूटना कविके लिये कठिन नहीं।"

'मालविकाग्निमित्र' में उपर्युक्त प्रसंगोंके आधारपर निकाले गये दोनों अनुमान युक्तिसंगत नहीं मालूम होते। शुंगोंके बाद ५००–५५० वर्ष पीछे उत्पन्न हुए कालिदासके लिए उस कालकी सूक्ष्म जानकारी रखना असम्भव है, ऐसा कहना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। क्योंकि उनके २००–२५० वर्ष पीछे वाण हुए।

उन्होंने अपने 'हर्षचरित' में शुंगकालका जो वर्णन किया है, वह उपलब्ध पुराणोंमें कहीं नहीं मिलता। उदाहरणार्थ, पुराणोंमें सेनापति पुष्यमित्रने बृहद्रथ मौर्यकी हत्या करके मगधकी राजगद्दीको अपने अधिकारमें कर लिया, इस प्रकारका उल्लेख है। परन्तु उसको कब कैसे मारा, यह वर्णन बिलकुल नहीं है। पर यही बात, बाणके 'हर्षचरित' में दिग्विजयके लिये रवाना होते समय हर्षको गजसैन्याधिपति स्कन्दगुप्तके द्वारा दिये हुए उपदेशमें, इस प्रकार पाई जाती है — 'सेनाका निरीक्षण करनेके बहाने मूर्ख बृहद्रथ राजाको बुलाकर सेनापति पुष्यमित्रने उसे मार डाला।' कालिदासके बहुत पीछे उत्पन्न विशाखदत्तने शुंगकालसे भी १५० वर्ष पहले, मगध राज्यमें जो क्रान्ति हुई थी उसका सविस्तर ऐतिहासिक वर्णन अपने नाटकमें किया है। तब कालिदास उससे कहीं कम कालके व्यवधानपर पिछले समयका वर्णन क्यों न कर सकते? आजकलकी अपेक्षा कालिदासके समयमें ऐतिहासिक साधन प्रचुर मात्रामें विद्यमान थे। पूर्वकालमें राजाकी वंशावली ही नहीं, उनके शासनकालमें घटी हुई घटनाओंको लिखकर रखनेकी प्रथा भी अवश्य प्रचलित थी। इस प्रकारका कलिंग देशके खारवेल नामक राजाके शासन-कालका सविस्तर वर्णन हाथीगुम्फा गुफाओंमें खुदा हुआ मिला है, यह प्राचीन इतिहासज्ञोंको भली भाँति विदित है। इसी प्रकार शुंग राजाके शासनकालके वृत्तान्तकी सामग्रीका शुंग और गुप्त राजाओंकी राजधानी पाटलीपुत्रमें कालिदासके समयमें अवशिष्ट रहना और गुप्तकालीन कालिदासद्वारा उसका उपयोग किया जाना असम्भव नहीं है।

(ई) अश्वघोषके ग्रन्थोंसे समता :— ई. स. १८९३ में अश्वघोषके 'बुद्धचरित' और १९१० में 'सौन्दरनन्द' काव्यके प्रकाशित होनेपर विद्वानोंका ध्यान इन काव्योंमें और कालिदासके ग्रंथोंमें दिखलाई पड़नेवाली समानताकी ओर गया और दो पक्ष बने। प्रोफेसर कॉवेल सरीखे यूरोपियन और कुछ भारतीय पुरातत्त्वज्ञोंने इस साम्यसे यह निष्कर्ष निकाला कि कालिदासने अपने काव्यकी कल्पना अश्वघोषसे ली है। अतः अश्वघोषके बाद ★ अर्थात् ईसाकी प्रथम शताब्दीके बाद कालिदास हुए। ठीक इसके विपरीत प्रोफेसर शारदारंजन राय, प्रोफेसर चट्टोपाध्याय आदिने सिद्ध किया कि अश्वघोषने ही कालिदासकी कल्पनाओंको चुराया है और उनके मतानुसार

★ अश्वघोष कवि, सुप्रसिद्ध कुशान-वंशीय सम्राट् कनिष्कका समकालीन था। कई भारतीय और यूरोपीय विद्वानोंके मतानुसार वर्तमान कालमें प्रचलित शालिवाहन संवत्का प्रारम्भ महाराज कनिष्कने किया था। यह संवत् ई. स. ७८ में शुरू हुआ था। अतः हमने अश्वघोषका समय ईसवी प्रथम शताब्दी माना है।

कालिदास ईसासे पूर्व प्रथम शताब्दीमें हुए। इस विषयपर विचार करनेके पहले एक बात ध्यानमें रखनी चाहिये। वह यह कि कालिदासने अश्वघोषकी चोरी की हो या अश्वघोषने कालिदासकी -- इससे किसी भी कविके पक्षपातीको बुरा नहीं लगना चाहिए। राजशेखरके कथनानुसार 'सर्वोऽपि परेभ्य एव व्युत्पद्यते' अर्थात् हर एक ग्रन्थकार अपने पूर्वकालीन ग्रन्थकारसे आधार लेकर चलता है। तब निष्पक्ष मनसे इन दोनों कवियोंकी स्थिति-कालके सम्बन्धमें कौन पहले हुआ, तथा दोनोंके ग्रन्थोंमें जो समानता पाई जाती है उसका कारण क्या है, यह विचार करनेमें रुकावट नहीं होनी चाहिये। यह समानता दो प्रकार की है। प्रसंगसमता और दूसरी शद्बार्थोक्ति-समता। इस तरहकी कुछ समानता अश्वघोषके 'सौन्दरनन्द' तथा कालिदासके 'कुमारसम्भव' में पाई जाती है। अश्वघोषके काव्यमें शाक्य कुलमें उत्पन्न नन्दने बौद्ध धर्म किस प्रकार स्वीकार किया, इसका उल्लेख है। वुद्धने अनेक प्रकारसे नंदको संसार त्याग करनेका उपदेश दिया, तो भी उसके मनमें वैराग्य उत्पन्न न हुआ। फिर बहुत आग्रह करनेपर उसने बड़ी अप्रसन्नतासे सम्मति दी और अपना सिर मुंड़वाया। जब यह समाचार उसकी पत्नी सुन्दरीको मिला, तब वह बहुत दुःखी हुई। इसके शोकका वर्णन उक्त काव्यके छठे सर्गमें आया है। उसमें और 'कुमार-सम्भव' में शिवद्वारा भस्मीकृत मदनके निधनानन्तर रतिके विलापमें कहीं कहीं बहुत अधिक समता पाई गई है। उसी तरह बादके अगले सर्गका नन्द-विलाप और 'रघुवंश' का 'अजविलाप' बहुत कुछ मिलता है। तथापि उससे यह निर्णय करना कि एकने दूसरेकी नकल की है, ठीक नहीं मालूम होता। इस तरह तो और भी कई समान प्रसंग दिखाये जा सकते हैं। 'वुद्धचरित' के तीसरे सर्गमें शीत ऋतुमें तरुण राजकुमार गौतम पिताकी आज्ञासे जव नगरसे वाहर विहारके लिए गये तो उसको देखनेके लिए नगरकी स्त्रियोंकी भीड़ जमा हो गई। इसी तरह 'कुमार-सम्भव' के सप्तम सर्गमें विवाहार्थ हिमालयके ओषधिप्रस्थ नामक नगरमें शिवने, और 'रघुवंश' के सप्तम सर्गमें इन्दुमतीके स्वयंवरके वाद कुण्डिनपुरमें अजने, जब प्रवेश किया उस समय भी उनके अवलोकनार्थ नगरकी स्त्रियोंकी भीड़ जमा हुई। दोनों कवियोंके प्रसंगकी समानताकी ओर विद्वानोंका ध्यान गया और दोनों पक्षोंने अपने अपने अनुमान निकाले। परन्तु इस सम्वन्धमें यह कहा जा सकता है कि ऐसे प्रसंग रोज ही उपस्थित होते हैं। इस कारण प्रतिभा-सम्पन्न कविका लक्ष इस ओर अनायास ही चला जाता है। ईसाकी १० वीं शताब्दीमें उत्पन्न पद्मगुप्त कविने अपने 'नवसाहसाङ्कचरित' काव्यमें इसी प्रकारका वर्णन किया है। इससे भी यह वात स्पष्ट हो जायगी। दूसरी बात यह है कि दोनों कवियोंके वर्णनमें बहुत थोड़ा

कल्पनासाम्य है। दोनों वर्णनोंको जरा गौरसे पढ़नेपर निम्नलिखित स्थलोंपर ही हमें उनकी कल्पना-समता दिखाई पड़ती है :—

अश्वघोष—वातायनेभ्यस्तु विनिःसृतानि परस्परोपासितकुंडलानि ।
स्त्रीणां विरेजुर्मुखपङ्कजानि सक्तानि हर्म्येष्विव पङ्कजानि ।।
बुद्ध. ३, १९.

अर्थ — खिड़कियोंके वाहर झाँकनेवाली कामिनियोंके मुखकमल — जिनके कर्णभूषण एक दूसरेसे रगड़ खा रहे थे — महलोंके परस्परलग्न कमलकी तरह शोभित होते थे।

कालिदास—तासां मुखैरासवगन्धगर्भैर्व्याप्तान्तराः सान्द्रकुतूहलानाम् ।
विलोलनेत्रभ्रमरैर्गवाक्षाः सहस्रपत्राभरणा इवासन् ।।
कुमार. ७, ६२; रघु. ७,११

अर्थ—अति कुतूहलपूर्ण कामिनियोंके मद्यपानसुगन्धित और भ्रमरसदृश चंचलनेत्रयुक्त मुखोंके कारण महलकी खिड़कियाँ कमलभूषित-सी प्रतीत होती थीं।

इन दोनों वर्णनोंमें खिड़कियोंसे झांकनेवाली स्त्रियोंके मुखको कमलकी उपमा दी गई है। अश्वघोष यह उपमा देकर चुप रह गये। पर कालिदासके पद्योंमें उसी उपमाकी कल्पनाका पूर्ण विकास हुआ है। अगर इससे ही अनुमान निकालना हो तो कालिदासकी कल्पना ही वादकी ठहरेगी।

अव शव्दार्थकी समानताका विचार करें। प्रोफसर चट्टोपाध्यायने 'कालिदासका स्थितिकाल' (The Date of Kalidasa) नामक निवन्धमें कालिदास और अश्वघोष इन दोनोंके काव्योंकी परीक्षा करके समानताके कई उदाहरण दिये हैं। परन्तु उनमेंसे चार पाँचमें ही विशेष साम्य है। कुछ समानता ऐसी है, जो दूसरी जगह, वाल्मीकि-रामायणमें भी, मिलती है। उससे कोई अनुमान निकालना उचित नहीं। उदाहरणार्थ निम्न-लिखित पद्योंमें समानता देखिये :—

अश्वघोष—वाता ववुः स्पर्शसुखा मनोज्ञा दिव्यानि वासांस्यवपातयन्तः ।
सूर्यः स एवाभ्यधिकं चकाशे जज्वाल सौम्यार्चिरनीरितोऽग्निः ।।
बुद्ध. १,४१

कालिदास—दिशः प्रसेदुर्मरुतो ववुः सुखाः प्रदक्षिणार्चिर्हविरग्निराददे ।
वभूव सर्वं शुभशंसि तत्क्षणं भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम् ।।
रघु. ३, १४

इसमें सन्देह नहीं कि उक्त दोनों अवतरणोंमें कल्पना-साम्य अधिक है। तथापि इनमेंसे एक वर्णन पढ़े बिना दूसरा सूझ ही नहीं सकता, ऐसा नहीं कह सकते; क्यों कि ऐसे वर्णन करनेका सम्प्रदाय कवियोंमें प्रचलित था। दोनों ही कवियोंने अपनी कल्पना वाल्मीकि रामायणसे ली है। विश्वामित्रके साथ राम लक्ष्मण यज्ञकी रक्षाके लिए अयोध्यासे निकले उस समयका वाल्मीकिकृत वर्णन पढ़िए :—

ततो वायुः सुखस्पर्शो नीरजस्को ववौ तदा।
विश्वामित्रगतं रामं दृष्ट्वा राजीवलोचनम्॥
पुष्पवृष्टिर्महत्यासीद्देवदुंदुभिनिःस्वनैः।
शंखदुंदुभिनिर्घोषः प्रयाते तु महात्मनि॥

बालकाण्ड, २२, ४–५.

सरस्वतीके साम्राज्यमें किसी कविको किसी विशेष कल्पनाकी ठेकेदारी नहीं मिलती। कल्पनासाम्यके साथ ही साथ अगर उक्तिसाम्य हुआ तो उधार लेनेका दोषारोप किया जा सकता है। इस प्रकारके बहुत ही थोड़े स्थल हैं जहाँ कविकी कल्पना इतनी मिलती जुलती है। जैसे—

१. अश्वघोष—तं गौरवं बुद्धगतं चकर्ष भार्यानुरागः पुनराचकर्ष।
सोऽनिश्चयान्नापि ययौ न तस्थौ तरंस्तरङ्गेष्विव राजहंसः।

सौन्दर. ४, ४२.

कालिदास—तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्गयष्टि-
निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती।
मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः
शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ॥

कुमार. ५, ८५.

२. अश्वघोष—आदित्यपूर्वं विपुलं कुलं ते नवं वयो दीप्तमिदं वपुश्च।
कस्मादियं ते मतिरक्रमेण भैक्षाक एवाभिरता न राज्ये॥

बुद्ध. १०, ४.

कालिदास—एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च।
अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन् विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम्॥

रघु. २, ४७.

३. अश्वघोष—द्वन्द्वानि सर्वस्य यतः प्रसक्तान्यलाभलाभप्रभृतीनि लोके॥
अतोऽपि नैकान्तसुखोऽस्ति कश्चिन्नैकान्तदुःखः पुरुषः पृथिव्याम्॥

बुद्ध. ११, ४३.

कालिदास—कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा।
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ।। मेघ. ११४.

इन अवतरणोंकी समानता आश्चर्यजनक है। ऐसा मालूम होता है मानो एक कविके काव्योंको दूसरे कविने अवश्य देखा है। परन्तु इन अवतरणोंमें किसने किसकी नकल की, यह कहना जरा टेढ़ी खीर है। अश्वघोषकी अपेक्षा कालिदासके उक्त पद्योंमें अधिक लालित्य है, यह समझदार पाठक जान सकते हैं। अश्वघोष महान् दार्शनिक था। उसने यह बात स्वयं कही है कि 'मैं सर्वसाधारणके मनका आकर्षण करनेके लिये ही इन काव्योंके लेखनमें प्रवृत्त हुआ हूँ'। इसमें सन्देह नहीं कि वह असाधारण प्रतिभाशाली था, तथापि काव्य-निर्माण करना उसका उद्देश्य न होनेसे उसका ध्यान अपने काव्योंके परिमार्जनकी ओर नहीं गया। इससे उलटी बात कालिदासके सम्बन्धमें है। "कालिदासने अश्वघोषकी कल्पना और उनकी शब्द-योजनाको उड़ाकर और उसपर पॉलिश चढ़ाकर उसे अपने काव्यमें मिला लिया है" ऐसा कुछ विद्वान् कहें तो अन्यपक्षीय यह कह सकते हैं कि "कालिदासकी अपेक्षा अश्वघोषके काव्योंमें कृत्रिमता अधिक है और संस्कृत काव्येतिहासमें जितनी अधिक कृत्रिमताकी मात्रा रहती है कवि भी उतना ही अर्वाचीन माना जाता है," ऐसा सामान्य नियम होनेसे अश्वघोष कालिदासके पश्चात् हुए। अतः इस विवादका निर्णय करनेके लिये कोई अन्य प्रमाण खोजना चाहिये। उदाहरणार्थ, एक कविके कुछ खास शब्दोंके प्रयोगका दूसरे कविने अपहरण किया है, ऐसा हम दिखा सकें तो इस समस्याको हल करनेंमें सहायता मिलेगी। इस दृष्टिसे अश्वघोषके काव्योंका अध्ययन करते हुए जो उदाहरण मिले हैं उन्हें हम पाठकोंके आगे प्रस्तुत करते हैं।

अश्वघोषने 'प्रागेव' शब्दका उपयोग संस्कृतके 'किमुत' (अब और क्या कहना!) इस अर्थमें बहुत बार किया है। निम्नलिखित श्लोक देखिये——

एवमाद्या महात्मानो विषयान् गर्हितानपि।
रतिहेतोर्बुभुजिरे प्रागेव गुणसंहितान्।। बुद्ध. ४, ८१.

नीतिशास्त्रज्ञ उदायी नामक गौतमका मित्र उनके विरक्त मनको विषयोंमें पुनः अनुरक्त करनेके लिये प्राचीन कथाओंसे अनेक उदाहरण देकर कहता है, "जब इस प्रकारके निन्दनीय विषयभोगोंको बड़े बड़े लोगोंने भोगलालसासे प्रेरित होकर भोगा है, तब अच्छे विषयोंके उपभोगके बारेमें कहना ही क्या है!" 'प्रागेव' शब्दका इस अर्थमें उपयोग संस्कृत बौद्धसाहित्यमें अनेक स्थलोंपर

हुआ है *। परन्तु हिन्दू साहित्यमें इस प्रयोगका कहीं पता नहीं चलता। प्रोफेसर आपटेके संस्कृत कोशमें और अमरकोश आदि अन्य प्राचीन संस्कृत कोशोंमें भी 'प्रागेव' का यह अर्थ नहीं दिया गया है। परन्तु यह आश्चर्यकी बात है कि कालिदासने 'ऋतुसंहार' में एक श्लोकमें 'प्रागेव' का इसी अर्थमें प्रयोग कियाहै :–

कुन्दैः सविभ्रमवधूहसितावदातै–
रुद्योतितान्युपवनानि मनोहराणि।
चित्तं मुनेरपि हरन्ति निवृत्तरागं
प्रागेव रागमलिनानि मनांसि यूनाम् ।।

"जब विलासिनी युवतियोंके हास्यके समान शुभ्र कुंदपुष्पोंसे उज्ज्वल उपवन, मुनियोंके विरक्त मनको अपनी ओर खींचते हैं तब अनुरागी तरुणोंके मनको अपनी ओर खींच लें तो इसमें आश्चर्य क्या?"

इसमें 'प्रागेव' का प्रयोग संस्कृत टीकाकारोंको इतना अपरिचित था कि, एक टीकाकारने उसका 'मुनिचित्तापहरणात्प्रागेव' ऐसा अर्थ कर डाला। किन्तु उससे इस श्लोकका मतलव ठीक नहीं निकलता। क्या इससे सिद्ध नहीं होता कि कालिदासने संस्कृत बौद्ध ग्रन्थ, विशेषकर अपने पूर्ववर्ती कवियोंके काव्य, पढ़े थे? अगर हम कालिदासको ईसासे पूर्व पहली शताब्दीमें उत्पन्न हुआ मानें तो कालिदाससे पूर्व संस्कृत भाषामें बौद्ध साहित्य निर्माण हुआ होगा, ऐसा मानना पड़ेगा। परन्तु ईसाके बाद पहली शताब्दीमें महायान पंथके उत्कर्षको प्राप्त होनेपर ही बौद्धोंने संस्कृतमें ग्रन्थ-रचना की। उसके पहले उनके ग्रन्थ पालि-भाषामें लिखे जाते थे। तब हम कालिदासको अश्वघोषसे पहलेका अर्थात् ईसापूर्व पहली शताब्दीका नहीं मान सकते। इसके विपरीत, यदि वे गुप्तकालमें या उसके बाद हुए तो पहले उन्होंने अपने पूर्ववर्ती बौद्ध कवियोंके काव्य अवश्य पढ़े होंगे और उनमेंसे कुछ खास खास शब्दोंके प्रयोग अनजानमें पहले पहल उनके काव्योंमें आगये होंगे। बादमें ये प्रयोग हिन्दू–ग्रन्थोंमें नहीं आते, ऐसा ध्यान आने पर उन्होंने उनका प्रयोग छोड़ दिया होगा, ऐसा अनुमान कर सकते हैं †।

(उ) **भीटाका पदक** — ई. स. १९०९–१० में प्रयागके पास भीटा नामक गाँवमें खुदाईका काम शुरू हुआ। वहाँ खोदते हुए एक बड़े आकारका मृण्मय पदक मिला। उस पदकके बीचमें चार घोड़ेवाला रथ है और उस रथपर दो व्यक्ति बैठे हुए दिखाई पड़ते हैं। आगे जरत्कारुके समान एक अस्थिपंजर मात्र मनुष्य

* बुद्धचरित, ४, १९; आर्यशूरकृत जातकमाला, पृ. ५१, इत्यादि देखिये।

† कालिदासने रघुवंश (१६, ६९) में 'प्रागेव' का प्रयोग किया है, किन्तु वहां उसका अर्थ भिन्न है

पीछेकी तरफ एक झोपड़ी, उसके पास ही एक वृक्षके पास एक स्त्रीकी आकृति, ये दिखाई देती हैं। नीचेकी तरफ मत्स्य, कमल आदिसे युक्त तालाव, बीचमें एक व्यक्ति और उसके बगलमें दो हिरन, और पंख फैलाकर नाचता हुआ मोर, दीख पड़ते हैं–●। प्रो. शारदारंजन रायने यह अनुमान निकाला है कि इस पदक-पर शाकुन्तल नाटकके प्रथमांकका दृश्य दिखलाया गया है†। रथपरके दो व्यक्ति राजा दुष्यन्त और उनका सारथी, उसके वाद अस्थिपंजर अवशिष्ट व्यक्ति कण्वाश्रमवासी तापस और वृक्षके पासकी स्त्री शकुन्तला है, यह प्रोफेसर साहबका कथन है। कुछ विद्वानोंका मत है कि यह शुंगकालीन पदक है। अतः कालिदास ईसाकी पहली शताब्दीमें हुए थे, यह प्रोफेसर राय महाशयका अनुमान है।

पर इस अनुमानमें कोई तथ्य नहीं। प्रथम तो यह पदक शुंगकालीन है, इसके लिये कोई प्रमाण नहीं मिलता। दूसरी बात यह कि पदकपर जो दृश्य अंकित है वह शाकुन्तलका ही है यह माननेमें कुछ अड़चनें हैं। रथके आगे हिरनको भागता हुआ नहीं दिखलाया गया है। उसमें पर्याप्त जगह न होनेसे हिरनको नीचे दिखलाया गया है, ऐसा कहें तो वहाँपर एक नहीं बल्कि दोन हिरन दीखते हैं और वे भयभीत होकर दौड़ते हुए नहीं बल्कि स्वच्छन्द होकर विहार करते हुए दिखलाये गये हैं। कारण यह है कि पासमें ही पंख फैलाकर नृत्य करता हुआ मोर दिखाई देता है। तरुण सिद्धार्थ कुमार रथपर सवार होकर विहार करनेके लिए जब निकले तो उनको मार्गमें एक वृद्ध मनुष्य मिला। उससे उन्हें पहले पहल वृद्धावस्थाकी कल्पना उत्पन्न हुई। अनेक प्राचीन बौद्ध ग्रन्थोंमें इस प्रकारका जो वर्णन आया है, शिल्पकारोंने वही इस पदक पर दिखलाया है। यह कल्पना पूर्वोक्त कल्पनाकी अपेक्षा अधिक युक्तियुक्त दीख पड़ती है। पहले बुद्ध-चरितके ऐसे अनेक प्रसंग शिला, स्तूप आदि पर चित्रित करनेकी प्रथा थी, यह साँचीके स्तूपोंसे सिद्ध हो चुका है। प्राचीनकालमें शाकुन्तल आदि नाटकोंके दृश्य इस प्रकार पदकोंपर उल्लिखित करनेकी प्रथा प्रचलित न थी और न हमें उसका कुछ उद्देश्य ही मालूम होता है। ¶

(ऊ) 'बृहत्कथा' के संस्कृत रूपान्तरोंमें विक्रमादित्यविषयक उल्लेख— 'कथासरित्सागर' के अन्तिम लम्बकमें महेन्द्रपुत्र विक्रमादित्यकी कथा दी गई है।

● Cambridge History of India, Vol. I (Ancient India) में इस पदकका फोटो दिया गया है।

† Ray : Kalidasa's Shakuntala (1920), Introduction, p. 9.

¶ K. Chattopadhyaya : The Date of Kalidasa, pp. 57-8.

उसमें कहा गया है कि वह भगवान् शंकरका माल्यवान् नामक गण था और उनकी आज्ञासे म्लेच्छोंके विनाश, बौद्ध धर्मके पराजय और वैदिक धर्मके पुनरुज्जीवनके लिए पृथ्वीपर अवतीर्ण हुआ था। 'कथासरित्सागर' 'बृहत्कथा' का संस्कृत रूपान्तर है। बृहत्कथा ईसाकी पहली शताब्दीमें पैशाची भाषामें लिखी गई थी। अतः यही विक्रमादित्य 'विक्रम – संवत्' का संस्थापक होना चाहिए। वह मालवाकी राजधानी उज्जयिनीमें राज्य करता था। इस कारण उसके संवत्को 'मालव-संवत्' नाम प्राप्त हुआ। उत्कीर्ण लेखोंमें इस संवत्के निर्देशमें 'मालवानां गणस्थित्या' 'मालवगणस्थितिवशात्', 'श्रीमालवगणाम्नात' इत्यादि शब्दोंका प्रयोग दिखाई देता है। उनमें गण शब्दका अर्थ 'गणना' है। 'शब्दार्णव' कोशमें 'गणस्तु गणनायां स्याद् गणेशे प्रमथे चये' इस पंक्तिमें गण शब्दके भिन्न भिन्न अर्थ दिये हैं। अतः उपर्युक्त शब्दप्रयोगका अर्थ 'मालव देशमें प्रचलित गणनापद्धतिके अनुसार' होता है। 'गाथासप्तशती' में विक्रमादित्यके दातृत्वके वर्णनपर एक गाथा ¶ आई है। यह ग्रन्थ हाल नामक राजाने ईसाकी पहली शताब्दीमें रचा था। अतः यह विक्रमादित्य संवत्-संस्थापक विक्रमादित्य ही होना चाहिए, ऐसा अनुमान प्रा. कृ. मो. शेंबवणेकरने किया है।

प्रा. शेंबवणेकरके प्रमाण अत्यन्त निर्बल हैं। 'कथा-सरित्सागर' ग्रन्थ ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दीमें रचा गया था। उसका मूलभूतरूप पैशाची भाषाकी बृहत्कथा अब विद्यमान नहीं है। कथासरित्सागरके अतिरिक्त उसके दो रूपान्तर—'बृहत्कथा-मंजरी' और 'बृहत्कथाश्लोकसंग्रह' भी मिलते हैं। गुणाढ्यकी कथा 'नेपालमाहात्म्य' में भी पाई जाती है। इन चार ग्रन्थोंकी कथाओंमें परस्पर अनेक भेद हैं। आद्य 'बृहत्कथा' में विक्रमादित्यकी कथा थी या उसके और उसके संस्कृत रूपान्तरोंके बीचमें जो हजार वर्ष बीत गये, उनमें वह कल्पित कथा प्रक्षिप्त हो गई इसका निर्णय करना आवश्यक है। कथाके स्वरूपसे तो वह ऐतिहासिक नहीं दीखती। इस कथाके नायक विक्रमादित्यने अपरान्त (कोंकण) सहित सारा दक्षिण देश और मध्यदेश, सौराष्ट्र, वंग,

---

¶ 'संवाहणसुहरसतोसिएण देन्तेण तुह करे लक्खम्।
चलणेण विक्कमाइत्तचरिअं अणुसिक्खिअं तिस्सा।। ४६४

भावार्थ – एक स्त्री अपने प्रियतमसे कहती है – जब तुम उस दूसरी स्त्रीके पाँव दाबते थे तब उस आनन्दमें तुम्हारे हाथपर लाक्षा-रससे निर्मित आकृतियाँ छापकर उसके पाँवने विक्रमादित्यके चरितका अनुकरण किया है। क्योंकि विक्रमादित्य राजा भी अपने सेवकोंकी सेवासे सन्तुष्ट होकर उनके हाथोंपर लक्ष लक्ष मुद्राएँ रखता है। [यहाँ 'लक्खं' पदमें श्लेष है, जिससे उसके 'लाक्षा' और 'लक्ष' ऐसे दो अर्थ होते हैं।]

अंग, काश्मीरादि उत्तरके देश और अनेक द्वीप जीत लिये थे, ऐसा 'कथासरित्सागर' में लिखा है । यह वर्णन भारतका जो इतिहास उत्कीर्ण लेखादि साधनोंसे अब तक ज्ञात हुआ है उससे असंगत है । इसके अतिरिक्त इस कथामें कालविपर्यास नामक महान् दोष है । यदि इस कथाके विक्रमादित्यको ईसासे पूर्व पहली शताब्दीमें मान लें तो फिर उसकी कथा ईसासे पूर्व पाँचवीं शताब्दीमें होनेवाले नरवाहनदत्तको काश्यप या कण्व मुनिने किसी अरण्यमें कही थी, इस कथासरित्सागर (१८,१,३-८) और बृहत्कथामंजरी (१०,१,२-१२) के विधानकी संगति कैसे बैठेगी ? नरवाहनदत्त वत्सराज उदयनका वासवदत्तासे उत्पन्न पुत्र था, और उदयन गौतम बुद्धका समकालीन था । अर्थात् वह ईसासे पूर्व छठी शताब्दीके अन्तमें और उसका पुत्र नरवाहनदत्त पाँचवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें हुआ, इसमें सन्देह नहीं । अतः जिस विषमशील विक्रमादित्यकी कथा नरवाहन-दत्तको कही गई थी वह विक्रम-संवत्का संस्थापक नहीं हो सकता ।

वर्तमान मालवा ईसासे पूर्व प्रथम शताब्दीमें इस नामसे ज्ञात नहीं था । उस कालमें उसका नाम अवन्ति था । ईसाकी चौथी-पाँचवीं शताब्दीमें जब वहाँ मालवगण बसा तब उसे मालव नाम प्राप्त हुआ । अर्थात् 'मालव देशमें यह संवत् स्थापन हुआ अतः उसको मालव-संवत् नाम प्राप्त हुआ' और 'मालवाना गणस्थित्या' आदि शब्द-प्रयोगोंका अर्थ 'मालवदेशकी गणनाके अनुसार' होता है, ये दोनों विधान अप्रामाणिक सिद्ध होते हैं । इसके अतरिक्त, यह बात भी उल्लेखनीय है कि इस संवत्के आद्य लेख मालवामें न मिलकर राजस्थानके उदयपुर, कोटा, जयपुर और भरतपुर राज्योंमें प्राप्त हुए हैं। उत्कीर्ण लेखोंके 'श्रीमालवगणाम्नाते' आदि शब्दोंमें जो 'गण' शब्द आया है उसका अर्थ 'गणना करना' असम्भव है। यदि यह अर्थ माना जाय, तो मालवगण और यौधेयगणकी मुद्राओंपर जो 'मालवगणस्य जयः' 'यौधेयगणस्य जयः' आदि लेख दिखाई देते हैं उनका अर्थ 'मालवों और यौधेयोंकी गणनाओंकी जय' मानना पड़गा और वह हास्यास्पद होगा ।

'गाथासप्तशती' ग्रन्थ अब अपने मूल स्वरूपमें नहीं रहा, जैसा कि उसमें जो चौथी-पाँचवीं शताब्दीके वाकाटक नृपति सर्वसेन और प्रवरसेन, तथा आठवीं शताब्दीके वाक्पतिराज आदि कवियोंकी गाथाएँ समाविष्ट हो गई हैं उनसे स्पष्ट है । 'सप्त-शती' की कुछ गाथाएँ हालनृपतिके कालसे प्राचीन हैं, तो दूसरी कई गाथाएँ उस नृपतिसे सैंकड़ों वर्षोंके वाद रची हुई दिखाई देती हैं। अतः 'सप्तशती' की गाथाओंका प्रमाण अन्य ग्रन्थोंके कालनिर्णयार्थ ग्राह्य माननेके पहले उन गाथाओंका काल निश्चित करना आवश्यक है । किन्तु यह आजकी परिस्थितिमें अशक्य है और इसलिए इस प्रमाणका उपयोग न करना ही उचित होगा ।

इसके अतिरिक्त, 'गाथासप्तशती' में विक्रमादित्यके दातृत्वका जो वर्णन दिखाई देता है वह गुप्तनृपति द्वितीय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यपर ठीक लागू होता है। उसने न केवल लक्षावधि किन्तु कोटचवधि मुद्राएँ दान दी थीं, ऐसी कथाएँ प्राचीन कालमें प्रचलित थीं, यह राष्ट्रकूट नृपति प्रथम अमोघवर्षके संजान ताम्रपत्रकी निम्नलिखित पंक्तिसे स्पष्ट होगा—

लक्षं कोटिमलेखयत्किल कलौ दाता स गुप्तान्वयः।

अर्थात् — गुप्तनृपति (द्वितीय चन्द्रगुप्त) लाख-कोटि मुद्राओंके दान (अपने कोशाध्यक्षसे) लिखाता था। उसको कलियुग में द ता कहते हैं!

अतः 'सप्तशती' की पूर्वोक्त गाथासे यह सिद्ध नहीं होता कि विक्रमादित्य ईसासे पूर्व प्रथम शताब्दीमें हुआ था।★

कालिदास ईसासे पूर्व पहली शताब्दीमें हुए थे, इस मतका अनेक भारतीय विद्वानोंने समर्थन किया है और प्रचलित दन्तकथाका आधार मिलनेसे सर्वसाधारण पाठकोंको वही मत ठीक प्रतीत होता है। इसी लिए इस मतका हमने सविस्तर विवेचन किया। इस मतके समर्थनके लिये कालिदास-कालीन र ति और उनके काव्योंमें उपलब्ध अकृत्रिम रमणीयता इत्यादि कुछ प्रमाण कई संशोधक विद्वानोंने उपस्थित किये हैं किन्तु वे सर्वमान्य नहीं हैं और उन सबका विस्तारभयसे परीक्षण नहीं किया जा सकता। अब हम अन्य मतोंका परीक्षण करेंगे।

(३) ईसाकी तीसरी शताब्दी

बिजापुरके सुप्रसिद्ध ज्योतिःशास्त्रज्ञ श्री द. वें. केतकरने प्रतिपादन किया है कि कालिदास ई. स. २८० के आसपास हुए थे। यह मत निम्नलिखित ज्योतिषविषयक उल्लेखोंपर आधारित है।

कालिदासने रघुवंश, १६, ४० श्लोकमें 'घर्मः आजगाम' (धूपकाल आ गया) इन शब्दोंमें मई महीनेमें दो-तृतीयांश व्यतीत हुए उदगयनका निर्देश किया है। इसके अनन्तर उन्होंने निम्नलिखित श्लोक (१६, ४४) में स्वकालीन दक्षिणायनका निश्चित स्थान बताया है।

अगस्त्यचिह्नादयनात्समीपं दिगुत्तरा भास्वति संनिवृत्ते।
आनन्दशीतामिव बाष्पवृष्टिं हिमस्रुतिं हैमवतीं ससर्ज॥

★ इस विषयकी विस्तृत चर्चा मैंने अपने 'गाथासप्तशतीचा काल' नामक मराठी लेखमें की है। देखो, 'संशोधन-मुक्तावलि, सर पहिला', पृ. १०४-१२३.

[अर्थ--अगस्त्यचिन्ह (अर्थात् दक्षिण) अयनस्थानके पास (दक्षिण दिशासे) लौटे हुए सूर्यको देख कर उत्तर दिशा आनन्दित हुई और उसने अपने शीतल अश्रुओंके सदृश हिमालयके हिमप्रवाहको छोड़ दिया ।]

दक्षिणायन प्रारम्भ होनेके समय धूपकाल अत्यन्त तीव्र होता है और उससे हिमालयका हिम पिघलकर प्रवाहित होने लगता है । उन प्रवाहोंको उत्तर दिशाने के द्वारा अपनी सपत्नी दक्षिण दिशाको छोड़कर अपने पास आये हुए सूर्यरूपी प्रियतमको देखकर गिराये गये शीत आनंदाश्रुओंकी उपमा इस श्लोकमें दी गई है । इस वर्णनमें अगस्त्य ताराको दक्षिणायनका चिन्ह कहा गया है । सूर्यसिद्धान्त और वराहमिहिरकी पंचसिद्धान्तिकामें अगस्त्यके अंश अश्विनीनक्षत्रके आरम्भसे नब्बे हैं ऐसा कहा गया है । उपर्युक्त वर्णनसे स्पष्ट दिखता है कि कालिदासके कालमें दक्षिणायन या कर्कटक संक्रान्ति क्रान्तिवृत्तमें अश्विनी नक्षत्रसे नब्बे अंशोंपर अर्थात् पुनर्वसु नक्षत्रके पोलक्स ताराके पास होती थी । वराहमिहिरके समय (ई. स. ५२० वर्षमें) दक्षिणायन पुनर्वसु नक्षत्रके मध्यमें (अर्थात् ८६ अंश, ४० कलापर) होता था । एक नक्षत्र (अर्थात् १३ अंश २० कला) अयन-चलनके लिए ९६० वर्ष लगते हैं । अर्थात् दक्षिणायनस्थान ९० अंशोंपर होनेका काल ई. स. २८० वर्ष ही होना चाहिए । अतः श्री केतकर अनुमान करते हैं कि कालिदास ईसाकी तीसरी शताब्दीके उत्तरार्धमें हुए होंगे । ☆

यह अनुमान भी कालिदास-कालका निर्णायक नहीं माना जा सकता । अगस्त्य दक्षिणमें रहनेवाला मुनि था । इसी कारणसे कालिदासने रघुवंश ४, ४४ श्लोकमें दक्षिण दिशाका 'अगस्त्याचरिता आशा' कहकर उल्लेख किया है । प्रस्तुत श्लोकमें 'अगस्त्यचिन्हात् अयनात्' इन शब्दोंका भी अर्थ 'दक्षिणायनात्' इतना ही विवक्षित होगा और संस्कृत टीकाकारोंने भी यही अर्थ दिया है । 'अगस्त्यके अंशोंपर (अर्थात् अश्विन्यारम्भसे ९० अंशोंपर) हुए दक्षिणायनसे' क्या इतना तांत्रिक अर्थ कालिदासको विवक्षित था, इसके बारेमें संशय उत्पन्न होता है । दूसरी बात यह कि यदि कालिदास स्वकालीन दक्षिणायनस्थानका सूक्ष्म रीतिसे वर्णन करना चाहते तो अगस्त्य सरीखे क्रान्तिवृत्तके बाहिरी तारकका निर्देश न करके उस वृत्तके पुनर्वसु नक्षत्रका ही उल्लेख करते । इसके अतिरिक्त, अयनचलन सूक्ष्म गतिसे होता है, इस कारण उसमें सौ-डेढ़-सौ वर्षोंमें बहुत-सा अन्तर नहीं पड़ता । अतः ई. स. २८० में जो वास्तविक परिस्थिति थी वह यदि ई. स. ४०० के पास हुए कालिदासने वर्णन की हो, तो उसमें आश्चर्य नहीं । और फिर यह अनुमान, कालिदास गुप्तकालीन थे, इस पक्षमें भी बाधक नहीं होगा । यद्यपि कालिदासको ज्योतिषका अच्छा ज्ञान था फिर भी वे कवि थे, ज्योतिषी नहीं ।

☆ Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute, Vol. 36, pp. 150 ff.

अतः ज्योतिष ग्रन्थोंके योग्य आवश्यक वारीकीकी उनके ग्रन्थोंमें अपेक्षा नहीं करनी चाहिए ।

(४) ईसाकी पाँचवीं शताब्दी

'रघुवंश' के चौथे सर्गमें रघुके दिग्विजयका वर्णन करते हुए कालिदासने नीचे लिखे श्लोक दिये हैं :–

ततः प्रतस्थे कौबेरीं भास्वानिव रघुर्दिशम् ।
शरैरुस्रैरिवोदीच्यानुद्धरिष्यन् रसानिव ।।
विनीताध्वश्रमास्तस्य वङ्क्षुतीरविचेष्टनैः ।
दुधुवुर्वाजिनः स्कंधाँल्लग्नकुङ्कुमकेसरान् ।।
तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम् ।
कपोलपाटनादेशि वभूव रघुचेष्टितम् ।। रघुवंश, ४, ६६-६८.

इन श्लोकोंमें रघुने उत्तरदिशामें ' वंक्षु नदी ' के किनारे हूणोंको पराजित किया, ऐसा वर्णन है । 'अमरकोश' के टीकाकार क्षीरस्वामीने केशरको 'वाल्हीक' क्यों कहते हैं इसका स्पष्टीकरण करते समय उक्त श्लोकोंको उद्धृत किया है । इससे यह 'वंक्षुनदी' वाल्हीक (प्राचीन वॅक्ट्रिया, आधुनिक वल्ख) देशमें बहनेवाली ऑक्सस नदी ही है, यह स्पष्ट है । हूणोंने ऑक्सस नदीपर ४५० ई. स. के लगभग अपना राज्य स्थापित किया और भारतवर्षपर चढ़ाई की । यह आक्रमण कुमारगुप्तके अन्तिम समयमें हुआ था । उसके युवराज स्कंदगुप्तने बड़ी वीरतासे हूणोंका मुकाविला किया । यह वात जूनागढ़के समीप गिरनारके ई. स. ४५५-४५६ के शिलालेखसे सिद्ध हो चुकी है । ' रघुवंश ' में हूण लोग ऑक्सस नदीपर थे, ऐसा कालिदासने वर्णन किया है । यह परिस्थिति कालिदासके समयकी होगी । इससे यह ग्रन्थ ई. स. ४५० (ऑक्सस नदीके किनारे हूणराज्यकी स्थापनाका काल) तथा ४५५–४५६ (गिरनार शिलालेखका काल) के मध्यमें लिखा गया होगा । अर्थात् कालिदास पाँचवीं शताब्दीके मध्यके लगभग हुए, इस तरहसे प्रो. पाठकने अपने पक्षका समर्थन किया है ।☆

ये ऊपरके अनुमान प्रबल और निर्णायक हैं, ऐसा हम नहीं मानते । ईसाकी पाँचवीं शताब्दी तक भारतीयोंको हूण लोगोंका परिचय नहीं था, ऐसा प्रोफेसर पाठकने कहा है, वह ठीक नहीं है। पार्सियोंके ' अवेस्ता ' ग्रन्थमें और 'महाभारत' में हूणोंका उल्लेख है । ईसाकी तीसरी शताब्दीमें लिखित ' ललितविस्तर ' ग्रन्थमें वुद्धने अपने वाल्य-कालमें जिन लिपियोंको सीखा था उनकी नामावलीमें हूणलिपिका भी उल्लेख है।

☆ K. B. Pathak: Meghaduta, Introduction, p. x.

ईसापूर्व १४० वर्षके लगभग हूणोंने 'यूएची' (जिनका आगे चलकर कुशान नाम पड़ा) लोगोंको ऑक्सस नदीके दक्षिण किनारेपर मारकर भगा दिया। तबसे ऑक्सस्के उत्तरी किनारेपर उन लोगोंका अधिकार होता गया अथवा उस तरफ उनके दलके दल आते गये। ईसाकी पाँचवीं शताब्दीमें उन लोगोंने ऑक्सस् नदीके किनारे राज्य स्थापित किया। ऑक्सस्के उत्तरकी तरफ हूण लोगोंकी स्थितिका पता इसके पहले कालिदास जैसे जानकार व्यक्तिको न हो यह सम्भव नहीं है। फलतः उनका स्थिति-काल ईसवी सन्की पाँचवीं शताब्दीके मध्य तक खींचनेकी जरूरत नहीं है।

(५) ईसाकी छठी शताब्दी

ईसवी सन्की छठी शताब्दीमें भारतवर्षमें संस्कृत विद्याका पुनरुज्जीवन हुआ और उस समय कालिदास उत्पन्न हुए, यह मत प्राध्यापक मॅक्समूलरने प्रकट किया था। अनेक कारणोंसे यह मत आज कल किसीको मान्य नहीं है। परन्तु अभी हालमें कुछ विद्वानोनें दूसरे ही प्रमाणोंके आधारपर उक्त मतको सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है। स्वर्गवासी महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्रीने 'बिहार एण्ड ओरिसा रिसर्च सोसाइटीके जर्नल' के पहले और दूसरे खण्डमें तथा धारके का. कृ. लेले और शि. का. ओक, इन दोनों महाशयोंने मराठीके 'विविधज्ञानविस्तार' के ५३ वें खण्डमें इस मतकी पुष्टिके लिये अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। विस्तारभयसे उन सब प्रमाणोंकी चर्चा करना सम्भव नहीं। फिर भी कुछ मुख्य मुख्य प्रमाणोंका यहाँ परीक्षण किया जाता है।

(अ) **यशोधर्मन्–विक्रमादित्य और मातृगुप्त–कालिदास** – प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनसांगने ई. स. ६२९ से ६४५ तक भारतवर्षमें प्रवास किया था। इस यात्रीने एक जगह लिखा है कि 'मालव देश' (Molapo) में शीलादित्य नामक राजाने ५३० से ५८० तक लगभग ५० वर्ष तक राज्य किया था'। कल्हण कृत 'राजतरंगिणी'से यह विदित है कि उज्जयिनीके विक्रमादित्यने काश्मीरके सिंहासनपर अपने विद्वान् मित्र कवि मातृगुप्तको बिठाया था। विक्रमादित्यकी मृत्युके बाद मातृगुप्तने राजगद्दी छोड़ दी और उनके बाद राज्यका वास्तविक हकदार प्रवरसेन राजा हुआ। इस राजाका बसाया हुआ प्रवरपुर हुएनसांगके वर्णनसे छठी शताब्दीका ठहरता है। तब विक्रमा-दित्यका समय भी छठी शताब्दीमें मानना पड़ेगा। इसलिए हुएनसांगने जिस मालवराज शीलादित्यका वर्णन किया है वह और विक्रमादित्य दोनों एक ही होंगे। 'राजतरंगिणी' में विक्रमादित्यके द्वारा शकोंके पराभवका वर्णन है। इसी शताब्दीमें मालव देशमें यशोधर्मदेव नामका एक प्रबल पराक्रमी राजा हुआ था। उसके दो खुदे हुए लेख ★

★ इनमेंसे एक लेख ई. स. ५३२ का है।

मन्दसोरमें मिले हैं। उनसे यह स्पष्ट होता है कि इस राजाने मिहिरकुल नामक महाबली हूण राजाको परास्त कर दिया था और अपने साम्राज्यका विस्तार गुप्त और हूण राजाओंके साम्राज्यकी अपेक्षा बहुत अधिक किया था, तथा 'राजाधिराज' और 'परमेश्वर' की पदवियाँ उसने अपने नामके साथ जोड़ ली थीं। यशोधर्मा ही हुएनसांगका शीलादित्य तथा कल्हणका विक्रमादित्य है। पराजित हुए हूणोंको ही कल्हणने और अल्बेरूनीने 'शक' यह नाम दिया होगा। विक्रमादित्यने जिसको काश्मीरके सिंहासनपर बिठाया वह मातृगुप्त ही कालिदास रहा होगा। मातृगुप्तके काश्मीरकी राजगद्दी छोड़नेपर प्रवरसेन राजा हुआ। प्रवरसेनके नामसे प्रसिद्ध हुए 'सेतुबन्ध' प्राकृत काव्यको विक्रमादित्य की आज्ञासे कालिदासने लिखा, यह आख्यायिका विद्वानोंमें प्रचलित थी, ऐसा उस काव्यके एक अकबरकालीन टीकाकारके किये हुए उल्लेखसे मालूम होता है। इससे विक्रमादित्य, प्रवरसेन और कलिदास समकालीन सिद्ध होते हैं।

उपर्युक्त प्रमाणोंपर कई जगह आक्षेप हो सकता है। हुएनसांग जिसको मोलापो (Molapo) कहता है वह प्रदेश है कौन-सा? इस सम्बन्धमें विद्वानोंमें काफी चर्चा हो चुकी है। इतिहासके धुरंधर लेखक विन्सेंट स्मिथ☆ साहबने लिखा है कि मही नदीके किनारे साबरमतीके पूर्वका थोड़ा-सा भाग तथा दक्षिण राजपूतानाका पर्वतीय प्रदेश हुएनसांगका 'मोलापो' है। उसकी राजधानी उज्जयिनी नहीं थी। कारण यह है कि हुएनसांगने आगे चलकर उज्जयिनी राज्यका अलग ही वर्णन किया है। हुएनसांगने जिसकी अत्यन्त स्तुति की है वह यशोधर्मा न होकर वलभीका पहला शीलादित्य होगा, ऐसा प्रो. सिल्वन् लेवीका मत है। 'राजतरंगिणी' की रचना ईसाकी १२ वीं शताब्दीमें हुई। यद्यपि वह अपने कालके इतिहासकी विश्वसनीय सामग्री प्रस्तुत करती है किन्तु उसमें प्राचीन कालका इतिहास उतना विश्वसनीय नहीं है। यह सिद्ध हो चुका है कि उसमें बहुत-सी असम्भव और अतिशयोक्ति पूर्ण बातें भरी हैं। यदि यशोधर्मा ही विक्रमादित्य होता तो उसने जैसे 'राजाधिराज' 'परमेश्वर' की उपाधियाँ अपने नामके साथ जोड़ ली थीं उसी तरह अत्यन्त माननीय 'विक्रमादित्य' पदवी भी उसके नामके साथ अवश्य उल्लिखित होती। उसको 'शकारि' तो बिलकुल नहीं कह सकते। इसका कारण यह है कि ईसाके बाद छठी शताब्दीमें शकोंका कहीं नाम तक नहीं मिलता। यदि मातृगुप्त ही कालिदास होता तो कल्हणने मातृगुप्तके वर्णनमें जो दो सौ श्लोक लिखे हैं उनमें किसी एक श्लोकमें तो उसके कालिदास होनेकी बातका उल्लेख होता! मातृगुप्तने प्रवरसेनके लिये 'सेतुबन्ध' काव्यकी रचना की, यह भी सम्भव नहीं। कारण-(१) 'राजतरंगिणी' में इसका उल्लेख नहीं; (२) प्रवरसेन

☆ Early History of India (3rd Ed.), p. 323.

और विक्रमादित्यमें दुश्मनी थी ऐसा कल्हणने कहा है । अतः प्रवरसेनके लिये विक्रमादित्यने कालिदासको 'सेतुबन्ध' काव्य लिखनेके लिये प्रेरित किया होगा, इसमें सन्देह है; (३) प्रवरसेनके राजसिंहासनपर बैठते ही उसके आग्रह करने पर भी मातृगुप्त काश्मीरमें नहीं रहे, तुरन्त काशी जाकर उन्होंने संन्यास ले लिया ☆ ऐसा कल्हणने वर्णन किया है । इन सब कारणोंसे उपर्युक्त बातें ठीक नहीं मालूम पड़तीं ।

(आ) **वराहमिहिरके ग्रन्थोंमें पाई गई समानता** — वराहमिहिर छठी शताब्दीमें हुए थे । वे ज्योतिषशास्त्रके धुरंधर आचार्य थे । उन्होंने 'अयनबिन्दु' का निश्चय किया और उनके समयसे वर्षाऋतुका आरम्भ आषाढ़ माससे माना जाने लगा । उनके पहले श्रावणमें दक्षिणायनका अर्थात् वर्षाऋतुका आरम्भ माना जाता था, इसका उल्लेख वराहमिहिरने अपने ग्रन्थमें किया है । कालिदासने अपने मेघदूतके 'आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुम्' इत्यादि वर्णनमें वर्षाऋतुका आरम्भ आषाढ़ माहसे माना है । उनके समयमें यह प्रथा थी। इससे यह मालूम होता है कि कालिदास वराहमिहिरके समकालीन थे या उसके वाद हुए थे । और भी कई जगह वराहमिहिरके ग्रन्थोंसे उन्होंने ज्योतिर्विषयक कई कल्पनायें ली हैं । नीचे दिये हुए उदाहरण देखिए—

(अ) वराहमिहिर – भूच्छायां स्वग्रहणे भास्करमर्कग्रहे प्रविशतीन्दुः ।

वृहत्संहिता–राहुचार.

कालिदास – छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वे–
नारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः ।। रघु. १४, ४०.

इन दोनों अवतरणोंमें भूमिकी छायाके कारण चन्द्रको ग्रहण लगता है, ऐसा वर्णन है ।

(आ) वराहमिहिर – सलिलमये शशिनि रवेर्दीधितयो मूर्छितास्तमो नैशम् ।

वृहत्संहिता–चन्द्रचार.

कालिदास – पुपोष वृद्धिं हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव वालचन्द्रमाः ।।

रघु. ३, २२.

इन दोनों स्थलोंमें यह कल्पना पाई जाती है कि चन्द्र सूर्यकी किरणोंसे प्रकाशित होता है, अतः वराहमिहिर और कालिदास ये दोनों ही विक्रमादित्यके नवरत्नोंमेंसे थे, यह परम्परागत कथा सत्य होनी चाहिए ।

उपर्युक्त प्रमाण भी विशेष प्रवल नहीं दीखते। 'मेघदूत' के चतुर्थ श्लोकमें 'आषाढस्य प्रशमदिवसे' ऐसा भी पाठ है। यदि वह माना जाय तो वर्षाऋतुका आरम्भ

☆ राजतरंगिणी, ३, २९–३२० ।

आषाढके अन्तमें, अर्थात् श्रावणके प्रारम्भमें होता था, ऐसा अर्थ उस श्लोकसे निकलेगा। कालिदासने इसके सिवाय और भी दो जगह (रघु. १२, २९ और १८, ६) श्रावण महीनेमें वर्षाऋतुका आरम्भ होता था, ऐसा सूचित किया है। उससे भी उनका काल वराहमिहिरके कालसे भी पहले आता है। ऊपर जो ज्योतिष-विषयक कल्पनाके समान स्थल दिखलाये गये हैं उनमें से पहले स्थल में कालिदास चन्द्रग्रहणके विषयमें न कहकर चन्द्रमें दीखनेवाला जो धब्बा है उसका कारण वर्णन करते हैं। दूसरे स्थलकी, चन्द्र सूर्य-किरणोंसे प्रकाशित होता है, यह कल्पना अत्यन्त प्राचीन है। ईसापूर्व ८ वीं शताब्दीमें यास्काचार्य हुए जिन्होंने अपने निरुक्तमें 'अथाप्यस्यैको रश्मिश्चन्द्रमसं प्रति दीप्यते तदेतेनोपेक्षितव्यम्। आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवति।' (अ. २, ६) इस प्रकार चन्द्रके सूर्यकिरणद्वारा प्रकाशित होनेका वर्णन किया है। अतः इन प्रमाणोंसे कालिदासको वराहमिहिरका समकालीन मानना युक्तिसंगत नहीं दीखता।

(इ) मेघदूत में दिङ्नागाचार्यका उल्लेख—कालिदासने अपने 'मेघदूत' काव्यमें यक्षके द्वारा मेघको अलकापुरीका मार्ग दिखलाते हुए लिखा है :—

स्थानादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः खम्
दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान्॥

—मेघदूत, १४

इस श्लोकार्धमें श्लेषके द्वारा अपने समकालीन निचुल और दिङ्नाग, इन दो कवियोंका उल्लेख किया है, ऐसा दक्षिणावर्त तथा मल्लिनाथ, मेघदूतके इन दो टीकाकारोंने अपनी टीकाओंमें कहा है—"उनमेंसे रामगिरिके समीप रहनेवाला कालिदासका सहाध्यायी मित्र निचुल कवि कालिदासके काव्योंपर उठाये हुए आक्षेपोंको दूर करता था, तो कालिदासका प्रतिस्पर्धी दिङ्नाग, 'कालिदासने अपनी कल्पनाएँ दूसरे ग्रन्थोंसे चुराई हैं,' इस प्रकार बड़े आग्रहके साथ हाथ उठा उठा कर आक्षेप किया करता था। अतः उस दिङ्नागाचार्यके मोटे मोटे हाथोंको दूरहीसे बचाकर, हे मेघ, तू उत्तरकी तरफ अपने मार्गपर चले जाना, ऐसा कालिदासने यक्षके मुखसे मेघके प्रति कहलाया है। दिङ्नाग, एक प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक, ईसवी सन्की छठी शताब्दीमें हुआ था। इससे यह सिद्ध होता है कि कालिदास भी इसी समय मौजूद थे।

यह प्रमाण भी प्रबल नहीं दीखता। यह ठीक है कि कालिदास अपने काव्योंमें कहीं कहीं श्लेषका प्रयोग करते हैं। फिर भी बाण, सुबन्धु, श्रीहर्ष आदिकी तरह वे प्रचुरमात्रामें श्लेषका उपयोग नहीं करते। इसलिये किसी विशेष प्रमाणके न रहते हुए श्लेषमूलक व्यक्तिगत उल्लेख उनके काव्यमें देखना ही उचित नहीं है। दूसरी बात यह है, 'दिङ्नागानाम्' इस पदसे यदि कविको अपने प्रतिस्पर्धीका उल्लेख करना होता

तो वह बहुवचनका उपयोग न करता । इसके सिवा दिङ्नाग एक तार्किक विद्वान् था। काव्य-शास्त्रका भी उसे व्यासंग था, ऐसा कहीं उल्लेख नहीं । तब उसने कालिदासके दोष दिखलानेके लिये उठा-धरी की होगी, ऐसा नहीं मालूम होता । उपर्युक्त श्लोकमें जिन निचुल और दिङ्नागका उल्लेख है, अगर हम उनको कोई व्यक्ति विशेष मान लें तो भी कालिदासके उक्त समयका निर्णय नहीं हो पाता । क्योंकि डॉ. कीथ, प्रो. मॅक्डोनेल आदिके मतसे, दिङ्नागका स्थिति-काल ई. स. ४०० के लगभग ठहरता है । दिङ्नागका गुरु वसुबन्धु महाराज चन्द्रगुप्तके पुत्रका मन्त्री था । इसका उल्लेख वामनने अपनी 'काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति' में किया है । अनेक विद्वानोंके मतमें यह चन्द्रगुप्त, गुप्त राज्यका संस्थापक प्रसिद्ध पहला चन्द्रगुप्त (ई. स. ३१९–३३०), तथा उसका पुत्र, प्रसिद्ध सम्राट् समुद्रगुप्त है । अतः वसुबन्धुका काल चौथी शताब्दीका मध्यभाग और उसके शिष्य दिङ्नागका समय चौथी शताब्दीका अन्तिम भाग ठहरता है ।

(ई) 'ज्योतिर्विदाभरण में आया हुआ उल्लेख 'ज्योतिर्विदाभरण' ग्रन्थके १२ वें अध्यायमें यह पाया जाता है कि यह ग्रन्थ शकारि विक्रमादित्यके आश्रयमें रहनेवाले कालिदास कविका बनाया हुआ है और वह कवि उसके नवरत्नोमेंसे एक था * । इसी ग्रन्थमें ज्योतिषविषयक उल्लेखके कारण यह ग्रन्थ १३ वीं शताब्दीका बना हुआ ठहरता है । परन्तु उक्त ग्रन्थकारने वराहमिहिरके अनुसार कलियुगके आरम्भका जो समय निश्चित किया है उससे इस ग्रन्थका रचना काल ५८० ठहरता है । इस ग्रन्थ और कालिदास के काव्यमें अनेक जगह कल्पना साम्य पाया जाता है× इसके अन्तमें आई हुई विक्रमकी प्रशस्तिकी भाषा जितनी सुन्दर होनी चाहिए, उतनी नहीं है, यह सत्य है। पर महाकविकी भाषामें सर्वत्र एक-सा ही सौष्ठव और धारा-प्रवाह रहना ही चाहिए, यह सम्भव नहीं । उदाहरणार्थ, भाषाकी क्रमबद्धता और सौष्ठवको लेकर बहुत दिनों तक 'ऋतु-संहार' और 'मालविकाग्निमित्र' के सम्बन्धमें विद्वानोंमें विवाद होता रहा । अतः कालिदास ई. स. की छठी शताब्दीमें यशोधर्मा-विष्णुवर्धनके दरबारमें मौजूद रहे होंगे।

उपर्युक्त मत भी ठीक नहीं जँचता । 'ज्योतिर्विदाभरण' का काल छठी शताब्दीको मान लिया जाय, तो भी वह रघुवंशादि उत्कृष्ट ग्रन्थ-लेखक कालिदासका रचा हुआ मालूम नहीं पड़ता । 'ज्योतिर्विदाभरण' के २२ वें अध्यायके वीसवें श्लोकको पढ़िए ।

---

* धन्वन्तरिक्षपणकाकेरसिंहशङ्कुवेतल भट्टघटर्परकालिदासाः ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ।। २२,१०.

× ज्योति. ४, ८५, और कुमार, १, ३ देखिये ।

अगर यह निर्देश ठीक है तो रघुवंश आदि काव्योंके अनन्तर ही कालिदासने इस ग्रन्थको लिखा होगा। उस समय कालिदासकी बुद्धि परिपक्व हो गई थी। उसकी लेखनीसे इस ग्रन्थमें सदोष भाषाका प्रयोग नहीं हो सकता। 'ऋतुसंहार' और 'मालविकाग्निमित्र' का धर घसीटना ठीक नहीं। क्योंकि कविने उन्हें पहले ही लिखा था। यदि कविकी भाषा-शैली उन काव्योंमें उतनी परिमार्जित, निर्दोष और मधुर नहीं दीखती, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। अतः किसी दूसरे व्यक्तिने कालिदासके नामपर इस ग्रन्थको बनाया या कालिदास नामक किसी दूसरे ग्रन्थकारने ही इसे लिखा होगा। इस प्रकारके तीन कालिदास राजशेखरके समय (ई. स. की दसवीं शताब्दी) में लोगोंको विदित थे। उन्हींको लक्ष्य करके राजशेखरने एक जगह कहा है —

एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्।
शृंगारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ॥

शृंगार रसके वर्णन करनेमें और मधुर भाषाशैलीमें एक कालिदासकी बराबरी करनेवाला आजतक कोई उत्पन्न नहीं हुआ, फिर तीन कालिदासोंको (भिन्न भिन्न विषयोंमें) परास्त करनेवाला कहाँ मिलेगा!

(उ) **कालिदासके ग्रंथोंमें ज्योतिषविषयक उल्लेख** — कलकत्ता विश्वविद्यालयके गणितके प्राध्यापक डॉ. प्रबोधचन्द्र सेनगुप्तने कालिदासके ग्रन्थोंमें ज्योतिषविषयक उल्लेखोंका गणित करके उन्हें ईसाकी छठी शताब्दीका सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है *। उनके प्रमुख प्रमाणोंकी परीक्षा कर लेनी चाहिए।

(अ) 'मेघदूत' में वर्णन है कि निर्वासित यक्षने रामगिरिपर आषाढ़के अन्तिम दिन (आषाढस्य प्रशमदिवसे) मेघ देखा; उसके बाद थोडे ही कालमें श्रावण मास शुरू होनेवाला था (प्रत्यासन्ने नभसि – श्लो. ४); आगे चलके चार महीनोंके बाद (कार्त्तिकमें प्रबोधिनी एकादशीके दिन) भगवान् विष्णु अपने भुजगशयनसे उठनेवाले थे (शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ।) इस वर्णनसे प्राध्यापक सेनगुप्त निम्नलिखित अनुमान निकालते हैं —

यक्षने चान्द्र आषाढ़की एकादशीमें मेघको देखा। उसके अनन्तर दूसरे ही दिन श्रावणका आरम्भ होनेवाला था। अर्थात् इस तिथिको समाप्त होनेवाला आषाढ़ सौर मास ही होना चाहिए। कालिदासके कालमें इसी दिन दक्षिणायनारम्भ होता था और वर्षा शुरू होती थी। इन तीन उल्लेखोंका गणित करके प्रा. सेनगुप्तने निश्चित किया है कि यह दिन २० जून ई. स. ५४१ था। अतः कालिदास छठी शताब्दीके मध्यमें हुए होंगे।

* P. C. Sengupta, Ancient Indian Chronology, pp. 263 b.

किन्तु 'मेघदूत' में उपरिनिर्दिष्ट वर्णनको इतनी वारीकीसे देखना ठीक नहीं जान पड़ता । सौर मासोंका उल्लेख कालिदासके अन्य ग्रन्थोंमें ही नहीं किन्तु प्राचीन उत्कीर्ण लेखोंमें भी कहीं नहीं दिखाई देता । मेघदूतके वर्णनका आशय इतना ही दीखता है कि यक्षने रामगिरिपर (पूर्णिमान्त) आषाढ़की अन्तिम तिथिको (अर्थात् आषाढ पौर्णिमाके दिन) मेघको देखा । उसके बाद थोड़े ही कालके अनन्तर (अर्थात् दूसरे ही दिन) वर्षाऋतुका पहिला महिना शुरू होनेवाला था । आगे चलकर चार महिनोंके बाद प्रबोधिनी एकादशीके समय यक्षका शाप समाप्त होनेवाला था और उसकी अपनी प्रिय पत्नीसे भेंट होनेवाली थी । मेघदूतके वर्णनका अर्थ यदि इस तरह लगाया जाय तो वह वर्णन ई. स. ५४१ को ही नहीं किन्तु उसके पहिलेके सौ-डेढ़ सौ वर्षोंके कालपर भी लागू होगा ।

(आ) 'शाकुन्तल' के अन्तिम अंकमें शकुन्तलाको पहिचाननेके बाद दुष्यन्त कहता है--

स्मृतिभिन्नमोहतमसो
दिष्टचा प्रमुखे स्थितासि मे सुमुखि ।
उपरागान्ते शशिनः
समुपगता रोहिणी योगम् ।।

[अर्थ–हे प्रिये, ग्रहणसे मुक्त हुए चन्द्रसे जिसका योग हुआ है ऐसी रोहिणी तारिकाकी भाँति, तुम मेरे सामने, जिसके मनका मोह नष्ट हुआ है, खड़ी हो ।]

प्रा. सेनगुप्त मानते हैं कि इसमें कालिदासके प्रत्यक्ष देखे हुए खग्रास चन्द्रग्रहणका वर्णन है । इस दृष्टिसे गणित कर उन्होंने निश्चित किया है कि यह खग्रास चन्द्रग्रहण उज्जैनमें ८ नवम्बर सन् ५४२ की रात्रिमें ८–३६ पर लगा और मध्यरात्रिके बाद २० मिनटपर छूटा । उस समय चन्द्रका योग रोहिणी तारिकासे था । अतः कालिदास छठी शताब्दीके मध्यमें हो गये होंगे ।

कई लोग सामान्य कथनकी कैसी खींचतान करते हैं, इसका यह उत्कृष्ट उदाहरण है । कालिदासको रोहिणी-चन्द्रकी युतिका दृश्य अत्यन्त सुन्दर दिखता था । उन्होंने उसका उल्लेख अन्य स्थलोंमें भी किया है । * अतः यदि उन्होंने 'शाकुन्तल' में दुष्यन्त और शकुन्तलाके पुनर्मिलनको वही उपमा दी तो उसमें क्या आश्चर्य है ? इस मिलनके पूर्व दुष्यन्तका मन दुर्वासा ऋषिके शापसे मोहग्रस्त हुआ था । अतः उपमान देते समय

* देखिये--हञ्जे निपुणिके एष रोहिणीसंयोगेन अधिकं शोभते भगवान् मृगलाञ्छनः।
–विक्रम, अंक ३ ।

रोहिणीसे युति होनेके पूर्व चन्द्रको ग्रहण लगा था ऐसी कल्पना कविने की है। इस कल्पनाके लिये उसे आकाशमें प्रत्यक्ष ग्रहण देखनेकी आवश्यकता नहीं है।

इस तरहके और एक-दो ज्योतिषविषयक प्रमाण प्रा. सेनगुप्तने दिये हैं, किन्तु वे इनसे भी दूरान्वित हैं। विस्तार-भयसे उनकी चर्चा नहीं की जाती।

यहाँ तक हमने कालिदासके विषयमें कुछ विभिन्न मतोंका समीक्षण किया और वे मत युक्तिसंगत नहीं, यह भी दिखाया। अब हम अपना मत सप्रमाण पाठकोंके सामने प्रस्तुत करते हैं। कालिदासके छठी शताब्दीमें रहनेका मत निराधार बतलाया जा चुका है। अगर इससे पहले जायँ तो पाँचवीं शताब्दीके द्वितीयार्धके पहले कालिदास विद्यमान रहे होंगे, यह निम्नलिखित प्रमाणके आधारपर कहा जा सकता है:–

मध्य भारतके मन्दसोर नामक स्थानमें ईस्वी सन् ४७३ का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है। डा. फ्लीटने उसको अपनी 'गुप्तकालीन उत्कीर्ण लेख' नामक पुस्तक * में प्रकाशित किया है। इस लेखमें, लाट अर्थात् मध्य और दक्षिण गुजरातसे निकल कर मन्दसोरमें आकर बसे हुए जुलाहों की श्रेणिने सम्राट् कुमार-गुप्तके शासनकालमें ईस्वीसन् ४३७ में एक सूर्यमन्दिर बनवाया और फिर ईस्वी सन् ४७३ में उसका जीर्णोद्धार किया, इस प्रकारका वर्णन आया है। उस अवसरपर श्रेणिने वत्सभट्टि नामक कविद्वारा शिलाखण्डपर खुदवाकर मन्दिरमें एक संस्कृत प्रशस्ति स्थापित की। इस प्रशस्तिमें कई जगह कालिदासकी कविताका अनुकरण किया गया है। डा. बूलर, कीलहॉर्न, मॅक्डोनेल, कीथ वगैरह विद्वानोंका भी यही मत है। उदाहरणार्थ, कालिदास और वत्सभट्टिकी समानता नीचे दी जाती है ––

कालिदास––विद्युद्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः
संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम्।
अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुंगमभ्रंलिहाग्राः
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः॥
मेघदूत, ६६.

वत्सभट्टि––
चलत्पताकान्यबलासनाथान्यत्यर्थशुक्लान्यधिकोन्नतानि।
तडिल्लताचित्रसिताभ्रकूटतुल्योपमानानि गृहाणि यत्र॥ श्लोक १०.

इन दोनों पद्योंमें उत्तुंग भवनों और मेघोंकी एक ही प्रकारकी तुलना दृष्टिगोचर होती है। निम्नोद्धृत पद्योंमें पाया हुआ साम्य भी ध्यान देने योग्य है––

* Dr. Fleet : Gupta Inscriptions (No. 18).

कालिदास—

निरुद्धवातायनमन्दिरोदरं हुताशनो भानुमतो गभस्तयः ।
गुरूणि वासांस्यबलाः सयौवनाः प्रयान्ति कालेऽत्र जनस्य सेव्यताम् ।।
न चन्दनं चारुमरीचिशीतलं न हर्म्यपृष्ठं शरदिन्दुनिर्मलम् ।
न वायवः सान्द्रतुषारशीतला जनस्य चित्तं रमयन्ति साम्प्रतम् ।।
ऋतुसंहार ५, २–३.

वत्सभट्टि—

रामासनाथभवनोदरभास्करांशुवह्निप्रतापसुभगे जललीनमीने ।
चंद्रांशुहर्म्यतलचंदनतालवृन्तहारोपभोगरहिते हिमदिग्धपद्मे ।।
श्लोक ३१.

वत्सभट्टिके पद्योंमें कालिदासके पद्यों का प्रतिबिम्ब साफ साफ झलक रहा है । वत्सभट्टि एक निम्न कोटिका कवि था । उसकी कृतिमें विद्वानोंने अनेक दोष निकाले हैं * । इससे यह सहजहीमें अनुमान निकलता है कि उसीने कालिदासकी कल्पनाकी नकल की है । इस प्रमाण द्वारा हम इस निश्चयपर पहुँचते हैं कि कालिदास पाँचवीं शताब्दीके द्वितीयार्धके पहले हुए होंगे ।

अव कालिदासके स्थितिकालकी पूर्व सीमा और भी अधिक निश्चित रूपसे कितनी ठहरती है, इसपर भी हम विचार करेंगे । कालिदासने वात्स्यायनके कामशास्त्रका वहुत गहरा अध्ययन किया था । विवाहित स्त्रीके कर्तव्योंका उल्लेख करते हुए वात्स्यायनने निम्नलिखित सूत्र लिखे हैं—

श्वश्रूश्वशुरपरिचर्या तत्पारतंत्र्यमनुत्तरवादिता ।
. . . . भोगेष्वनुत्सेकः । परिजने दाक्षिण्यम् ।
. . . . नायकापचारेषु किंचित्कलुषिता नात्यर्थं निवदेत् ।
कामसूत्र, पृ. २३९, २३६.

उक्त सूत्रोंमें इधर-उधर विखरे हुए विचारोंकी एक सुन्दर पुष्पमाला गूँथकर कालिदासने कुलपति कण्वके मुखसे नववधू शकुन्तलाको एक वहुत ही उत्कृष्ट, भावपूर्ण उपदेश निम्नलिखित श्लोक द्वारा दिलाया है—

शुश्रूषस्व गुरुन् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः ।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भोगेष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ।।
शाकुं. ४, १७.

* डा. वूलरका लेख—Indian Antiquary, Vol. 54, pp. 146-47.

'अभिज्ञानशाकुन्तल' में जो सर्वोत्कृष्ट चार श्लोक माने जाते हैं उनमें काव्य-रसिकोंने इस श्लोकको परिगणित किया है। परन्तु इस श्लोकमें मूल कल्पना वात्स्यायनकी है, यह स्पष्ट हो जाता है। इससे कालिदास वात्स्यायनके पीछेके ठहरते हैं। कामशास्त्रमें जिस राजकीय परिस्थितिका उल्लेख है, उसके अनुसार वात्स्यायनका काल विद्वानोंने ईसवी तीसरी शताब्दीका मध्य ठहराया है,* अतः कालिदास ईस्वी सन् २५० के पीछे हुए होंगे।

हमें ईस्वी सन् २५० से ४५० तक अर्थात् इन दो सौ वर्षोंके बीचमें कालिदासका समय खोजना होगा। उनके ग्रन्थोंसे यह विदित होता है कि वे उज्जयिनीमें रहते थे। परम्परागत कथाओंके आधारपर और उनके ग्रन्थोंमें आये हुए 'विक्रम' इस श्लेष-गर्भित नामसे यह अनुमान होता है कि उनका आश्रयदाता कोई शकारि विक्रमादित्य अवश्य रहा होगा। इस बातका उल्लेख ऊपर भी किया जा चुका है। इस प्रकरणके आरम्भमें, ११ वीं शताब्दीमें उत्पन्न हुए अभिनन्द कविकी जिस उक्तिको हमने उद्धृत किया है उसीमें किसी शकारिके आश्रयसे कालिदासके ग्रन्थोंको प्रसिद्धि मिली, ऐसा कहा है। उपर्युक्त २०० वर्षके समयमें द्वितीय चंद्रगुप्त और उसके पौत्र स्कंदगुप्त इन दोनोंने विक्रमादित्यकी पदवी धारण की थी, यह बात उनके समयके मिले हुए सिक्कोंसे स्पष्ट होती है। उनमेंसे द्वितीय चंद्रगुप्तको ही शकारि कह सकते हैं। इसका कारण यह है कि इस राजाने ईस्वी सन् ३९५ के लगभग काठियावाड़के शकवंशीय क्षत्रपोंका समूल उच्छेद कर उस प्रांतको अपने राज्यमें मिला लिया था। यह बात शिलालेख और मुद्राओंसे भी प्रमाणित हो चुकी है। उसकी राजधानी उज्जयिनी थी। वह बड़ा दानशूर था, दूर दूर तक उसकी ख्याति थी और उसने उदारतापूर्वक विद्वानोंको आश्रय दे रक्खा था। कौत्स शाब नामके उसके एक सान्धिविग्रहिक मंत्रीने बिदिशाके उदयगिरिमें एक लेख ★ खुदवाया था। उस लेखमें उसने अपने 'शब्दार्थन्यायलोकज्ञ' और 'कवि' होनेका स्पष्ट निर्देश किया है। इससे द्वितीय चंद्रगुप्त विद्वान् व्यक्तियोंको राज्यके ऊँचे पदोंपर नियुक्त किया करता था, ऐसा मालूम होता है। वह राजा स्वयं भी बड़ा विद्वान् था। कालिदास, मेण्ठ इत्यादि विद्वानोंकी तरह उज्जयिनीकी विद्वत्परिषद्के सामने उसने स्वयं परीक्षा दी थी, ऐसा उल्लेख राजशेखरकी 'काव्यमीमांसा' में पाया जाता है ¶ राजशेखरके कथनानुसार राजाके कवि होनेपर सब लोग काव्य-

---

* H. C. Chakladhar : Social Life in Ancient India, p. 33.

★ Dr. Fleet : Gupta Inscriptions (No. 6.)

¶ श्रूयते चोज्जयिन्यां काव्यकारपरीक्षा। इह कालिदासमेण्ठावत्रामररूपसूरभारवयः। हरिचन्द्रचन्द्रगुप्तौ परीक्षिताविह विशालायाम्॥ काव्यमीमांसा अ. १०.

कवीन्द्रवचनसमुच्चयादि प्राचीन श्लोक-संग्रहोंमें विक्रमादित्यके नामपर आये हुए श्लोक द्वितीय चंद्रगुप्तके होंगे।

रचना करने लग जाते हैं और उनको राजाका आश्रय मिलता है। अतः इस चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके ही आश्रयमें कालिदास रहे होंगे, ऐसा अनुमान होता है।

कालिदासके चरित्रके संबंधमें जो कुछ जानकारी अब तक हुई है उसके द्वारा भी उपर्युक्त अनुमानोंकी पुष्टि होती है। कवि क्षेमेंद्रने 'औचित्य-विचार-चर्चा' में अधिकरण कारकके औचित्यके उदाहरण देते समय निम्नांकित श्लोक कालिदासके 'कुन्तलेश्वरदौत्य' नामक ग्रंथसे लिया है।

इह निवसति मेरुः शेखरः क्ष्माधराणा-
मिह विनिहितभाराः सागराः सप्त चान्ये।
इदमहिपतिभोगस्तम्भविभ्राजमानं
धरणितलमिहैव स्थानमस्मद्विधानाम् ।।

औचित्यविचारचर्चा, पृ. १४०.

इस श्लोकमें स्थानवर्णनका औचित्य क्षेमेन्द्रने इस प्रकारसे व्यक्त किया है कि किसी सम्राट्का एक दूत मांडलिक राजाकी सभामें गया, उसे अपने स्वामीके सम्मानके अनुकूल उस सभामें बैठनेके लिए आसन न मिला, तो आवश्यक राजकार्य होनेके कारण वह भूमिपर बैठ गया। दरबारियोंने जब उसका परिहास किया तब धीर गंभीर स्वरसे वह बोला – 'शेष-फणारूपी स्तम्भोंपर स्थिर, यह भूमितल ही हमारे बैठने योग्य स्थान है। कारण कि पर्वतश्रेष्ठ मेरु और सात महासागर इस आसनपर विराजमान हैं। उन्हींकी जैसी मेरी योग्यता है।' यह दूत अथवा राजप्रतिनिधि कौन था और किस सम्राट्का था इसका पता लगानेके लिये अभी हालमें साधन उपलब्ध हुआ है। कुछ वर्ष पहले मद्रास प्रान्तमें धाराधीश भोजराजका 'शृंगार-प्रकाश' नामका एक ग्रंथ मिला। उसके आठवें प्रकाशमें **कालिदासके मुखसे** निम्नलिखत श्लोक कहलाया गया है—

असकलहसितत्वात्क्षालितानीव कान्त्या
मुकुलितनयनत्वाद्व्यक्तकर्णोत्पलानि।
पिबति मधुसुगन्धीन्याननानि प्रियाणां
त्वयि विनिहितभारः कुन्तलानामधीशः ।।

[कुन्तल देशका राजा तुमपर राज्यका सम्पूर्ण भार डालकर अपनी प्रियाओंके सुरापानसे सुगन्धित मुख चूम रहा है, जिन मुखोंपर मन्द हास्यने एक आभा छिड़क दी है और नेत्र बन्द कर लेनेसे जिनके कानोंके कमल स्पष्ट देख पड़ते हैं।] इससे सिद्ध होता है कि कालिदास ही दूत बनकर कुन्तलेश्वर नामक राजाकी सभामें गये होंगे। लौट आने पर विक्रमादित्यने कालिदाससे कुन्तलेश्वरके सम्बन्धमें जब प्रश्न किया तब उसने यह उत्तर दिया कि कुन्तलेश तुम्हारे ऊपर राज्यका भार डाल कर अंतःपुरमें

स्त्रियोंके साथ रस रंग मचानेमें मस्त है। यह श्लोक भोजके 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में और राजशेखरकी 'काव्यमीमांसा' में उद्धृत है। राजशेखरने कहा है कि उक्त श्लोकमें थोड़ा-सा हेर-फेर करके—

पिबतु मधुसुगन्धीन्याननानि प्रियाणां
मयि विनिहितभारः कुन्तलानामधीशः ।। काव्यमीमांसा, अ. ११.

'अर्थात् मुझपर भार डालकर कुन्तलेश्वर मधुसुगन्धित प्रियामुखोंका अच्छी तरह चुम्बन करे,' यही उत्तर विक्रमादित्यने कालिदासको दिया था। उपरिनिर्दिष्ट दो श्लोकोंसे जान पड़ता है कि विक्रमादित्यने कालिदासको अपना दूत बना कर मांडलिक कुन्तलेशकी सभामें भेजा था। यद्यपि वहाँ प्रथम उनका अपमान हुआ, तो भी वहाँ रहकर और वहाँकी सब परिस्थितिका निरीक्षण कर उन्होंने अपने आश्रयदाता सम्राट् विक्रमादित्यसे प्रतिवेदन किया कि 'आपपर राज्यका भार डालकर कुन्तलेश स्त्रियोंके साथ विलासमें रत रहता है।' यह सुनकर विक्रमादित्यने भी उत्तर दिया कि 'कोई बात नहीं। मैं उसके राज्यका रक्षण करनेमें समर्थ हूँ।' कालिदास महान् पंडित और चतुर राजदूत थे, यह हम उनके ग्रन्थोंपरसे आगे दिखलाएँगे। यदि उनको अपना प्रतिनिधि बनाकर सामंत-सभामें विक्रमादित्यने भेजा हो तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं।

अब यह कुन्तलेश्वर कौन था, इसका विचार करना चाहिये। इस प्रश्नपर अब तक दो मत प्रकट किये जा चुके हैं। साधरणतः दक्षिण महाराष्ट्र तथा मैसूरके उत्तर भागको 'कुन्तल देश' कहते हैं। मैसूर राज्यके शिमोगा जिलेमें तालगुण्ड नामक स्थानमें कदम्बोंका एक शिलालेख मिला है। उसमें ऐसा उल्लेख किया गया है कि, 'काकुस्थवर्मन् नामक राजाने अपनी बेटीका विवाह गुप्तराजके साथ किया था।' इससे बम्बईके सेंट जेवियर कालेजके अध्यापक फादर हेरासने यह अनुमान निकाला कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यने इस राजाकी कन्याको अपने राजकुमारके लिए माँगा होगा और उस विवाहसंबंधको जोड़नेके लिये कालिदासको अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा होगा। *

परन्तु उपर्युक्त बातके लिये कोई आधार नहीं दीखता। कारण यह है कि तालगुण्डके लेखमें अमुक गुप्तराजाने कदम्ब राजकन्याका वरण किया था— इसका कोई उल्लेख नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त ऊपर दिये हुए श्लोकमें जैसा वर्णन है, तदनुसार कदम्ब राजाका राज्य चन्द्रगुप्तकी नीतिके अनुसार संचालित होता था, इसका प्रमाण कहीं नहीं मिलता। दूसरी बात यह भी है कि

* J. B. O. R. S, Vol. XII, Part IV.

काकुस्थवर्मन् और चन्द्रगुप्तके समयमें ५०–६० वर्षका अन्तर पड़ता है। अतः उक्त अनुमानके ठीक होनेमें हमें सन्देह है। इससे प्रतिकूल मत प्रोफेसर कृष्ण-स्वामी ऐयंगारने प्रतिपादित किया है। उन्होंने लिखा है कि 'कुन्तलेश्वर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यका नाती वाकाटक द्वितीय प्रवरसेन था।' यही मत युक्तिसंगत मालूम होता है। चन्द्रगुप्तने अपनी बेटी प्रभावतीगुप्ता वाकाटक घरानेके राजा द्वितीय रुद्रसेनको दी थी। यह विवाह ईस्वी सन् ३९५ के लगभग हुआ होगा, ऐसा विन्सेंट स्मिथने सिद्ध किया है। रुद्रसेनकी मृत्यु बहुत जल्दी हुई। उसके दिवाकरसेन और दामोदरसेन नामक दो पुत्र थे। जब तक दोनों राजकुमार नाबालिग थे तब तक उनकी तरफसे प्रभावतीगुप्ताने कई वर्ष तक राज्यका संचालन किया। बादमें उनमेंसे एक राजकुमार (द्वितीय) प्रवरसेन नामसे गद्दीपर बैठा। प्रवरसेनके बाल्यकालमें चन्द्रगुप्तके आदेशानुसार राज्यका कारभार चलता था और वाकाटकोंके राजदरबारी लोग गुप्त अधिकारियोंके अधीन थे, यह प्रभावतीगुप्ताके ताम्रपटोंसे मालूम होता है। इसका प्रमाण यह है कि उन ताम्रपटोंमें वाकाटक वंशकी वंशावली न देकर प्रभावतीगुप्ताने अपने मायकेकी अर्थात् गुप्त घरानेकी वंशावली दी है। प्रवरसेनके सयाने होने पर वह राज्यका कारभार किस प्रकार चलाता है, यह जाननेकी इच्छासे विक्रमादित्यने कालिदासको विदर्भ देशमें भेजा होगा और कालिदासने विदर्भ प्रांतमें कुछ काल तक वास किया होगा।

वहाँ रहते समय उन्होंने वाकाटक राजधानीके समीपके रामगिरिपर (विद्य-मान रामटेकपर) अपना 'मेघदूत' काव्य लिखा और द्वितीय प्रवरसेनको 'सेतुबंध' रचनेमें सहायता दी, ऐसा अनुमान हो सकता है। कालिदासका वाकाटकोंसे इतना घनिष्ठ संबंध होनेके कारण उपरिनिर्दिष्ट कुन्तलेश वाकाटक नृपति द्वितीय प्रवरसेन ही होगा,' यह मत प्रो. ऐयंगारने प्रतिपादन किया है। "इस प्रवरसेनका राज्य कुन्तलदेशपर कभी नहीं था। फिर भी उसको 'कुन्तलेश्वर' कैसे कहा" यह आक्षेप इस मतपर संभव था। किंतु उसका निराकरण प्रो. ऐयंगारने निम्न-लिखित प्रकारसे किया है – 'अजंताके एक लेखसे ज्ञात होता है कि इस प्रवरसेनके पितामह प्रथम पृथिवीषेणने जब कुन्तलाधिपका पराभव किया था तबसे वाकाटक राजाओंने 'कुन्तलेश' पदवी धारण की होगी। उल्लिखित प्रमाण श्रीकृष्ण कविके 'भरतचरित' काव्यमें मिलता है। इस कविने अपने काव्यके प्रारम्भमें प्राचीन कवियोंकी स्तुति करते समय प्रवरसेनका उल्लेख 'कुन्तलेश' रूपमें किया है।'*

---

* जलाशयस्यान्तरगाधसत्त्वमलब्धबन्धं गिरि चौर्यवृत्या।
लोकेष्वलं कान्तमपूर्वसेतुं बबन्ध कीर्त्या सह कुन्तलेशः ॥—भरतचरित, सर्ग १, श्लोक ४, इसमें अनेक शब्दोंपर श्लेष है।

इन सब प्रमाणोंके आधारपर वाकाटक द्वितीय प्रवरसेनही 'कुन्तलेश्वरदौत्य' में उल्लिखित कुन्तलेश्वर था, इस मतका प्रो. ऐयंगारने प्रतिपादन किया है।*

किन्तु प्रो. ऐयंगारके इस मतपर अनेक आक्षेप किये जा सकते हैं। गुप्तों और वाकाटकोंका इतना घनिष्ठ संबंध होते हुए भी वाकाटकोंकी सभामें प्रथम प्रसंग पर कालिदासका ऐसा अपमान होना असंभव है। इसके अतिरिक्त, यद्यपि वाकाटकोंने कुन्तलनृपतिको पराजित किया था तो भी उन्होंने स्वयं 'कुन्तलेश' पदवी धारण की थी, इसका कोई प्रमाण नहीं है। इसके विरुद्ध उनके अन्तिम बालाघाट ताम्रपटमें भी वाकाटक नृपति नरेन्द्रसेनका विवाह कुन्तलराजकन्याके साथ हुआ था, ऐसा उल्लेख है। उससे वाकाटक और कुन्तलेश भिन्न थे, इसमें संदेह ही नहीं रह जाता। श्रीकृष्ण कविका निश्चित काल ज्ञात नहीं, किन्तु उसका काव्य बहुत प्राचीन नहीं दिखता। अतः उसका विधान इस विवादास्पद विषयमें निर्णायक नहीं माना जा सकता।

प्रस्तुत लेखकके हालहीके अनुसंधानसे इस विषयपर नया प्रकाश पड़ा है। सातारा, कोल्हापुर, दौंड प्रदेशमें गत कुछ वर्षोंमें तीन चार ताम्रपट मिले हैं। उनका साकल्यसे विचार करने पर स्पष्ट होता है कि ईसाकी चौथी शताब्दीसे दक्षिण महाराष्ट्रमें मानपुर नामक नगरमें एक राष्ट्रकूट वंश राज्य करता था। इस वंशका मूलपुरुष मानांक था। उसने अपने नामसे मानपुर नामक नगर बसा कर वहाँ अपनी राजधानी बनाई। कोल्हापुर ताम्रपटमें उसे 'कुन्तलानां प्रशासिता' (अर्थात् कुन्तल देशका अधिपति) कहा गया है। अतः वह कुन्तल देशपर राज्य करता था, इसमें संदेह नहीं। कुन्तल देशमें कृष्णा नदीकी घाटी और उसके दक्षिणका प्रदेश अन्तर्भूत होता था। 'विख्यातकृष्णवर्णे तैलस्नेहोपलब्धसरलत्वे। कुन्तलविषये नितरां विराजते मल्लिकामोदः॥' यह उत्तर चालुक्यनृपति जयसिंह ऊर्फ मल्लिकामोदके वर्णनपर श्लेषपूर्ण सुंदर श्लोक देखिये है। इसमें कृष्णवर्णा या कृष्णा नदी कुन्तलदेशमें बहती है, ऐसा स्पष्ट निर्देश है। इस ताम्रपटमें निर्दिष्ट गाँवोंसे पता लगता है कि सातारा जिला राष्ट्रकूटोंके राज्यमें समाविष्ट था। इतर ताम्रपटोंके प्राप्तिस्थानोंसे इस राजवंशका राज्य दक्षिण महाराष्ट्रमें सातारा, कोल्हापुर, सोलापुरके प्रदेशपर था यह स्पष्ट दिखता है। उसकी राजधानी मानपुर सातारा जिलेकी माण तहसीलका मुख्य गाँव माण होगा।

उपरिनिर्दिष्ट कोल्हापुर ताम्रपटकी लिपि और कालनिर्देशसे अनुमान होता है कि यह राजवंश ईसाकी चौथी शताब्दीसे दक्षिण महाराष्ट्रमें राज्य करता था।

* Aiyangar : Ancient India, Vol. I, pp. 171-74.

उसका राज्य उत्तरमें गोदावरी नदी तक फैला होगा। गोदावरीकी उत्तर दिशामें विदर्भ देशपर वाकाटकोंका अधिकार था। ईसाकी चौथी शताब्दीमें वाकाटक वंशकी दो शाखाएँ गोदावरीके उत्तर प्रदेशपर राज्य करती थीं। ज्येष्ठ शाखाकी राजधानी नागपुरके समीप नन्दिवर्धन थी और उसके राज्यमें उत्तर विदर्भ के नागपुर, वर्धा, भंडारा, छिंदवाडा, बैतूल, बालाघाट आदि जिले थे। दूसरी शाखाकी राजधानी वत्सगुल्म (अकोला जिलेमें स्थित वाशीम) थी और उसके राज्यमें अजंता पर्वतराजि और गोदावरी नदीके बीचका प्रदेश अन्तर्भूत होता था। वत्सगुल्मके वाकाटकों और मानपुरके राष्ट्रकूटोंके राज्य पास पास होनेसे उनमें झगड़ेके प्रसंग बार बार उत्पन्न होते हों तो आश्चर्य नहीं। इसका प्रमाण दोनोंके लेखोंमें मिलता है। वत्सगुल्मके वाकातटकोंका एक लेख अजंताकी सोलहवीं गुफामें है। उसमें विन्ध्यसेन राजाने कुन्तलेशको पराजित किया था ऐसा उल्लेख है। इसके विरुद्ध कोल्हापुर ताम्रपटमें मानांक राजाने विदर्भ और अश्मक देश जीते थे ऐसा वर्णन आया है। अश्मक देश गोदावरीके तीरपर था। विदर्भ वत्सगुल्म-वाकाटकोंसे शासित दक्षिण विदर्भ हो सकता है। अर्थात् इन दो राजवंशोंको समकालीन माननेमें कोई भी आपत्ति नहीं।

द्वितीय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यका आश्रय जैसा वाकाटकोंको था वैसा ही इन राष्ट्रकूटोंको भी रहा होगा। कदाचित् उसने उनके साथ विवाहसंवंध भी जोड़ा होगा। चन्द्रगुप्तका समकालीन राष्ट्रकूट नृपति देवराज था। राष्ट्रकूटोंके ताम्रपत्रमें उसको देवराज इन्द्रकी उपमा दी गई है। संभवतः यह इन्द्रके समान विलासलोलुप रहा होगा। प्रतीत होता है कि इसीकी सभामें कालिदास दूतके नाते भेजे गये होंगे। कालिदासने प्रतिवेदन किया कि कुन्तलेशने विपयोपभोगमें मग्न होकर आपपर (अर्थात् विक्रमादित्यपर) अपने राज्यके संरक्षणका भार डाला है। चन्द्रगुप्तने कालिदासके श्लोकमें थोड़ा-सा अन्तर करके, 'मेरे उपर राज्यका भार डालकर कुन्तलेश विलासमग्न हो जाय ऐसा उत्तर दिया, यह काव्यमीमांसादि ग्रन्थोंके उल्लेखोंसे ज्ञात होता है।

वाकाटक और राष्ट्रकूट इन दोनों राजवंशोंको चन्द्रगुप्तका आश्रय रहनेसे उनमें स्नेहसंवंध पैदा हुए और इसके परिणामस्वरूप वाकाटक नृपति नरेन्द्रसेनका विवाह कुन्तलराजकन्या अज्झितभट्टारिकासे हुआ, ऐसा बालाघाट ताम्रपत्रसे ज्ञात होता है।

फलतः, 'कुन्तलेश्वरदौत्य' के ज्ञात श्लोकोंमें कालिदासचरितके जो प्रसंग

वर्णन किये गये हैं वे इसी मतके पोषक हैं कि कालिदास द्वितीय चन्द्रगुप्त–विक्रमादित्यके समकालीन थे।*

कालिदास चन्द्रगुप्त-कालीन थे, इसके लिये एक और प्रमाण दिया जा सकता है। 'सेतुबन्ध' अथवा 'रावणवहो' (रावणवध) नामका प्राकृत भाषाका एक बहुत प्रसिद्ध काव्य है। बाण कविने उसकी स्तुति अपने 'हर्षचरित' के प्रारंभके श्लोकोंमें की है। इससे ईसाकी सातवीं शताब्दीके पहले इसकी रचना हुई है, इसमें सन्देह नहीं। यह काव्य विक्रमादित्यकी आज्ञासे प्रवरसेनके लिये कालिदासने लिखा है, ऐसा एक टीकाकारका निर्देश भी पाठकोंके ध्यानमें होगा। वह प्रवरसेन काश्मीरका राजा नहीं हो सकता। चन्द्रगुप्त-विक्रमादित्य और वाकाटक (द्वितीय) प्रवरसेन इन दोनों का संबंध विचारमें रखकर यह काव्य चन्द्रगुप्तकी आज्ञासे कालिदासने लिखा होगा अथवा उसका संशोधन किया होगा ऐसा मालूम पड़ता है। इस काव्यके पहले आश्वासके नवम पद्यमें उल्लेख है कि राजाने राजगद्दीपर बैठते ही बहुत शीघ्र इस काव्य का आरंभ किया। इस श्लोक-पर टीका करते हुए टीकाकार रामदासने प्रवरसेनका 'भोजदेव' के नामसे उल्लेख किया है। विदर्भ देशका राजघराना भोजके नामसे विख्यात था, यह कालिदासके रघुवंशसे भी स्पष्ट है। प्रवरसेनकी बाल्यावस्थामें कालिदासने कुछ काल वाकाटक राजधानीमें वास किया था, यह हम ऊपर कह चुके हैं। अतः यह आख्यायिका सुसंगत मालूम पड़ती है।

कालिदास द्वितीय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके आश्रयमें थे यह माननेपर ही उनके ग्रंथोंमें तत्कालीन राजकीय परिस्थितिका प्रतिबिम्ब दिखाया जा सकता है। मालविकाग्निमित्र नाटक वाकाटक नृप द्वितीय रुद्रसेन और चन्द्रगुप्तकी पुत्री प्रभावतीगुप्ताके विवाहकालमें लिखा गया होगा। यह ऊपर बतलाया जा चुका है कि वाकाटक-दरबारमें रहते हुए कालिदासने मेघदूतकी रचना की और सेतुबन्ध काव्य लिखा अथवा उसका संशोधन किया। विक्रमोर्वशीय नाटकमें विक्रमादित्यके नामका सम्बन्ध प्रत्यक्ष दीख रहा है। चन्द्रगुप्तके पुत्र कुमारगुप्त के जन्मोत्सव-प्रसंग-पर कुमारसम्भव लिखा गया होगा। रघुवंशमें रघुकी दिग्विजयके वर्णनमें कालिदासका अभिप्राय द्वितीय चन्द्रगुप्तकी दिग्विजय वर्णन करनेका रहा होगा। यह

---

* इस विषयका विस्तृत विवरण हमारे 'कालिदासाचें कुन्तलेश्वरदौत्य' नामक मराठी लेखमें मिलेगा।—संशोधनमुक्तावलि, सर १, पृ. ६५–७५ देखिए।

बात भी ध्यानमें रखने लायक है कि इस प्रकारका सम्बन्ध और किसी राजासे नहीं जोड़ा जा सकता ।

उपर्युक्त विवेचनसे कालिदास द्वितीय चन्द्रगुप्तके आश्रयमें थे यह स्पष्ट हो जाता है। चन्द्रगुप्तने ईस्वी सन् ३८० से लेकर ४१३ पर्यंत राज्य किया। अर्थात् **कालिदास चौथी शताब्दीके अन्तमें या पाँचवीं शताब्दीके आरम्भमें हुए होंगे।**

२–कालिदासकालीन परिस्थिति

महीतलस्पर्शनमात्रभिन्नमृद्धं हि राज्यं पदमैन्द्रमाहुः ।

[समस्त समृद्धियोंसे सम्पन्न राज्य 'इन्द्रपद' के तुल्य है। भेद इतना ही है कि यह राज्य पृथ्वीपर है और इन्द्रका राज्य स्वर्गमें है।]

पिछले प्रकरणमें हमने कालिदासका काल निश्चित किया है। उस कालमें कालिदासके सदृश अद्वितीय कविके उत्पन्न होनेमें कौनकौनसे कारण हुए उनका परीक्षण करनेके लिये तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितिका दिग्दर्शन करना आवश्यक है ।

परिस्थितिका लोगोंके कार्यपर कितना प्रभाव होता है, इस विषयमें दो मत हैं। कुछ लोग कहते हैं कि महान् पुरुष ईश्वरकी देन हैं। वे किसी समयविशेषकी परिस्थितिके कारण उत्पन्न होते हैं ऐसा मान लेना भूल है। यह कहना तो ऐसा हुआ कि पुष्पकी सुगन्ध चारों तरफ फैलनेके लिये उसका पौधा उद्यानमें ही उगना चाहिये! कालिदास स्वयं कहते हैं कि कभी कभी वनमें उत्पन्न हुई लता अपने उत्तम गुणोंसे उद्यानोत्पन्न लताके महत्त्वको कम कर देती है। इस उक्तिमें बहुत अंश तक सचाई है। श्रेष्ठ मनुष्यमें दैवी अंश रहता है, यह बात भगवानने भी गीतामें कही है। हम देखते हैं कि कई बार कुछ थोड़े लोग अपने गुणोंके प्रभावसे प्रतिकूल परिस्थितिको अनुकूल बना लेते हैं। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि उनके कार्यपर परिस्थितिका प्रभाव बिलकुल नहीं पड़ता। संसारकी विचित्रतापर सुप्रसिद्ध विद्वान ॲडिसनने कहा है कि यदि एक ओर बोझके भारसे दबा हुआ अत्यन्त कृश शरीर मजदूर दिखाई पड़ता है, तो दूसरी ओर हम एक हट्टे कट्टे तन्दुरुस्त आदमीको एक गज़ भर कपड़े पर महीन सुईसे टाँके मारते हुए देखते हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि जब मनुष्यको अपने योग्य परिस्थिति नहीं मिलती तब उसके गुणोंका पूर्ण विकास नहीं हो पाता । जैसे वनकी लता अपने पुष्पोंकी सुवाससे चारों दिशा-

ओंको सुवासित करती है, परन्तु कोई विरला ही रसिक व्यक्ति उसका गुणग्राहक बनता है। इसी प्रकार कालिदासके पहिले कम या अधिक प्रतिभाशाली ग्रन्थकार अवश्य हुए होंगे। परन्तु 'निराश्रया न शोभन्ते पण्डिता वनिता लताः' इस उक्तिके अनुसार उन्हें किसी रसिक राजाका आश्रय न मिलनेसे या लोक-रुचिका साहाय्य न होनेसे उनके ग्रन्थोंके नाम आज लुप्त हो गये हैं। कालिदासके हाथोंसे जो इतनी उत्कृष्ट ग्रन्थरचना हुई है, उसके लिये निश्चय ही उन्हें तत्कालीन परिस्थिति बहुत अनुकूल पड़ी होगी।

कालिदासकालीन परिस्थितिका अच्छी तरह ज्ञान प्राप्त करनेके लिये उनके पहिलेके कालका सिंहावलोकन करना नितान्त आवश्यक है। प्रामाणिक ऐतिहासिक साधनों द्वारा भारतवर्षका इतिहास ईसापूर्व चौथे शतकसे स्थूल-रूपमें मिलता है। ईसासे पहिले ३२६ वें वर्षमें सिकन्दरने भारतवर्षपर आक्रमण किया। उस समय उत्तरीय भारतपर नन्द राजाका आधिपत्य था। पाटलिपुत्र उसकी राजधानी थी। सिकन्दरके लौट जाने पर चन्द्रगुप्तने विष्णुगुप्त (चाणक्य) नामक मन्त्रीकी सहायतासे मगध देशमें राज्यक्रांति की और उससे लाभ उठा कर पाटलिपुत्रके सिंहासनपर अपना अधिकार जमाया। चन्द्रगुप्तने अपने राज्यकी बड़ी उत्तम व्यवस्था की तथा बड़ी वीरताके साथ यवनसेनापति सेल्यूकसको हरा कर बलोचिस्तान, अफगानिस्तान और पंजाब-इन तीनों प्रदेशोंको अपने राज्य में मिला लिया। उसके मन्त्री चाणक्य (कौटिल्य) का 'अर्थशास्त्र' नामका उच्चकोटिका राजनीतिक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है। उस ग्रन्थसे तत्कालीन राजकीय और सामाजिक परिस्थितिपर काफ़ी प्रकाश पड़ता है। चन्द्रगुप्तके बाद उसका पुत्र बिन्दुसार और पौत्र अशोक इन दोनोंके शासन-कालमें मगध साम्राज्यका बहुत विस्तार हुआ। उत्तरमें हिंदूकुश पर्वतसे लेकर दक्षिणमें मैसूर तक सारा प्रदेश अशोकके साम्राज्यके अन्तर्गत आ चुका था। इतने बड़े साम्राज्यकी व्यवस्था अशोकने बड़ी उत्तम रीतिसे की थी।

अशोकने अपने शिलालेख में जगह जगह पर इस बातका आदेश दे रक्खा था कि बौद्ध भिक्षुओंके समान ही ब्राह्मणोंका मान किया जाय। तथापि उसके शासनकालमें संस्कृत भाषाको प्रोत्साहन नहीं मिला। बौद्धधर्मकी प्राचीन परम्परा के उसके प्रस्तरलेख तत्कालीन भाषामें लिखे हुए हैं। ईसापूर्व २३२ वें वर्ष में अशोककी मृत्यु हुई। उसके पीछे उसका राज्य लगभग ५० वर्ष तक टिका। ईसासे पूर्व १८५ के लगभग शुंगवंशीय पुष्यमित्रने मौर्यवंशके अन्तिम राजा बृहद्रथको मार कर उसके राज्यपर अधिकार कर लिया। सिंहासनारूढ

होने पर पुष्यमित्रने हिंदूधर्मावलम्बियोंपरसे बौद्धधर्मी अशोकादि राजाओंके लगाये हुए कड़े नियन्त्रण हटा दिये। उसने स्वयं दो अश्वमेध यज्ञ किये, इसका उल्लेख अयोध्याके एक शिलालेखमें आया है। इससे यह मालूम होता है कि पुष्यमित्रने वैदिक धर्मानुयायियोंको यज्ञमें पशुवध करनेकी स्वतंत्रता दे दी थी। संस्कृत विद्याको भी उससे प्रोत्साहन मिला। पतंजलिने अपना सर्वमान्य व्याकरण-महाभाष्य इसी राजाके शासन-कालमें लिखा और स्वयं उसके हाथसे यज्ञ कराया, ऐसा महाभाष्यमें उल्लेख आया है।

अशोकके हिंदुस्तानमें राज्य करते समय ईसापूर्व २५० के लगभग ग्रीकोंने बॅक्ट्रियामें एक स्वतंत्र राज्य स्थापित किया था। अशोकके पीछे मौर्य राजा शक्तिशाली न रहे। इसलिए ग्रीक लोगोंने पूर्वकी तरफ हाथ फैलाना शुरू किया और धीरे धीरे पंजाब और सिन्ध इन दो प्रान्तोंपर अपना अधिकार जमा लिया। पुष्यमित्रके अश्वमेधीय घोड़ेको ग्रीक सेनाने पकड़ लिया था, पर उस समय पुष्यमित्रके पौत्र वसुमित्रने अपने पराक्रमसे ग्रीकोंको हरा कर घोड़ा वापिस ले लिया। यह कथांश 'मालविकाग्निमित्र' में आया है और सत्य भी प्रतीत होता है। शुंगोंका राज्य ईसापूर्व ७३ वर्षके उपरान्त नष्ट हो गया और उसके स्थानपर काण्वब्राह्मण राजा हुए। उन्होंने लगभग ४५ वर्षतक राज्य किया, फिर दक्षिण भारतके सातवाहनोंने आक्रमण करके उनकी राज्यसत्तापर अधिकार कर लिया। शुंग और काण्व राजाओंके राज्यमें हिंदूधर्म और संस्कृत विद्याको उत्तेजना मिली। मनुस्मृतिको वर्तमान रूप इसी समयमें प्राप्त हुआ, ऐसा संशोधकोंका मत है। परन्तु एक तरहसे यह काल बड़ा अशान्तिमय था। कारण कि इस कालमें शक-और यवनोंके अनेक आक्रमण हो रहे थे, यह बात गर्गसंहिताके युगपुराणमें वर्णित है। एक समय अम्लात नामक शक राजाने पाटलिपुत्रपर आक्रमण किया और शहरपर कब्जा कर लिया। उसने वहाँ लोगोंका सर्वनाश किया तथा चातुर्वर्ण्यके बाहरके (शक) लोगोंको लाकर वहाँ बसाया। शकोंके आक्रमणोंसे जो भीषण परिस्थिति उत्पन्न हुई उसका हृदयद्रावक वर्णन गर्गाचार्यने इस प्रकार किया है—

"इस भयंकर युद्ध में राष्ट्रके सब पुरुष मारे गये, इस कारण स्त्रियोंको ही सब काम करने पड़े। उन्होंने जमीन जोती तथा धनुष बाण लेकर खेतोंकी रखवाली की। जहाँ तहाँ स्त्रियोंने संगठन कर संघ कायम किये। पुरुष इतने दुर्लभ हो गये कि एक पुरुषको दस दस बीस बीस स्त्रियां वरने लगीं। ग्रामोंमें और उसी तरह शहरोंमें स्त्रियाँ ही सारा व्यवहार देखने लगीं। चातुर्वर्ण्यकी

मर्यादा भंग हो चुकी थी। शूद्र ब्राह्मणोंके कर्म करने लगे थे और जटा-वल्कल धारण करके घूमने लगे थे। वैदिक धर्ममें विधर्मी लोग आकर घुसने लगे और जहाँ तहाँ दम्भका साम्राज्य हो गया। गृहस्थाश्रमको आपत्ति समझकर लोग धड़ाधड़ संन्यास लेने लगे। इसी कालमें लगातार दो वर्ष तक पानी नहीं बरसा, बड़ा भारी अकाल पड़ा, हजारों लोग मृत्युके मुखमें पड़े।'

गत युरोपीय महायुद्ध के अनन्तर बेल्जियम और फ्रान्समें उत्पन्न हुई परिस्थितिका वर्णन जिन्होंने पढ़ा है, उनको गर्गाचार्यका उपर्युक्त वर्णन जरा भी अतिशयोक्तिपूर्ण न मालूम होगा। गर्गसंहितामें कण्वोंके राज्यकालके अन्तिम भागमें वह ग्रन्थ लिखा गया होगा। अतः इस वर्णनको विश्वसनीय माननेमें हानि नहीं मालूम होती। विदेशियोंके आक्रमणोंसे उत्तर हिंदुस्तानमें कुछ काल तक अत्यन्त अन्धेर मच गया था। इस अवधिमें अनेक हिन्दू ग्रन्थोंका नाश हो गया। पतञ्जलिके महाभाष्यमें प्रसंगवशात् आये हुए अवतरणोंसे यह विदित होता है कि शुंगकालमें काव्य-साहित्य उन्नतिके शिखर पर पहुँच चुका था। यह साहित्य और उसी तरह अनेक श्रौत स्मार्त ग्रन्थ और पुराण वगैरह नष्ट भ्रष्ट हो गये। स्वयं महाभाष्यकी एक भी प्रति उत्तर-भारतमें उपलब्ध न हो सकी, इसी लिये चन्द्राचार्य नामक वैयाकरणने उस ग्रन्थको महान् परिश्रमसे दक्षिणसे प्राप्त कर उसका उत्तरभारतमें प्रचार किया, इसका उल्लेख भर्तृहरिके वाक्यपदीयमें मिलता है।

अशोककी मृत्युके बाद शीघ्र ही सातवाहनोंने दक्षिणमें अपनेको स्वतंत्र घोषित कर दिया। इनका मूलपुरुष सातवाहन था। उसके बाद सिमुक सातवाहन हुआ। उसके अनन्तर राजगद्दीपर बैठे हुए श्री सातकर्णीके अश्वमेघ यज्ञ करनेका नाणेघाटके शिलालेखमें उल्लेख है। * इसके सिवाय उस लेखमें इसका भी वर्णन है कि गवामयन, आप्तोर्याम, गर्गत्रिरात्र वगैरह श्रौत यज्ञ किए गये, हजारों गायें, घोड़े तथा कार्षापण (उस समयका सिक्का) दिए गये। अशोककी मृत्युके बाद शीघ्र ही उत्तरभारतकी तरह दक्षिणमें भी वैदिक धर्मने राजाश्रयके बलपर अपना मस्तक ऊँचा उठा लिया। उत्तरभारतमें अन्धाधुन्ध मचाते हुए शकोंने दक्षिणमें भी राज्य स्थापनेका प्रयत्न किया और कुछ काल तक वह सफल भी हुआ। दक्षिणभारतकी चढ़ाईमें भूमक तथा नहपान नामके शक अग्रणी बने थे। आगे चलकर नहपानको बहुत बड़े प्रदेशकी सूबेदारी मिली और

* Naneghat Cave Inscription—Archaeological Survey of Western India, Vol X p. p ff.

वह क्षत्रप नामसे प्रसिद्ध हुआ। शिलालेख तथा प्राप्त मुद्राओंसे यह सिद्ध होता है कि नहपानके अधिकारमें काठियावाड़, राजपूतानेका कुछ भाग, मालवा, गुजरात, उत्तर कोंकण, नासिक और पूना जिलेका भूभाग था।

नहपानने महाराष्ट्रमें जिस समय अपना अधिकार जमाया उस समय सातवाहनोंको देशत्याग करना पड़ा। किन्तु शीघ्र ही गौतमीपुत्र सातकर्णीने मौका पाकर नहपानको पूरी तरहसे हराकर उसके वंशका समूल उच्छेद कर डाला और अपने राज्यका विस्तार उज्जयिनी तक किया। गौतमीपुत्रने नहपानके चलाये हुए सिक्के लोगोंसे वापस लेकर उनपर अपनी छाप लगाई और उनका फिरसे प्रचार करवाया। इस वंशमें आगे चलकर वासिष्ठीपुत्र पुलुमायी, यज्ञश्री सातकर्णि वगैरह राजा हुए। पुराणोंमें दी हुई गणनाके अनुसार सातवाहनोंने लगभग ४५० वर्ष तक अर्थात् ईसापूर्व २२५ से लेकर ईसाके वाद २२५ तक राज्य किया होगा।

सातवाहन राजा वैदिकधर्मानुयायी थे। नासिकके एक शिलालेखमें गौतमीपुत्रको 'क्षत्रियोंका दर्प हरण करनेवाला' तथा 'एकब्राह्मण' नामसे संवोधित करनेसे उसका ब्राह्मणत्व सिद्ध होता है। शकोंके शासनकालमें चातुर्वर्ण्यमें जो धाँधली मच गई थी उसको उसने दूर किया। यह वात भी नासिकके एक शिलालेखसे सिद्ध होती है। फिर भी वह वौद्धधर्मका आश्रयदाता था। गौतमीपुत्र, उसकी माता वालश्री, उसका पुत्र पुलुमायी इन सवने वौद्ध भिक्षुओंके रहनेके लिये गुफाएँ वनवाईं। उनके निर्वाहके लिये कई ग्राम लगा दिये। इसका उल्लेख नासिक तथा कार्लेकी गुफाओंमें मिलता है। इससे यह मालूम होता है कि उस राजाके शासनकालमें दोनों धर्मोंके अनुयायियोंको समानताके साथ देखा जाता था। सातवाहन राजा वैदिकधर्मानुयायी थे, तो भी उन्होंने संस्कृत विद्याको आश्रय नहीं दिया। 'कथासरित्सागर' में इसका प्रमाण यों मिलता है कि एक सातवाहन राजाके जलविहारके समय किसी स्त्रीने जव 'मोदकैस्ताडय' (जलके छींटोंसे मत मारो) ऐसा एक सीधा-सा वाक्य कहा, तो इस संस्कृत वाक्यका अर्थ उसके समझमें नहीं आया। राजशेखरकी 'काव्यमीमांसा' में कुन्तलेश्वर सातवाहनने अपने अन्त:पुरमें प्राकृतभाषाके व्यवहार करनेका कड़ा नियम वना दिया था, ऐसा उल्लेख है। इससे उक्त वातका समर्थन होता है। इसके सिवा सातवाहनोंके समस्त लेख प्राकृत भाषामें हैं। वौद्धधर्मके प्रचारसे पालिको तथा उसके वाद प्राकृत भाषाको जो महत्त्व मिला वह आगे गुप्त साम्राज्य की स्थापना तक अक्षुण्ण वना रहा।

शकोंके बाद उत्तर हिन्दुस्तानमें पहले पल्हवोंका ऑर फिर उनके पीछे कुशानोंका साम्राज्य फैला। कुशानवंशमें कुजूल काडफीसस्, वीम काडफीसस् कनिष्क, हुविष्क तथा वासुदेवके नाम प्रसिद्ध हैं। वीम काडफीसस्ने हिन्दूधर्म, स्वीकार कर लिया था, क्योंकि अपने सिक्केपर उसने अपनेको 'माहेश्वर' लिखा है और शिव तथा नन्दी दोनोंकी आकृति उसपर खुदवाई है। समस्त कुशान राजाओंमें कनिष्क राजा श्रेष्ठ माना गया है। दक्षिण भारतमें अब तक प्रचलित शालिवाहन शक इसी कनिष्कने ईसाके ७८ वें वर्षमें चलाया था ऐसा कई विद्वानोंका मत है। इसके सिक्के काबुलसे लेकर गाजीपुर तक मिलते हैं। एक समय उसने पाटलिपुत्र नगरपर आक्रमण किया और वह वहाँके पण्डित अश्वघोषको पकड़कर अपनी राजधानी ले गया। दक्षिणमें काठियावाड़ और मालवामें राज्य करनेवाले क्षत्रप इसके अधीन थे। इसीसे भारतवर्षमें किये हुए उसके साम्राज्य-विस्तारकी कल्पना पाठकोंके ध्यानमें आ जायगी। वह स्वयं बौद्धधर्मी था। बौद्धधर्मके प्रचारार्थ उसने जगह जगह स्तूप खड़े किये, काश्मीरमें विद्वान् भिक्षुओंकी एक परिषद्की आयोजना की और इस परिषद्का अध्यक्ष प्रसिद्ध दार्शनिक और कवि अश्वघोषको बनाया।

ईसाके बाद दूसरी शताब्दीके अन्तमें कुशानोंका साम्राज्य क्षीण हो चला था। उनका राज्य पाँचवीं शताब्दीमें हूणोंके आक्रमण तक पंजाब और काबुल इन दोनों प्रान्तोंपर ही रह गया था। मालवा और काठियावाड़ प्रान्तोंमें शकवंशीय क्षत्रपोंने चौथी शताब्दीके अन्त तक राज्य किया। दक्षिणमें सा :वाहन-साम्राज्यका अस्त तीसरी शताब्दीके आरम्भमें ही हो गया था। कुशान और सातवाहन साम्राज्य जिन प्रदेशोंमें फैले हुए थे वहाँ अनेक छोटे छोटे राज्य स्थापित हो गये थे। चौथी शताब्दीमें उत्तर भारतमें गुप्तोंके और दक्षिण भारतमें वाकाटकोंके राज्य-प्रसार होनेके समय तक ये राज्य किसी तरह जीवित रहे। इसका प्रमाण गुप्तों तथा वाकाटकोंके अभिलेखों मिलता है।

यहाँ तक हमने ऐतिहासिक सिंहावलोकन किया। इससे ईसापूर्व चौथी शताब्दीसे लेकर ईसाकी चौथी शताब्दी तककी देशकी राजनैतिक स्थितिका सामान्य ज्ञान पाठकोंको होगा। शुंग साम्राज्यके अवसानसे गुप्तोंके उदयकाल तक लगभग चार शताब्दियाँ हुई। इस कालमें उत्तर हिन्दुस्तानमें हिन्दू धर्मको और संस्कृत विद्याको किसी प्रभावशाली राजाने प्रोत्साहन नहीं दिया–।* दक्षिण दिशामें

* गुप्त राजाओंके उदयसे पहले लगभग सौ वर्ष तक नागवंशीय राजाओंने उत्तरभारतमें अश्वमेध यज्ञ करके हिन्दू धर्मका पुनरुद्धार किया तथा संस्कृत विद्याको आश्रय दिया एसा बरिस्टर जायसवालका मत है। (History of India 150—350 A. D. p. 7.) परन्तु यह मत अभी तक सर्वसम्मत नहीं है।

महाराष्ट्रमें सातवाहन राजा वैदिकधर्मानुयायी थे। तो भी उनका लक्ष्य संस्कृत विद्याकी ओर नहीं था। इस कालके प्रायः सभी लेख प्राकृत भाषामें हैं। सिक्कोंपर नाम और उनकी बिरुदावली प्राकृत भाषामें लिखी हुई मिलती है। स्तूपों और चैत्यों (देवालयों) के बनवानेमें, बौद्ध भिक्षुओंके रहनेके लिए गुफाओंके निर्माणमें और स्तूपों और गुफाओंकी शोभा बढ़ानेके लिए शिल्प तथा चित्रकारीके कार्यमें लोग बहुत-सा धन खर्च करते थे। साँची तथा भरहूतके स्तूपों और कार्ले, नासिक तथा अजन्ता इत्यादि स्थानोंकी गुफाओंके निर्माणके लिए राजाओंकी तरफ सेठ, साहूकार व्यापारी, सुनार, बढ़ई, कारिंदा आदि विविध धन्धा करनेवाले लोगोंने तथा शक यवनादि विदेशियोंने भी दान दिए इसका शिलालेखोंमें प्रमाण मौजूद है*। इस कालका एक भी हिन्दूधर्मी देवालय या शिल्पकलाका नमूना आजकल नही मिलता इससे भी उपर्युक्त मतका समर्थन होता है। इस कालमें हिन्दूधर्म जैसे तैसे टिका हुआ था और कहीं कहीं उसे राजाका आश्रय भी मिला होगा। उत्तरमें वीम काडफीसस् और दक्षिणमें मालवाके रुद्रदामन् आदि क्षत्रप राजाओंने हिन्दूधर्मको अपनाया, अतः हिन्दूधर्मको इन लोगोंसे सहायता मिली होगी। खास करके क्षत्रपोंकी राजधानी उज्जयिनीमें संस्कृत विद्याको प्रोत्साहन मिला होगा। ईस्वी सन् १५० में रुद्रदामन्के गिरनारके शिला-लेखसे, व्याकरण शास्त्र, संगीतादि कला, गद्य-पद्य-मय काव्य-वाङ्मय और उसके उपयोगी अलंकारशास्त्र आदिका उस कालमें अभ्यास होता था ऐसा मालूम होता है। क्षत्रप-राज्यमें भास, सौमिल्ल और कविपुत्रके नाटक तथा वात्स्यायनके कामसूत्र आदि लिखे गए होंगे। सर्वसाधारण जनताकी संस्कृत विद्यामें श्रद्धा न होनेपर भी विद्वानोंपर अपने लालित्य आदि गुणोंसे संस्कृत भाषाने अपनी मोहिनी डालना प्रारम्भ कर दिया था इसमें संशय नहीं है। अगर ऐसा न होता तो अश्वघोष जैसे कट्टर बौद्धधर्मी अपनी रचना संस्कृतमें न करते। अपने 'सौन्दरनन्द' काव्यके अन्तमें अश्वघोषने स्पष्ट लिखा है, 'जिस प्रकार वैद्य रोगियोंको कड़वी औषध, मधुके साथ मिलाकर, चटाते हैं उसी प्रकार मैंने जनताका ध्यान अन्य सांसारिक विषयोंसे हटाकर 'मोक्ष' की ओर लगानेके लिए ही इस काव्यकी रचना संस्कृतमें की है।' तथापि इन चार सौ वर्षोंके कालमें उत्तम संस्कृत काव्य नाटकादि ग्रन्थ नहीं रचे गये। प्रत्युत इस कालमें पालि वाङ्मयकी खूब वृद्धि हुई और प्राकृतमें भी बृहत्कथादि ग्रन्थ रचे गये। अतः संस्कृत विद्याको राजाश्रय मिलनेके उदाहरण अपवादरूप ही हैं।

* Cf. Dr. Sir R. G. Bhandarkar: A Peep into the Early History of India, (1920), p. 43.

इस कालमें हिन्दू धर्मको विशेष राजाश्रय न था और जनतामें भी उसका प्रसार बौद्धधर्मकी अपेक्षा कम था। तो भी विचारशील पुरुष नये कालके अनुसार उसकी पुनर्घटना करनेमें व्यग्र थे ऐसा मालूम होता है। वैदिक धर्मके तत्त्व सब लोग समझ सकें इसलिए पूर्वकालके संक्षिप्त व दुर्बोध सूत्रग्रन्थोंके स्थानमें मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति जैसी स्मृतियाँ सुबोध अनुष्टुभ् छन्दमें लिखी गईं। महाभारत और रामायणको भी वर्तमानरूप इसी कालमें प्राप्त हुआ होगा। बौद्ध और जैनधर्मका अहिंसाके सिद्धान्तपर विशेष आग्रह है और वह तत्त्व सर्वमान्य-सा हो गया है ऐसा देख कर इन स्मृतियोंमें भी वही तत्त्व जोरदार भाषामें प्रतिपादित किया गया और पहलेके हिंसाविधान करनेवाले वचनोंके बहुत-से अपवाद-वचन बनाए गये। इस कालके आरम्भमें शिव, कुबेर, अश्विनीकुमार, धर्म, इन्द्र, संकर्षण, वासुदेव इत्यादि देवताओंकी पूजा होती थी, यह कौटिलीय अर्थशास्त्र और नाणेघाटके * सातवाहनोंके शिलालेखसे प्रकट होता है। इनमेंसे बादमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंको प्रधानता प्राप्त हुई।

इसके सिवा स्कन्द, सूर्य इत्यादिकी पूजाका प्रचार हुआ। पहिलेहीसे तत्त्वज्ञान वैदिकधर्मकी विशेषता थी। उपनिषदोंमें ईश्वर, जीव और जगत्के विषयोंपर अनेक स्थानपर गम्भीर और उद्बोधक विचार बिखरे हुए थे। उनका समन्वय करके वेदान्तसूत्र लिखे गये। इसी तरह योग, न्याय, मीमांसा इत्यादि शास्त्रोंके मूलभूत सूत्रग्रन्थ इसी कालमें लिखे गये। इस सम्पूर्ण वाङ्मयको देखने पर बौद्धधर्मसे टक्कर लेनेके लिए वैदिक धर्मने कैसी तैयारी की और राजाश्रयका अवसर मिलते ही उसने उसका कैसे अधःपात किया यह ध्यानमें आ जायगा।

तीसरी शताब्दीके अन्तमें उत्तर हिन्दुस्तानमें गुप्त, और विदर्भ देशमें वाकाटक राजवंश अभ्युदयको प्राप्त होते हुए दीखते हैं। इनमेंसे पहले घरानेके संस्थापक महाराज गुप्त मगधदेशके एक संस्थानके राजा थे। पहली दो पीढ़ियोंमें गुप्तोंका राज्य गंगाके किनारे मगधसे लेकर अयोध्या तक फैला हुआ था। महाराज गुप्तके पौत्र प्रथम चन्द्रगुप्तने वैशालीकी लिच्छविकुलोत्पन्न राजकन्यासे विवाह किया। इस विवाहके योगसे वैशाली और मगधराज्य एक छत्रके नीचे आ गये और इस कारण चन्द्रगुप्तकी शक्ति बढ़ गई। उसने आस-पासके छोटे-मोटे राज्योंको जीतकर अपने राज्यमें मिला लिया और 'महाराजाधिराज'की पदवी धारण की। अपना और लिच्छवि कुलका सम्मान्य सम्बन्ध प्रकट करनेके लिए उसने अपने और अपनी पत्नीके नामसे सोनेके सिक्के ढाले। उसने एक नया संवत् भी शुरू

* Naneghat Cave Inscription, A. S., W. L., Vol. IX, pp. 60. ff.

किया, जिसका नाम आगे चलकर गुप्त संवत् हुआ। उसका पुत्र समुद्रगुप्त उससे भी ज्यादा शूर और महत्त्वाकांक्षी निकला। उसने उत्तर हिन्दुस्तानके अनेक राजाओंको हराकर उनका प्रदेश अपने राज्यमें जोड़ लिया और दक्षिण हिन्दुस्तानपर भी चढ़ाई कर दी। इस दिग्विजयके अनन्तर उसने हरिषेण नामके अपने दरबारी कविको अपना पराक्रम गद्य-पद्य काव्यमें वर्णन करनेके लिए कहकर वह वर्णन अशोकके शिलास्तम्भपर खुदवाया ❋। वह स्तम्भ अब भी प्रयागके किलेमें हैं। यद्यपि उसका लेख थोड़ा खराब हो गया है तो भी उससे उसके दिग्विजयकी पूर्ण कल्पना हो सकती है।

समुद्रगुप्त हिन्दूधर्मका कट्टर अभिमानी और आश्रयदाता था। उसने दिग्विजय प्राप्त कर अश्वमेध यज्ञ किया और उसके प्रमाणस्वरूप सिक्के जारी किये। पुष्यमित्र शुंगके मरनेके बाद लगभग पाँच सौ वर्ष तक उत्तर हिन्दुस्थानमें कुछ अपवादोंको छोड़कर किसीके भी अश्वमेध करनेका उल्लेख नहीं पाया जाता। इस कारण उसके वंशजोंके लेखोंमें 'चिरोत्सन्नाश्वमेधाहर्ता' इस यथार्थ विशेषणसे समुद्रगुप्तकी प्रशंसा की गई है। उसके अश्वमेध के स्मारक सिक्कोंपर उसका नाम 'अश्वमेधपराक्रमः' लिखा हुआ मिलता है। समुद्रगुप्त स्वयं बड़ा विद्वान्, रसिक और कलाभिज्ञ था। उसे विद्वानोंकी संगति बहुत प्रिय थी। उसने स्वयं शास्त्रोंका गहन अध्ययन किया था तथा अपनी कुशाग्र बुद्धिसे बृहस्पतिको और संगीतके अद्‌भुत कौशलसे तुम्बुरु और नारदको लज्जित कर दिया था। उत्कृष्ट काव्यरचना करनेके कारण उसको 'कविराज' की पदवी मिली थी। हरिषेणादि कवियोंने उसके सान्निध्यमें काव्य–रचना सीखी थी, यह सब प्रयागके शिलास्तम्भपर खुदे हुए लेखमें पाया गया है।

ईसवी संवत् ३७५ के लगभग समुद्रगुप्तकी मृत्यु हुई होगी। अनन्तर उसका पुत्र चन्द्रगुप्त–विक्रमादित्य सिंहासनपर बैठा, यही लोग अब तक समझते थे। परन्तु पिछले कुछ वर्षोंमें जो खोज हुई है उससे यह पता लगता है कि समुद्रगुप्तके बाद उसके पुत्र रामगुप्तको राजगद्दी मिली ¶। पंजाब और काबुलमें राज्य करनेवाले कुशानोंने समुद्रगुप्तके आगे अपना सिर झुका दिया था परन्तु उसकी मृत्युके बाद

❋ See Allahabad Stone Pillar Inscription of Samundragupta (G. I., No. 1).

¶ इस विषयएर J. B. O. R. S., Vol. XIV p.223 में डॉ. अलतेकरका 'एक नवीन गुप्त राजा' लेख तथा Ind. Ant., Vol. LXII pp. 201-205 में प्रकाशित 'रामगुप्तपर नया प्रकाश' नामक हमारा लेख पढ़िए। अब हमारा लेख Studies in Indology, Vol. I., pp. 149-157 में पुनर्मुद्रित है।

कुशानोंने फिर सिर उठाया और राज्यमें अशान्ति उत्पन्न कर दी । उनका दमन करनेके लिए रामगुप्तने उनपर चढ़ाई की। उसके साथ उस आक्रमणमें उसका भाई चन्द्रगुप्त और रानी ध्रुवस्वामिनी भी थी। इस चढ़ाईमें उसे अपकीर्ति ही मिली तथा अपनी रानीको शत्रुके अन्तःपुरमें भेज देनेकी शर्तपर ही उसने अपना और अपने साथियोंका छुटकारा पाया। उसका भाई चन्द्रगुप्त बड़ा वीर और स्व-कुलाभिमानी था । उसे इस शर्तसे बहुत ठेस पहुँची परन्तु उस समय शत्रुके पंजेमें होनेके कारण उस शर्तको माननेके सिवाय दूसरा चारा न था। तथापि वह बड़ा धैर्यवान् और चालाक था। उसने स्वयं स्त्रीका वेश धारण कर अपने स्त्रीवेशधारी सैनिकोंके साथ शत्रु शकराजके शिबिरमें प्रवेश किया और मौका पाकर उसे मार डाला और उसकी सेनाको तहस-नहस कर डाला । रानी ध्रुव-स्वामिनीका अपने पतिके प्रति तिरस्कारभाव और अपने देवर चन्द्रगुप्तके प्रति प्रेमभाव उत्पन्न हुआ। आगे चलकर चन्द्रगुप्त अपने भाईको गद्दीसे उतारकर आप उसपर बैठा। गुप्तोंके घरानेमें यह प्रथा थी कि पुरुषार्थी तथा कर्मवीर व्यक्तिको ही राज्य-सिंहासन मिले। इससे यह मालूम होता है कि चन्द्रगुप्तके इस कार्यमें कुशल और विचारशील मंत्रियोंका प्रबल हाथ रहा होगा। इसके बाद उसने ध्रुवस्वामिनीसे विवाह किया और उससे कुमारगुप्त तथा गोविन्दगुप्त दो पुत्र उत्पन्न हुए। उसकी कुबेरनागा नामकी एक दूसरी रानी थी जिससे प्रभावती-गुप्ता नामक कन्या उत्पन्न हुई। राजगद्दीपर बैठते ही चन्द्रगुप्तने पहले उत्तरमें कुशान राजाओंको मार भगाया तथा मालवा और काठियावाड़में राज्य करनेवाले क्षत्रपोंपर चढ़ाई की। ये शकवंशीय क्षत्रप कुशानवंशीय राजाओं द्वारा नियुक्त सिन्ध, काठियावाड़ और मालवा प्रान्तोंके सूबेदार थे । उनका इन प्रान्तोंपर लगभग सवा तीन सौ वर्ष तक आधिपत्य रहा था और अन्तमें जब उत्तरमें उनके सम्राट्की सत्ता बिलकुल कम होने लगी तब वे लोग ऊपर से तो अपनेको क्षत्रप अथवा महाक्षत्रप जाहिर करते थे, पर थे वे पूर्ण स्वतन्त्र । ऐसे प्रबल शत्रुओंको परास्त करनेके लिए किसी दूसरे बलिष्ठ राजाकी सहायताकी आवश्यकता थी। उस समय विदर्भमें वाकाटक राजाओंका उदय हो रहा था। इस घरानेके मूलपुरुष विन्ध्यशक्तिका नाम पुराणोंमें और अजन्ताके एक भग्न लेखमें आया है। अजन्ताके लेखमें उसको 'द्विज' नामसे सम्बोधित किया गया है। अतः सातवाहनोंकी तरह वाका-टकोंका भी ब्राह्मण होना सिद्ध होता है। विन्ध्यशक्ति मगधके महाराज गुप्तका समकालीन होगा। उसके प्रथम पुत्र प्रवरसेनने अग्निष्टोम, आप्तोर्याम इत्यादि श्रौत यज्ञ किये थे। आगे चलकर इस वंशमें पृथिवीषेण नामका महापराक्रमी राजा

हुआ जो समुद्रगुप्तका समकालीन था। उसका राज्य उत्तर विदर्भपर फैला हुआ था। समुद्रगुप्तने दक्षिणके पूर्वतटके देश जीत लिये थे परन्तु पश्चिमके देशोंपर आक्रमण न कर वह बीच ही में लौट आया था। इससे यह अनुमान निकलता है कि उसने जान बूझ कर वाकाटकोंसे छेड़छाड़ नहीं की। वाकाटक और क्षत्रप राजाओंकी राज्यसीमा एक दूसरेसे मिली हुई थी, इसलिए उन दोनोंमें राजनैतिक सिद्धान्तके अनुसार असन्तोष बना रहता होगा। अतः चन्द्रगुप्तने वाकाटकोंके साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर क्षत्रपोंपर चढ़ाई की और उनका नाश कर दिया। राजनैतिक कारणोंसे उत्पन्न हुए इस सम्बन्धको दृढ़ करनेके लिये उसने अपनी लड़की प्रभावतीगुप्ता पृथिवीषेणके लड़के द्वितीय रुद्रसेनको ब्याह दी। यह घटना ईसवी सन् ३९५ के लगभग घटित हुई होगी। सिक्कों तथा अभिलेखोंसे संशोधकोंने यही अनुमान निकाला है *।

क्षत्रपोंका जड़-मूलसे उच्छेद कर मालवा और काठियावाड़ इन दो प्रान्तोंको चन्द्रगुप्तने अपने राज्यमें मिला लिया। उज्जयिनीको अपनी राजधानी बनाया और 'विक्रमादित्य' की पदवी धारण की। तबसे उज्जयिनीके साथ विक्रमादित्यका नाम संलग्न हुआ। इसके बाद कुछ ही वर्षोंमें उसके जामाता द्वितीय रुद्रसेनकी मृत्यु हुई। इस समय रुद्रसेनके दिवाकरसेन तथा दामोदरसेन (प्रवरसेन) नामक दोनों पुत्र अत्यन्त छोटे थे। इसलिए चन्द्रगुप्तने अपने दरबारके होशियार कार्यपटु अधिकारी विदर्भदेशको भेजकर वहाँका राजकाज चलानेमें अपनी बेटी प्रभावती-गुप्ताकी सहायता की। प्रवरसेनके सयाने होने पर विदर्भकी गद्दी उसे मिली। इसी कालमें कालिदास विदर्भमें आये होंगे।

इस तरह चन्द्रगुप्तका राज्य सारे उत्तर हिन्दुस्थानमें फैला हुआ था। दक्षिण भारतमें कुन्तल तथा विदर्भका राजकाज उसके आदेशके अनुसार संचालित होता था। उसके विस्तृत साम्राज्यमें हिन्दूधर्मका सर्वत्र प्रसार हो गया था। इस समयसे हिन्दू देवताओंके लिए दिये हुए दानोंका उल्लेख अभिलेखोंमें मिलता है। हालमें प्राप्त हुए मथुराके एक स्तम्भ लेखमें एक शैव आचार्य द्वारा शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा करनेका उल्लेख आया है। चन्द्रगुप्तके एक मांडलिक राजाने उदयगिरिमें विष्णु और चण्डिका मूर्ति बनवायी थी जो अब तक मौजूद है। दूसरे एक शिलालेखमें चन्द्रगुप्तके एक वीरसेन नामक परराष्ट्र—मन्त्रीने शिवकी पूजाके लिए एक गुफा तैयार कराई थी उसका उल्लेख है। विदर्भमें प्रभावतीगुप्ता द्वारा

* V. V. Mirashi : Inscriptions of the Vakatakas (C.I. I., Vol. V, Introduction, pp. xxii-xxiii.)

रामटेकमें कार्त्तिक शुक्ल द्वादशीको श्री रामचन्द्रके मन्दिरमें एक ब्राह्मणको दिया गया ताम्रपत्र प्रसिद्ध है। चन्द्रगुप्त और उनका जामाता दोनों विष्णुभक्त थे, इधर चन्द्रगुप्तका नाती द्वितीय प्रवरसेन शिवोपासक था। इन सब उल्लेखोंसे चन्द्रगुप्तके साम्राज्यमें हिन्दू धर्मका उत्कर्ष कितना बढ़ा–चढ़ा था, यह मालूम हो जाता है।

चन्द्रगुप्त स्वयं महान् विद्वान्, रसिक तथा संस्कृत विद्याका अभिमानी था। उज्जयिनीकी विद्वत्परिषद्के सामने उसने कालिदास दि कवियोंकी तरह स्वयं परीक्षा दी थी, यह पिछले प्रकरणमें हम लिख चुके हैं। उसकी एक सुवर्णमुद्रापर उसे 'रूपकृती' कहा गया है। इससे यह मालूम होता है कि उसने रूपक (नाटक) लिखे होंगे। चन्द्रगुप्तने अपने अन्तःपुरमें संस्कृत भाषाके व्यवहार करनेका नियम बना दिया था। उसकी सुवर्णमुद्रापर श्लोकार्धमें तरह तरहके आलंकारिक वर्णन हैं। उससे उसके संस्कृत भाषाके प्रति प्रेमका निदर्शन मिलता है। संस्कृतविद्याको ऐसा प्रोत्साहन देनेवाला राजा जब मिला तभी वह अत्यन्त वैभव-सम्पन्न हुई। चन्द्रगुप्त विद्वान् लोगोंको राज्यके बड़े बड़े अधिकारपूर्ण पदोंपर नियुक्त करता था। उसका परराष्ट्रमन्त्री कौत्सगोत्रीय वीरसेन शाब, व्याकरण, अर्थशास्त्र और न्यायशास्त्रमें पारंगत तथा कवि भी था, ऐसा उसके लेखमें पाया जाता है। 'मुद्राराक्षस' नाटकका रचयिता विशाखदत्त भी चन्द्रगुप्तका दरबारी था, ऐसा कुछ लोगोंका मत है। इस कविके रचे हुए 'देवीचन्द्रगुप्तम्' नामक नाटकके कुछ अवतरण हालमें मिले हैं। उनसे उपर्युक्त रामगुप्तका वृत्तान्त मालूम होता है। इसके अतिरिक्त कामन्दकका नीतिसार नामक अर्थशास्त्रका ग्रन्थ तथा कुछ पुराण ग्रन्थ इसी कालमें निर्मित हुए। इस कालमें स्थापत्य, शिल्प, चित्र आदि कलाएँ समुन्नत हुईं। गुप्तकालकी इमारतें अद्यापि कहीं कहीं दृष्टिगोचर होती हैं। उदयगिरिमें तथा अन्य स्थलोंमें शिल्पकलाके नमूने तथा अजन्ताकी गुफाओंमें चित्रकलाके थोड़े-से चिन्ह अवशिष्ट हैं। उनसे उस समय इस कलामें तत्कालीन कारीगरोंने कितनी प्रवीणता प्राप्त कर ली थी इसकी कल्पना सहजहीमें की जा सकती है।

चन्द्रगुप्तके राज्यमें सर्वत्र शान्ति, सुव्यवस्था और सौराज्य था, यह तत्कालीन लेखोंसे प्रमाणित होता है। हिन्दू, वौद्ध, जैन इत्यादि सर्व भारतीय धर्मोंके अनुयायियोंको अपने धर्मके आदेशोंके अनुसार रहनेकी पूरी स्वतन्त्रता थी। समुद्रगुप्तके दिग्विजयसे राज्यका विस्तार हुआ। अनेक राजा उसको भेंट तथा कर देते थे। व्यापारके मार्ग खुल गये और शूरों तथा गुणी जनोंको अपने अपने गुण दिखानेका मौका मिला तथा विद्वत्ताकी कद्र होने लगी। मुद्राशास्त्रका सिद्धान्त

है कि देशके वैभवका प्रतिबिम्ब तत्कालीन प्रचलित सिक्कोंमें देखा जा सकता है। चन्द्रगुप्तकी सुवर्णमुद्रा (मोहर) कई तरहकी तथा प्रचुरमात्रामें मिलती है। उससे उसके राज्यमें सर्वतोमुखी उन्नतिका प्रवाह बह रहा था यह अनुमान किया जा सकता है। फाहियान (चीनी यात्री) ने उत्तर हिन्दुस्तानमें सैकड़ों मीलकी यात्रा की थी, पर उसे कहीं भी चोर डाकुओंका भय नहीं हुआ। इससे चन्द्रगुप्तके राज्यकी सुव्यवस्थाका पता चलता है। सब लोग सुखी और निश्चिन्त रहकर अपने गुणोंकी उन्नति करने तथा एक दूसरेसे आगे बढ़ जानेकी स्पर्धामें लीन थे। देशमें सर्वत्र धर्मार्थ औषधालय और धर्मशालायें बनी हुई थीं तथा उनम अन्न, जल और औषधके मुफ्त वितरणकी व्यवस्था थी। राज्यका कारोबार बड़ी दक्षतासे चलाया जाता था तथा अपराधियोंको बहुत कड़ी सजायें नहीं दी जाती थीं। सारांश यह कि उस समयके लोगोंको चन्द्रगुप्तके राज्यमें रामराज्यका सुख मिल रहा था।

इस गुप्तकालीन परिस्थितिका प्रतिविम्व कालिदासके काव्योंमें स्पष्ट झलकता है। प्रोफेसर कीथके कथनानुसार कालिदासके समस्त ग्रन्थोंमें स्वकालीन परिस्थितिके सम्बन्धमें जो सन्तोष और शान्तिके चिन्ह दिखाई पड़ते हैं वे गुप्तकालीन परिस्थितिके द्योतक हैं। इसी तरह उसके ग्रन्थोंमें जो दिग्विजय, अश्वमेध आदिका वर्णन आया है उसमें ऐतिहासिकोंको गुप्तकालीन परिस्थिति स्पष्ट दीखती है। दिलीप, रघु, राम इत्यादि एकसे एक वढ़कर राजर्षियोंके चरित्रोंको सरस वाणीमें वर्णन करते समय कालिदासकी आँखोंके सामने समुद्रगुप्त–चन्द्रगुप्त सदृश शूर, धीर, विद्वान्, प्रतिभासम्पन्न रसिक तथा उदार राजाधिराजोंके उदाहरण नाचते रहे होंगे। वशिष्ठके आश्रमकी ओर जाते हुए दिलीपको ब्राह्मणोंको दानमें दिये हुए ग्रामोंमें यज्ञस्तम्भ दीख पड़े। उसकी प्रजा मनु द्वारा निर्धारित मर्यादासे रेखामात्र भी विचलित नहीं होती थी; अपने पास गुरुदक्षिणाके लिए आया हुआ ब्राह्मण विमुख न जाने पावे, इस लिए रघुने कुवेरपर चढ़ाई करनेका निश्चय किया; अतिथिके राज्यमें व्यापारियोंको नदियाँ अपने घरके कुओंकी तरह दीखतीं थीं तथा वे जंगलों और पहाड़ोंमें अपने घरकी तरह निःशङ्क होकर फिरते थे; इसी तरह पृथ्वी अपनी रक्षाके वदलेमें खानोंसे रत्न, खेतोंसे उत्कृष्ट अन्नसम्पत्ति, और जंगलोंसे हाथियोंके रूपमें राजाको अपनी भेंट देने लगी थी। उज्जयिनीके वाजारकी दूकानोंमें करोड़ों तेजःपुंज मोतियोंके हार, शंख, सीप, इन्द्रनील मणि और इतर मणि-माणिक्य फैलाये हुए देखकर ऐसा भास होता था मानो उसके वाजारमें रत्नाकरकी सारी रत्ननिधि सिमटकर चली आई हो और समुद्रमें सिर्फ

पानी ही शेष रह गया हो। वैभवसम्पन्न होनेके कारण उज्जयिनीका 'विशाला' यह नाम सार्थक था। अपने पुण्यमें कमी हो जानेके कारण स्वर्गस्थ जन वहाँ आकर रहने लगे तथा उन्होंने अपना अवशिष्ट पुण्य यहीं खर्च कर उसे स्वर्गका एक रमणीय भाग बना डाला। सुराज्यकी बदौलत विदर्भ अत्यन्त रम्य प्रदेश हो गया था, उसकी राजधानी अत्यन्त समृद्ध थी, इत्यादि वर्णन कालिदासके ग्रन्थोंमें पढ़कर बहुश्रुत पाठकोंको ऐसा मालूम होता है कि मानों उनकी दृष्टिके सामने गुप्तकाल प्रत्यक्ष आकर खड़ा हो गया हो। किसी कविके ग्रन्थोंमें, विशेषकर उसके सामाजिक स्थितिके वर्णनमें, तत्कालीन परिस्थितिका प्रतिबिम्ब अनजानमें पड़ ही जाता है। यदि कालिदासके ग्रन्थोंमें भी वह प्रतिबिम्ब दिखाई पड़े तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं।

३–जन्मस्थानकी समस्या

Others abide our question. Thou art free!
We ask and ask—Thou smilest and art still,
Outtopping knowledge.*
—Matthew Arnold

'अन्य कवि हमारे प्रश्नोंका उत्तर देते हैं, किन्तु तुम उससे परे हो। हम बार वार पूछते हैं, तव भी हमारी ज्ञानकी परिधिसे बाहर रहकर तुम मुस्करा भर देते हो।'

कालिदासके जीवनकालके सम्बन्धमें विविध मतोंका परीक्षण कर हमने प्रथम परिच्छेदमें यह बात सिद्ध की है कि वे उज्जयिनीके द्वितीय चन्द्रगुप्त–विक्रमादित्यके शासनकालमें हुए। इससे यह भी स्पष्ट है कि उनके जीवनका उत्तरकाल उज्जयिनीमें ही बीता। इस सम्बन्धमें सब एकमत हैं। फिर भी उनका मूलस्थान कहाँपर है, उनकी जन्म-भूमि किस प्रान्तमें है, स्वभावहीसे संस्कारक्षम उनके हृदयपर सबसे पहले किस प्रदेशकी प्रकृति तथा लोक-रीतिकी प्रतिमा अङ्कित हुई थी, इन बातोंके सम्बन्धमें संशोधकोंने भिन्न भिन्न मत प्रगट किये हैं। अब हम संक्षेपमें उनपर विचार करेंगे–

यहाँ हमें सबसे पहले अपने भावुकताप्रधान बङ्गाली भाइयोंके मतका समीक्षण करना है। उनका साभिमान कथन है कि सारे भारतके ललामभूत इस महाकविका जन्म हमारे ही प्रान्तमें हुआ था। कलकत्तेमें इन लोगोंने एक 'कालिदास-संशोधन-समिति' कायम कर रखी है, जिसके तत्त्वावधानमें प्रतिवर्षकी आषाढ़ प्रतिपदाको प्रवन्ध-वाचन, व्याख्यान, गायन, वादन, आदि कार्यक्रमके द्वारा वे 'कालिदास-उत्सव' मनाया करते हैं। उन्होंने यह सिद्ध किया है कि

* अंग्रेजीके महाकवि शेक्सपीयरके सम्बन्धमें कही गई यह उक्ति कविकुलगुरु कालिदासके विषयमें भी अक्षरशः लागू होती है।

मुर्शिदाबादके 'गड्डा सिंगरू' नामक गाँवमें कालिदासका जन्म हुआ था। उक्त स्थानपर उनका एक स्मृति-चिन्ह स्थापित करनेकी चेष्टा भी वे कर रहे हैं। वहाँपर एक 'कालिदास जन्मपीठोत्सव कमेटी' स्थापित हुई है, जिसकी ओरसे एक 'कालिदास-पाठशाला' भी चल रही है, और प्रतिवर्ष सरस्वती-पूजनके अवसरपर वहाँ साहित्य-सम्मेलन तथा अन्य मनोरंजक कार्यक्रम भी सम्पन्न किए जाते हैं। सरकारी सहायतासे उन लोगोंने वहाँपर एक तालाब खुदवाकर उसे 'कालिदास-सागर' नाम दे रक्खा है। कालिदासकी तीन पत्नीयाँ थीं, जिनके साथ वे विभिन्न स्थानोंमें रहते थे; विद्युन्माला नामक अपनी पत्नीके साथ उन्होंने 'व्रक्षानीतला' नामक गाँवमें कुछ दिन तक वास किया था; 'श्रीपाट दोगाछिया' नामक गाँवमें उन्होंने अपनी दूसरी शादी कर अपने पुत्रका भी विवाह किया। इस प्रकारकी कई दन्तकथायें* अब भी वङ्गालमें प्रचिलित हैं। हम पहले कह चुके हैं कि दन्तकथाओंका प्रमाण पूर्णरूपसे विश्वसनीय नहीं होता। अतः अब हमारे लिये यह आवश्यक है कि कालिदास बङ्गाली थे, इस बातको प्रमाणित करनेके लिये बंगाली संशोधक जिन प्रमाणोंको पेश करते हैं, उनपर कुछ विचार किया जाय।

(१) कविके कालिदास नामसे ही प्रमाणित होता है कि वे बंगाली थे। प्रायः सब प्रान्तोंके प्राचीन परम्पराके पण्डित इस आख्यायिकाको जानते हैं कि कालिदास पहले बिलकुल अनपढ़ थे, किन्तु बादमें उनकी तपस्याके कारण काली देवी उनपर प्रसन्न हुईं, और उनकी कृपासे वे विद्वान् और प्रतिभासम्पन्न कवि हुए। कालीदेवीका पूजन बंगालमें ही सर्वत्र होता है और अब तक बंगालमें कई लोग कालिदास नाम भी धारण करते हैं। इस बातसे प्रमाणित होता है कि कालिदासका जन्मस्थान बंगाल ही था।

इस प्रमाणमें विशेष तथ्य दिखाई नहीं देता। हम आगे चलकर दिखायेंगे कि कालिदास अचानक किसी देवीकी कृपासे उच्च श्रेणीके कवि बन गए इस प्रकारकी परम्परागत लौकिक आख्यायिका कितनी निराधार है। इसके अलावा यह भी दिखाई नहीं देता कि कालिदास कालीदेवीके बड़े भक्त थे। उनके ग्रन्थोंके प्रारंभमें कहीं भी कालीदेवीकी स्तुति नहीं पाई जाती। कालिदासरचित जो 'ऋतुसंहार' आदि सात सर्वमान्य ग्रन्थ हैं उनमें कालीदेवीका वर्णन केवल एक ही श्लोकमें (कुमार. ७।३९.) और वह भी उस समय, जब भगवान् शंकर विवाहके

* उक्त विवरण कालिदास-समितिके 'कालिदास-जन्मपीठसभार अनुष्ठानपत्र' नामक बंगला पुस्तिकासे लिया गया है।

लिए हिमालयके घर जा रहे थे, कालीदेवी उनके अनुचरपरिवारमें थी, आया है।* इससे यह बात स्पष्ट है कि कालीदेवीकी भक्तिके कारण कविने यह नामधारण नहीं किया, किन्तु उनके माता-पिताने यह नाम रक्खा था। उज्जयिनीमें अब भी कालीका मन्दिर दिखाई देता है। मध्यभारतमें काली, चामुण्डा आदि देवियोंका पूजन कालिदासके बाद भी एक दो शताब्दियों तक प्रचलित था, इस बातका प्रमाण आठवीं शताब्दीमें लिखे गए भवभूतिके 'मालती-माधव' में पाया जा सकता है। उसमें एक दृश्य है कि कुछ कापालिक चामुण्डादेवीको बलि चढ़ानेके लिये मालतीको पद्मावतीके (वर्तमान पदम पवाया के) श्मशानमें ले गये थे। अतः स्पष्ट है कि कालिदासके माँ बाप कालीदेवीके उपासक थे। इस लिये उन्होंने कविका नाम कालिदास रक्खा+। लेकिन कवि सौम्य प्रकृतिके होनेके कारण कालीके नहीं किन्तु शिवजीके ही भक्त बने। हिन्दूधर्मकी उस उत्क्रमणावस्थाके समयमें यदि माता-पिता किसी एक देवताके उपासक होते थे तो उनके लड़के किसी अन्य देवताके उपासक हो सकते थे। यह बात तत्कालीन इतिहाससे प्रतीत होती है। द्वितीय चन्द्रगुप्तकी पुत्री प्रभावतीगुप्ता तथा जामात द्वितीय रुद्रसेन विष्णु भगवान्के उपासक थे, लेकिन उसका पुत्र द्वितीय प्रवरसेन शिवभक्त था। इस उदाहरणसे भी उक्त कथनकी पुष्टि होती है।

(२) कालिदासने मेघदूतमें लिखा है कि यक्षने मेघको रामगिरिपर 'आषाढस्य प्रथमदिवसे' अर्थात् आषाढ़ मासके पहले दिन देखा था। वङ्गालमें सौर मासकी गणना प्रचलित है। इससे वहाँपर चैत्र, वैशाख आदि महीनोंके दिन अंग्रेजी महीनोंकी दिनगणनाके अनुसार उन्तीससे लेकर इकतीस तक गिने जाते हैं। वहाँपर चान्द्रमासके निदर्शन शुक्लपक्ष, कृष्णपक्ष, नाम प्रचलित नहीं हैं और न उसके अनुसार महीनेके दो पक्ष ही माने जाते हैं। कालिदास वङ्गाली थे, इसीसे उन्होंने 'आषाढ़स्य प्रथमदिवसे' ऐसा लिखा है। आदमी चाहे जहाँ रहे, उसके पूर्वसंस्कार लुप्त नहीं होते। इसी न्यायसे कार्यवश वे भले ही मालवा या विदर्भमें

---

* कुमारसम्भवके ९, ४९ श्लोकमें भी यह वर्णन पाया जाता है कि पार्वतीजीका मनोरंजन करनेके लिये कालीने विकट नृत्य किया था। लेकिन संशोधकोंकी रायमें वह और उसके आगेके सर्ग कालिदासके नहीं हैं। इस सम्बन्धमें हमने आगे चलकर पाँचवें परिच्छेदमें विवेचन किया है।

+ ईस्वी सन् १९३६ में मध्यप्रान्तमें वाकाटक नृपति द्वितीय प्रवरसेनका एक ताम्रपट मिला था। उसके लेखकका नाम 'कालिदास' ही है। किन्तु वह 'कविकुलगुरु कालिदास' नहीं हो सकता।

रहे हों, लेकिन वे अपनी बङ्गाली दिनगणनाको नहीं भूले। वे स्वयं एक अच्छे ज्योतिषी थे। ज्योतिषशास्त्रके सम्बन्धमें उन्होंने 'ज्योतिर्विदाभरण' नामक एक सर्वमान्य ग्रन्थ भी लिखा है। इससे यह नहीं कहा जा सकता कि सूर्योदयसे लेकर दूसरे दिनके सूर्योदय तकके कालखण्डको दिवस और चन्द्र-सूर्यके भ्रमणकी भिन्न गतिके कारण उनमें जितने समयमें १२ अंशोंका अन्तर पड़ जाता है, उसे तिथि कहते हैं, यह साधारण बात भी उन्हें मालूम न होगी! अतः पक्ष और तिथि का उल्लेख न करके उन्होंने दिवस शब्दका प्रयोग किया है, इससे उनका वङ्गदेशीयत्व सिद्ध होता है।

उक्त प्रमाण भी परीक्षणकी कसौटीपर खरा नहीं उतरता। कालिदासको 'आषाढ़ महीनेके प्रारम्भमें' इतनाही अर्थ अभिप्रेत था, इसीलिए उन्होंने 'आषाढ़स्य प्रथमदिवसे' ऐसा प्रयोग किया है। किसी काव्यमें 'शुक्लपक्षे प्रतिपत्तिथौ' इस प्रकारके प्रयोगकी अपेक्षा करना उचित न होगा। दूसरी बात यह भी है कि कालगणनाके सम्बन्धमें भारतके विभिन्न प्रान्तोंमें आज जो विभिन्न पद्धतियाँ प्रचलित हैं, वे कालिदासके समयमें भी थीं, इस बातको भी पहले प्रमाणित करना होगा। इस विषयमें खुदे शिलालेखोंका प्रमाण विशेष विश्वसनीय माना जा सकता है। ईसवी सन्के पूर्वकी तथा बादकी एक दो शताब्दियोंमें महाराष्ट्रमें सातवाहनों और क्षत्रपोंके तथा मथुरामें क्षत्रपों और कुशान-वंशीय कनिष्कादि राजाओंके लिखे शिलालेखोंमें कुछ तिथियाँ पाई जाती हैं जिनसे प्रतीत होता है कि उस जमानेमें वर्षमें ग्रीष्म, वर्षा और हेमन्त ये तीन ऋतुएँ मानी जाती थीं। दक्षिणमें * इन ऋतुओंके आठ पखवाड़े और एक पखवाड़ेके १५ दिन और उत्तरमें + एक ऋतुके चार महीने और महीनेके तीस दिन गिने जाते थे। काठियावाड़ और मालवामें उस समय चैत्र, वैशाख आदि नाम विशेष प्रचलित नहीं थे। काठियावाड़ और मालवामें शक क्षत्रपोंके आश्रय के ही कारण ज्योतिर्विद्याके अभ्यासको उत्तेजना मिली और चैत्रादि मास, कृष्णपक्ष और तिथि इत्यादिका प्रारम्भ भारतमें वर्तमान प्रचलित कालगणनाके अनुसार हुआ। यह कालगणना क्षत्रपोंके बिलकुल प्रारम्भिक लेखोंमें भी पाई जाती है। आगे चलकर धीरे धीरे अन्य प्रान्तोंमें भी उसका प्रचार हुआ। लेकिन यह कहना ठीक नहीं कि कालिदासके समयमें अर्थात् ईस्वी सन्की

* नासिककी गुफाओंमें वासिष्ठीपुत्र श्रीपुलुमायी नामक सातवाहन राजाके लेखमें खुदा हुआ यह कालनिर्देश देखिए,—'रंञो वासिठिपुतस सिरि पुलुमायिस संवछरे छठे ६ गिह्मपखे पंचमे ५ दिवसे' (Ep. Ind., Vol. VIII, p. 59)

+ कनिष्कके शासनकालके सारनाथमें बौद्ध मूर्ति पर खुदे हुए इस कालनिर्देशको देखिए — 'महारजस्य कणिष्कस्य सं. ३ हे ३ दि २२ एतये पूर्वये'।

चौथी-पाँचवी शताब्दीमें मालवा या विदर्भमें पक्ष और तिथि इन्हीं शब्दोंका उपयोग साधारण रीतिसे किया जाता था। उदाहरणके लिए द्वितीय चन्द्रगुप्तके सेनापति आम्रकार्द्दवके साँचीमें खुदे हुए एक लेखके अन्तमें 'सं. ९३ भाद्रपद दि. ४' तथा कुमारगुप्तके शासनकालमें खुदी हुई मनकुवार नामक स्थानकी एक मूर्तिपर 'संवत् १२९ ज्येष्ठ मास दि १८' इस प्रकार कालनिर्देश किया गया है। कालिदासके मेघदूतमें भी कालका उल्लेख ठीक इसी प्रकारसे किया गया है। द्वितीय प्रवरसेनके दुदिया नामक गाँवके ताम्रपत्रमें 'संवत्सर २३ वर्षापक्ष ४ दिवस १०' इस प्रकारका उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि उस समय भी प्राचीन पद्धतिका प्रचार पूर्णतः नष्ट नहीं हुआ था। कुछ लेखोंमें तो शुक्ल या कृष्ण पक्षका निर्देश होते हुए भी 'दिन' शब्दका प्रयोग किया गया है, तिथिका * नहीं। इससे यह बात साफ दिखाई देती है कि दिन और तिथि सम्बन्धी जिस सूक्ष्म भेदको बङ्गाली संशोधक विशेष रूपसे पेश करते हैं, उसे उस समय स्वीकृति नहीं मिली थी। अतः 'आषाढस्य प्रथमदिवसे' इस वचनसे कविके बङ्गाली होनेके सम्बन्धमें अनुमान करना उचित नहीं दिखाई देता।

कालिदासके ग्रन्थोंको निष्पक्ष होकर पढ़ने पर उनमें एक भी ऐसा निश्चित प्रमाण नहीं मिलता, जिससे यह माना जा सके कि वे बङ्गाली थे। किसी भी कविको ले लीजिए, प्रायः उसके सम्बन्धमें आपको यही मिलेगा कि उसका जन्म जिस स्थानमें हुआ है, बचपनसे जहाँ वह खेला कूदा है, उस स्थानके संस्कार उसके हृदयपर अवश्य प्रतिबिम्बित होंगे, उस स्थानसे उसका विशेष प्रेम होगा और उसके ग्रन्थमें उस स्थानका उल्लेख बारबार मिलेगा। लेकिन कालिदासके ग्रन्थोंमें बङ्गालके सम्बन्धमें इस तरहका उल्लेख कहीं नहीं पाया जाता। अतः यह कहना कि कालिदास बंगाली थे, भ्रम है।

अब हम 'कालिदासका जन्म काश्मीरमें हुआ था' इस कथनकी विवेचना करना चाहते हैं। दिल्ली यूनिवर्सिटीके संस्कृतके प्रोफेसर महामहोपाध्याय पं. लक्ष्मीधर कल्लाने यह मत प्रकट किया है और उन्होंने एक पृथक् पुस्तक + लिखकर कई प्रमाणोंके साथ उसे पुष्ट करनेकी चेष्टा की है। उक्त पुस्तकमें दिए गये सब प्रमाणोंके सम्बन्धमें यहाँपर विस्तृत रूपसे विचार करना असम्भव है। फिर भी संक्षेपमें उनकी युक्तियोंका सारांश देकर हम उनपर विचार करेंगे।

"कालिदासके ग्रन्थोंमें हिमालयका वर्णन विस्तृत तथा बहुत सूक्ष्म दृष्टिसे किया गया है, इस बातको सब लोग जानते हैं। 'कुमारसम्भव' में तो हिमालयहीके

---

* विश्ववर्मन्का गंगधारका शिलालेख (G. I., No. 17).

+ Lachhmidhar Kalla: *The Birth-place of Kalidas* a [1926].

वर्णनसे काव्यका प्रारम्भ हुआ है। 'मेघदूत' में वर्णित यक्षकी निवासभूमि अलका नगरी हिमालयपर ही थी। 'विक्रमोर्वशीय' में पुरूरवस् तथा उर्वशीकी पहली मुलाकात काश्मीरके समीप गन्धमादन पहाड़पर ही हुई थी और आगे चलकर उर्वशीके वियोगके बाद राजा उसी पहाड़पर भटकने लगा था। 'रघुवंश' के पहले सर्गमें राजा दिलीप वशिष्ठाश्रमको जाते हैं, वह भी हिमालयपर ही था। 'शाकुन्तल' में दिखाये गए कण्व तथा मारीच ऋषिके आश्रम भी कविने इसी पर्वतश्रेष्ठपर बताए हैं। इन सारी बातोंसे कविका हिमालयके प्रति कितना अधिक प्रेम था, यह दिखाई देता है। यह प्रमाणित किया जा सकता है कि उक्त सभी स्थान काश्मीरमें सिन्धु नदीकी घाटीमें थे। उदाहरणके लिए देखिए वशिष्ठाश्रमके पास गंगाप्रपात था। उस जगह राजा दिलीप वशिष्ठकी जिस धेनुकी रक्षा करते थे, उसपर एक सिंह झपटा। कालिदासने सिंहको 'भूतेश्वर-पार्श्ववर्ती' कहा है। काश्मीरमें सुविख्यात भूतेश्वर तीर्थ उस प्रदेशमें ही बसा है। सिन्धु तथा मालिनी नामक नदियाँ, शचीतीर्थ, सोमतीर्थ, तथा ब्रह्मसर आदि तीर्थ तथा शक्रघाट आदि स्थान भी काश्मीरमें ही हैं। कथासूत्रकी सुविधाके लिए यद्यपि कविने वर्णन किया है कि शचीतीर्थ और शक्रघाट हस्तिनापुरके पास थे, तो भी पूर्वपरिचित होनेहीके कारण उक्त स्थानोंके नाम कालिदासको सूझे होंगे। 'रघुवंश' में (२, ३५.) वशिष्ठकी धेनुपर झपटनेवाला सिंह अपनेको निकुम्भका मित्र बतलाता है। यह निकुम्भ कौन था, इसका ज्ञान आलोचकोंको नहीं हुआ है। लेकिन काश्मीरके 'नीलमतपुराण' में इस सम्वन्धमें एक कथा है। वह यह है, कि कुबेरने दुष्ट पिशाचोंके साथ युद्ध करके उन्हें काश्मीरसे निकालनेके लिये निकुम्भको नियुक्त किया। इससे मालूम होता है कि कालिदासको काश्मीरकी पुरानी कथाओंका ज्ञान था। उनके काव्योंमें काश्मीरके कुछ खास रीति-रिवाजोंका प्रतिबिम्ब झलकता है। विवाहके समय काश्मीरमें सास या कोई दूसरी सौभाग्यवती नारी वरके गलेमें माला पहनाती है। यह बात उस देशकी विवाह-प्रथासे मालूम होती है। 'रघुवंश' के छठे सर्गमें जहाँ इन्दुमतीका स्वयंवर हुआ है, इन्दुमतीने स्वयं अपने हाथोंसे अजके कण्ठमें पुष्पहार नहीं डाला, वल्कि अपनी उपमाता सुनन्दाके हाथोंसे डलवाया। धीवर (मछुआ) जातिको उसकी निन्द्य वृत्ति (मछली मारना) के कारण लोग वहिष्कृत मानते हैं। इस बातका उल्लेख 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी' नामकी एक टीकामें आया है। 'शाकुन्तल' में भी शकुन्तलाकी अँगूठी एक धीवरको मिलती है। नगर-रक्षक सिपाही उसे गिरफ्तार करते हैं। उनमेंसे एक सिपाही धीवरके धन्धेकी ओर लक्ष्य करके 'विशुद्ध इदानीमाजीवः' (वड़ा पवित्र यह धन्धा है) कहता है और उसपर धीवर वोल उठता है कि यह तो हमारा कुलधर्म है, अतः निन्द्य नहीं। इस 'प्रवेशक' में उपर्युक्त काश्मीर-प्रथा प्रति-

बिम्बित हुई है। कालिदास काश्मीरी शैव-मतके अनुयायी अर्थात् 'प्रत्यभिज्ञादर्शन' के माननेवाले थे। इस दर्शनमें शिव ही सर्वव्यापी एक तत्त्व माना गया है। सृष्टिका निर्माण उसके शिव और शक्ति नामक दो रूपोंसे होता है। शक्तिकी सहायतासे ही शिव इस चराचर जगत्की सृष्टि करते हैं और स्वयं शक्तिका आवरण लेकर प्राण या आत्मा बन जाते हैं। आगे सद्गुरुके उपदेशसे या आध्यात्मिक दर्शनके अभ्याससे अथवा किसी अन्य कारणसे जब आत्माका 'आवरण' नष्ट हो जाता है तब वह अपने पूर्ण स्वरूपको पहचानता है। उसके उपरान्त वह परमानन्दमें लीन हो जाता है। इस 'तत्त्वज्ञान' में एक प्रकारसे नियति (अदृष्टशक्ति) के कारण आत्माको अपने सत् स्वरूपका विस्मरण हो जाता है। उसके वाद कई कारणोंसे जब उसका वह पर्दा-आवरण उठ जाता है, तब उसे अपने स्वरूपका बोध होता है। यही कल्पना मुख्य है और यह कालिदासके सभी नाटकोंमें दिखाई पड़ती है। उदाहरणार्थ–'मालविकाग्निमित्र' नाटकमें सिद्धके आदेशसे मालविकाको एक वर्ष तक अज्ञातवासमें रहना पड़ता है। आगे चलकर जब उसकी दासियाँ विदिशामें आती हैं तब उसे 'विदर्भराजकन्या' कहकर पहचानती हैं। 'विक्रमोर्वशीय' नाटकमें उर्वशी कुमारवनमें जाती है। वहाँ पहुँचते ही वह कार्त्तिकेयके शापसे लता हो जाती है। आगे चलकर राजाको संगमनीय 'मणि' मिलती है और उससे वह फिर अपना पूर्वका उर्वशीरूप धारण करती है। शाकुन्तलमें दुर्वासाके भयंकर शापके कारण दुष्यन्त शकुन्तलाको भूल जाता है। परन्तु अँगूठीको देखते ही उसे अपनी पूर्वस्मृति होती है। इन सब कथानकोंसे यह मालूम होता है की 'प्रत्यभिज्ञादर्शन' ने कालिदासके सभी नाटकोंपर अपना प्रभाव डाला है। कविने 'शाकुन्तल' नाटकके भरत-वाक्यमें शंकरके लिये 'परिगतशक्ति' का विशेषण प्रयुक्त किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि कालिदास काश्मीरी थे। 'मेघदूत' में अलकाका-कुबेरनगरीमें रहनेवाले यक्षके निवासस्थानका-वर्णन है। यद्यपि उस वर्णनमें भाँति भाँतिकी कल्पनाएँ हैं तथापि उसमें जन्मस्थानका वर्णन प्रधानतासे दिखाई पड़ता है। कवि कहता है कि अलकापुरी कैलास पर्वतपर है। यह कैलास काश्मीरका 'हरमुकुट' नामक पर्वत है। कहते हैं कि इसपर शंकरका वास है। शिवजी प्रयागसे हरमुकुट पर्वत तक जिस मार्गसे गये उस मार्गका वर्णन 'नीलमत' नामक पुराणमें है। उस पुराण में लिखा है कि नैमिषारण्य, गंगाद्वार-कुरुक्षेत्र, विष्णुपद, हंसद्वार और उत्तरमानसतीर्थ आदि स्थानोंसे होकर जाना पड़ता। कालिदासने इनमेंसे अनेक स्थानोंका वर्णन यक्षके मुखसे कराया। इससे इस बातमें सन्देह नहीं कि कवि मेघको 'हरमुकुट' पर्वतपर भेजना चाहता था। अलकामें रहनेवाले यक्षके घरका जो वर्णन है वह हरमुकुट पर्वतकी उपत्यका (तलेटी) में बसे हुए प्राचीन 'मयग्राम' और आधुनिक 'मणिग्राम' पर अक्षरशः

घटता है। उसके समीपकी चोटीसे उस ग्रामका सम्पूर्ण दृश्य दिखाई देता है। उस चोटीके नोचे पत्थरोंसे बंधाहुआ एक सुन्दर सरोवर है। वहाँके निवासी उसे अतिपवित्र मानते हैं। यही यक्षके घरके पास की बावली रही होगी। गाँवके पास ही कुछ दूरपर बड़ी बड़ी शिलाओंका ढेर लगा हुआ है। वही 'मेघदूत' में वर्णित कुबेरका प्रासाद होगा। यहाँसे कुछ दूर नीचेकी तरफ वशिष्ठाश्रम और भूतेशका पवित्र देवालय है। 'मयग्राम' नामसे उस काल में वहाँ यक्षोंका निवास होगा, ऐसा मालूम होता है। ११ वीं शताब्दी तक यह 'मयग्राम' इतिहास में प्रसिद्ध था। विविध प्रकार के पुष्पों, नृत्यगीतों और सुरापान आदि बातोंका वर्णन जो 'मेघदूत' में आया है वह काश्मीर पर ही घटता है। क्योंकि काश्मीरका ऐसा ही वर्णन कल्हणकी 'राजतरंगिणी' और बिल्हणके 'विक्रमाङ्कदेवचरित' आदि ग्रथोंमें पाया जाता है। इसीलिए अपने कालमें उन्नतिके शिखर पहुँचे हुए 'मयग्राम' का अर्थात् अपनी जन्मभूमिका वर्णन कालिदासने दिया है।

ईसाकी छठी शताब्दीमें हूण लोगोंने काश्मीरपर चढाई की। उस समय कालिदासको अपनी पत्नी और जन्मभूमिका त्याग करना पड़ा और अन्य काश्मीरी पण्डितोंकी तरह किसी राजाके आश्रयके लिए इधर उधर भटकना पड़ा। 'ऋतुसंहार' में विन्ध्याचलके समीपवर्ती प्रदेशोंकी गर्मी कविको अत्यन्त त्रासदायक मालूम पड़ी। अत: उसे अपनी प्रियाकी बारम्बार याद आती थी यह उसके वर्णनोंसे झलकता है। यक्षकी विरहदशाका वर्णन करनेके बहाने कालिदासने अपने ही वियोगदु:खका वर्णन कर डाला हे। यह बात ऊपर आ चुकी है। यक्षका वासस्थान ही कविकी जन्मभूमि है और वह काश्मीरमें है। इसलिये कहा जा सकता है कि कालिदास काश्मीरी थे।"

प्रोफेसर लक्ष्मीधर कल्लाने अनेक प्रमाणोंसे अपना मत सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है। परन्तु उनका अभीष्ट सफल नहीं हुआ। प्रोफेसर कल्लाके उपर्युक्त मतपर अनेक आक्षेप किये जा सकते हैं। पहली बात तो यह है कि 'कालिदास' नाम काश्मीरी नहीं है। भामह, रुद्रट, कैयट, जैयट, मम्मट, कल्हण आदि काश्मीरी पण्डितोंके नाम 'राजतरङ्गिणी' में और अन्य ग्रन्थोंमें हमें मिले हैं। कालिदासका नाम उस नाममालामें दिखाई नहीं देता। दूसरी बात यह है कि यदि कालिदास काश्मीरके होते तो कल्हण जैसा सावधान और जिज्ञासु इतिहासकार कालिदासके काश्मीरी होनेका वर्णन 'राजतरङ्गिणी' में किये बिना न रहता। इस ग्रन्थमें बिल्हणके जीवनक्रमका जो वर्णन है, उससे भी उपर्युक्त बात सिद्ध होती है। इसके अतिरिक्त कालिदासका भौगोलिक ज्ञान अत्यन्त वास्तविक था यह भी उनके ग्रन्थोंसे सिद्ध होता है। भारतवर्षका ही नहीं, बाहरके कई प्रदेशोंका वर्णन जो 'रघुवंश' आदि काव्योंमें आया है उसमें कहीं भी भौगोलिक भूल नहीं दिखाई देती। किन्तु प्रत्येक स्थानकी विशेषताका बहुत ही थोड़े

किन्तु भावपूर्ण शब्दोंमें अङ्कित करनेमें कालिदासकी शैली अत्यन्त प्रशंसनीय है। यह कवि काश्मीरके अप्सरस्तीर्थ,शचीतीर्थ, शक्रावतार आदि स्थलोंको केवल कथानककी आवश्यकताके कारण जबरदस्ती हस्तिनापुरके आसपास लाकर रक्खेगा इस तरहकी कल्पना संगत प्रतीत नहीं होती। इनमेंसे कई स्थलोंका निर्देश अन्य ग्रन्थोंमें आया है। उससे यह नहीं कह सकते, कि ये स्थल काश्मीरहीमें थे। उदाहरणार्थ, महाभारतसे ज्ञात होता है कि कण्वका आश्रम मालिनी नदीपर था। कालिदासने भी वैसा ही वर्णन किया है। कैलाश, अलका, मन्दाकिनी आदिके वर्णनमें जो भौगोलिक कल्पनाएँ दूसरे ग्रंथोंमें पाई जाती हैं, वही कालिदासकृत ग्रन्थोंमें दिखाई पड़नी चाहिए। साधारण तौर पर यह कोई नहीं मानता कि ये स्थल काश्मीरमें हैं। कालिदासके ग्रन्थोंमें वर्णित नदी, तीर्थ, आश्रम आदि 'नीलमतपुराण' के काश्मीर-वर्णनमें आये हैं। किन्तु इस पुराणका निर्माणकाल इतना प्राचीन नहीं है कि चौथी या पाँचवीं शताब्दी हो। बल्कि यह प्रतीत होता है कि पद्मपुराणकी तरह इस पुराणमें भी व्यक्ति और स्थलोंमें नामोंका उल्लेख कालिदासके ग्रन्थोंके आधारपर किया गया है।

काश्मीरके खास खास रीति-रिवाजोंके सम्बन्धमें जो उदाहरण प्रो. कल्लाने दिये हैं, वे भी इस बातके निर्णायक नहीं है। 'शाकुन्तल' में ऐसा कहींपर भी उल्लेख नहीं है कि समाजने धीवरको बहिष्कृत कर रक्खा था। कालिदासके समयमें लोगोंके दिलोंपर बौद्धधर्मका इतना असर हो गया था कि धीवरका धंधा (मछली मारना) भी जीव-हिंसाके कारण निन्द्य माना जाता था। इस कारण कविने स्वकालीन लोगोंको लक्ष्य करके 'शाकुन्तल' के उस प्रवेशकमें कहा है कि स्वजातिप्राप्त कर्म करनेमें कोई पाप नहीं है। अतः नगररक्षककी उक्तिमें केवल काश्मीरमें प्रचलित विचारके निर्देशकी कल्पना उचित नहीं प्रतीत होती।

कालिदासके तत्त्वज्ञानका विचार करते समय कि क्या वे काश्मीरी शैवमतके अनुयायी थे, इस प्रश्नका हम विमर्श करेंगे। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि यह मत श्रीशंकराचार्यके 'केवलाद्वैत' से मिलताजुलता है। अतः उनके पीछे उस मतका काश्मीरमें प्रचार हुआ होगा। इसके सिवा कालिदासके ग्रन्थोंमें इसका कहीं भी स्पष्ट रूपसे उल्लेख नहीं मिलता। उनके नाटकमें शापसे कुछ काल तकके लिये प्रेमी-युगलका वियोग होता है और फिर सम्मिलन हो जाता है, यह विषय कल्पनाप्रसूत है इसमें सन्देह नहीं, परन्तु इस युक्तिका कोई आधार नहीं है कि यह कल्पना उन्हें 'प्रत्यभिज्ञादर्शन' से सूझी। क्योंकि यह 'दर्शन' कहीं भी नहीं कहता कि वियोग जैसा शापमूलक होता है वैसे ही

जीवोंकी विस्मृति भी शापमूलक होती है। 'शाकुंतल' में भरतवाक्यके 'परिगतशक्ति' इस विशेषणका अर्थ 'पार्वतीसहित' होता है। इससे यह नहीं सिद्ध होता कि कवि 'प्रत्यभिज्ञादर्शन' का अनुयायी तथा काश्मीरी था।

यह सच है कि कवि किसी घटनाका अनुभव स्वयं किये बिना उसका चित्र अपनी कलमसे अच्छी तरह चित्रित नहीं कर सकता। लेकिन इससे कालिदासका घर अलकापुरीमें था, उनके घरकी बावलीमें स्फटिक-शिलाकी बनी हुई सीढ़ियाँ थीं और उनमें सुवर्णकमल खिले रहते थे, जिनकी डण्डियों वैडूर्यमणिकी थीं ऐसा मानना उचित प्रतीत नहीं होता। उत्तरमेघमें कविने अपनी कल्पनाको स्वच्छन्द बनाकर अलकानगरीके ऐश्वर्य, सौंदर्य और सुखोपभोगका अत्यन्त उत्कृष्ट वर्णन किया है। उसमें वास्तविकताका रूप देखना ठीक नहीं जँचता। दूसरी बात यह है कि ईसाकी चौथी शताब्दीमें कालिदाससदृश कविके उत्पन्न होने योग्य परिस्थिति काश्मीरमें थी, यह भी निश्चित नहीं है। इन सब कारणोंसे कालिदासका काश्मीरी होना प्रमाणित नहीं होता।

कालिदासने भारतवर्ष के अनेक प्रान्तोंका हूबहू वर्णन अपने ग्रन्थोंमें किया है। इस कारण हर एक प्रांत उनको अपना ही समझता है। उदाहरणके लिये उनके कई ग्रन्थोंमें विदर्भ देशका वर्णन आया है। उनके 'मालविकाग्निमित्र' नाटकमें विदर्भकी राजकन्याकी प्रेम-कथाका संविधानक है। 'मेघदूत' का रामगिरि वर्तमान रामटेक नागपुरके पास है इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। 'रघुवंश' में भी विदर्भराजकन्या इन्दुमतीका स्वयंवर और उसकी अकालमृत्युके बाद अजका असीम करुण क्रन्दन जिन सर्गोंमें वर्णित है वे षष्ठ और अष्टम सर्ग उत्कृष्ट माने जाते हैं। पाँचवें सर्गमें 'ऋद्धां विदर्भाधिपराजधानीम्' (५, ४०) 'सौराज्यरम्यानपरो विदर्भान्' (५, ६०) इत्यादि कालिदासकी उक्तियाँ विदर्भकी तत्कालीन सुखसम्पदा और सुराज्यपर अच्छा प्रकाश डालती हैं। उन्होंने अपने समस्त ग्रन्थोंमें काव्यकी वैदर्भी रीतिका सुन्दर और सर्वोत्कृष्ट निर्वाह कर उस रीतिको विद्वन्मान्य बना दिया है। इससे कालिदासको विदर्भदेशीय कहा जा सकता है और एक संशोधकने कालिदासको वैदर्भ सिद्ध करनेका प्रयास भी किया है।* तथापि कविने विदर्भके किसी भागका विशेष वर्णन नहीं किया है। अतः विदर्भको उनकी जन्मभूमिका गौरव प्रदान करना ठीक नहीं जँचता।

स्वर्गीय म. म. हरप्रसादशास्त्री और प्रो. शि. म. परांजपेने यह दिखलानेकी

---

* F. G., Peterson: A Note on Kalidasa, JRAS, 1926, p. 729.

चेष्टा की है कि कालिदासने 'मेघदूत' में विदिशाका जो वर्णन किया है, उसमें 'विदिशा' के आसपासके ही छः स्थलोंका उल्लेख है। इनमें 'नीचैर्गिरि' नामक पर्वत है और वननदी, निर्विन्ध्या, सिंधु, गन्धवती और गम्भीरा नामक पाँच नदियाँ सम्मिलित हैं। यह 'नीचैर्गिरि' अपने नामानुसार छोटा पर्वत होगा और उक्त पाँच नदियाँ तो प्रसिद्धही हैं। इनमेंसे कुछ नक्शेमें या पुरातन वर्णनोंमें मिलती हैं और कुछका कालिदासने वर्णन किया है, इसलिये ये उज्जयिनी और विदिशासे इर्द गिर्द कहीं न कहीं होंगी, मानना पड़ता है (साहित्य-संग्रह, भाग १, पृ. ९६)। उनके वर्णनसे प्रतीत होता है कि इस पर्वत और इन नदियोंसे कालिदासका अत्यन्त प्रेम रहा होगा। अतः प्रो. परांजपेने कालिदासको विदिशाका निवासी और म. म. हरप्रसादशास्त्रीने मन्दसोरमें यशोधर्मदेवका आश्रित सिद्ध किया है। पर यह युक्ति ठीक नहीं मालूम होती। यह ठीक है कि कालिदासने विदिशा और उज्जयिनीके मध्यमें बहनेवाली छोटी छोटी नदियोंका वर्णन किया है, फिर भी उन्होंने विदिशाका वर्णन दो तीन श्लोकोंमें समाप्त कर डाला है। हम अपने पहले प्रकरणमें दिखला चुके हैं कि वे यशोधर्म देवसे सौ सवासौ वर्ष पहले हुए थे। कालिदासके समयमें किसी प्रबल राजाकी सत्ता विदिशामें थी, यह भी कहीं दिखाई नहीं देता। यद्यपि उन्होंने अन्यान्य स्थलोंकी अपेक्षा मन्दसोर और विदिशाका वर्णन अधिक किया है फिर भी उसमें मातृभूमिके प्रेमकी उत्कटता नहीं है।

परन्तु विदिशाके अनन्तर जिस नगरीका मार्ग कविने यक्षके द्वारा बतलाया है उससे वे उज्जयिनीके वर्णनमें नख-शिख तक तल्लीन दिखाई पड़ते हैं। रामटेकसे कैलास पर्वतकी ओर जाते हुए विदिशा और मन्दसोर शायद रास्तेमें पड़ेंगे, परन्तु उज्जयिनी बहुत दूर पश्चिम की तरफ रह जाती है। अतः 'उत्तर दिशाकी ओर तुम्हें अगर टेढ़े रास्तेसे भी जाना पड़े, तो भी, हे मेघ, उज्जयिनीके महलोंपर क्षण-भर रुकनेका प्रयत्न अवश्य करना।' इस तरह यक्ष का मेघसे अनुरोध है। कालिदासने ११ श्लोकोंमें उज्जयिनीकी अपरिमित सम्पत्ति, शिप्रा नदीकी ओरसे बहनेवाली शीतल मंद और सुगन्धित हवा, वहाँके स्थानोंके सम्बन्धमें प्रसिद्ध प्राचीन कथाएँ, उस नगरोके प्रसिद्ध महाकाल महादेवका मन्दिर, सन्ध्याकालकी आरतीके समय होनेवाले वेश्यानृत्य और रात्रिमें अपने प्रियतमोंसे मिलनेके लिये जानेवाली अभिसारिकाएँ, इन सबका कालिदासने इतना रमणीय एवं हृदयहारी वर्णन किया है कि उसे पढ़ते समय उज्जयिनीका तत्कालीन दृश्य पाठकोंकी आँखोंके सामने पूराका पूरा नाचने लगता है। अलकाको छोड़कर किसी दूसरी नगरीका इतना सुंदर और विस्तृत वर्णन कविने नहीं किया,

यह बात ध्यानमें रखने योग्य है। अलका दिव्य-स्वर्गीय नगरी है। इसीलिये इसका वर्णन करते हुए कविने अपनी कल्पनाशक्तिको स्वच्छन्द बनाया है। किन्तु भूलोककी किसी दूसरी नगरीके ऊपर उनका इतना प्रेम नहीं दिखाई पड़ता जितना उज्जयिनी पर। इससे तो यह स्पष्ट होता है कि उनके बचपनके दिन उज्जयिनीमें ही बीते होंगे।

४–चरित्रविषयक अनुमान

लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति ।

उत्तररामचरित

[लोकोत्तर पुरुषोंके हृदयोंको कौन जान सकता है?]

कालिदासके चरित्रके संम्बन्धमें निम्नलिखित दन्तकथायें* प्राचीन विचार-परम्पराके अनुयायी पण्डितोंमें प्रचलित हैं—

कालिदास ब्राह्मण बालक थे। जब वे पाँच छः मासके थे तब उनके मा-बाप चल बसे और बालक अनाथ हो गया। संयोगकी बात, एक ग्वालेकी दृष्टि उस लड़केपर पड़ी। वह इस मातापितृहीन बालकको अपने घर ले गया और उसका अच्छी तरह लालन-पालन किया। जब कालिदास कुछ बड़े हुए तो अपने हमजोली ग्वालोंके लड़कोंके साथ खेल-कूदमें मस्त रहने लगे। रंग उनका गोरा था और शरीर था सुगठित तथा हृष्ट पुष्ट। इसलिये वह सबके बीचमें बहुत आसानीसे पहचाने जा सकते थे। वह अठारह वर्षकी अवस्था तक निरक्षरभट्टाचार्य ही बन रहे। जिस नगरीमें वे रहते थे वहाँके राजाकी एक अत्यन्त सुन्दर और शील-गुणवती कन्या थी। जब वह विवाहयोग्य हुई तब राजाने रूप-गुण-यौवनसम्पन्न अनेक वर उसके लिये खोजे। मगर एक भी वैसा मनचाहा योग्य वर न मिला। अन्तमें लाचार होकर राजाने राजकुमारीके योग्य वर तलाश करनेका भार अपने मन्त्रीको सौंपा। मन्त्री किसी कारणवश राजकन्यासे बदला लेना चाहता था। वह छतपर खड़े खड़े राजकन्याके लिये एक ऐसे बुद्धू नालायक वरकी खोजमें था ही कि इतनेमें उसने ग्वालोंके लड़कोंके साथ उस ब्राह्मणकुमारको जाते हुए देखा। तुरन्त मन्त्रीको एक तरकीब सूझी। उसने उस गँवार ब्राह्मणकुमारको अपने महलमें बुलाया। बहुत बढ़िया बढ़िया रेशमी वस्त्रों और बहुमूल्य आभर-

---

* R. V. Tullu : Traditionary Account of Kalidasa (Ind. Ant., Vol. 11, pp. 115-7.)

णोंसे अलङ्कृत कर वह उसे अनेक नवयुवक पण्डितोंके साथ राजसभामें ले आया और राजासे बोला कि ये काशीके बड़े दिग्गज विद्वान आये हैं। आप इनका आदरसत्कार करके इनकी परीक्षा लीजिए। राजसभाके पण्डित, राजाकी आज्ञासे शास्त्रार्थ करनेके लिये तैयार हुए। परन्तु सभी पण्डित उसके शिष्यों द्वारा परास्त हो गये। राजकन्याको उस ब्राह्मणकुमारकी परीक्षा लेनेकी फिर आवश्यकता नहीं पड़ी। राजकुमारी उसके रूप-लावण्यपर मोहित हो गई और शीघ्र ही उसका विवाह उस महामूर्ख ब्राह्मणकुमारसे हो गया। परन्तु दो चार दिनमें उसकी मूर्खता प्रगट हो गई। तब उसको मार डालनेकी धमकी देकर राजकन्याने सारा भेद जान लिया। उस समय उसे बहुत दुःख हुआ। परन्तु विवाह होनेके बाद क्या कर सकती थी? उसने उसे काली देवीकी उपासना करनेके लिये कहा, तब वह काली-मन्दिरमें जाकर आसन जमा कर बैठ गया। देवीको प्रसन्न होते न देख वह अपना सिर काटने लगा। उसकी भक्ति तथा दृढनिश्चय देखकर देवी प्रसन्न हो उठी और उसके मस्तकपर अपना वरदहस्त रख दिया। तबसे वह अत्यन्त विद्वान् और प्रतिभासम्पन्न कवि हो गया और जगत्में कालिदासके नामसे उसकी ख्याति हुई।

वहाँसे लौटनेके बाद कालिदास राजकुमारीके पास आया। तब राजकन्याने पूछा —

अस्ति कश्चित् वाग्विशेषः।

[आपकी वाणीमें कुछ विशेषता आई या नहीं?]

कालिदासकी वाणी इस समय देवीके प्रसादसे पवित्र हो चुकी थी। इसलिये उसने राजकन्याके वाक्यका प्रत्येक पद लेकर तुरन्त तीन काव्य रच डाले। जैसेः—

'अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा' इत्यादिसे 'कुमारसंभव'। 'कश्चित्कान्ता-विरहगुरुणा' इत्यादिसे 'मेघदूत'। 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ' इत्यादिसे रघुवंश। जिस राजकन्याके द्वारा वह मूर्खसे महापण्डित और कवि बना उसे वह माता-समान और गुरुसमान मानकर पूजने लगा। इससे राजकन्या चिढ़ गई और उसने उसको शाप दिया कि तुम्हारी मृत्यु स्त्रीके हाथसे होगी। उस समयसे कालिदासके जीवनका प्रवाह बिलकुल बदल गया। उसका बहुतसा समय वेश्याओंकी संगतिमें बीतने लगा। एक बार वह अपने मित्र कुमारदाससे मिलने सिंहलद्वीप (लंका) गया और वहाँ उसने एक वेश्यासे सुना कि 'कमले कमलोत्पत्तिः श्रूयते न तु दृश्यते' (कमलपर दूसरे कमलकी उत्पत्ति सिर्फ सुनी ही जाती है, देखी नहीं)

इस श्लोककी पूर्तिके लिये राजाने बहुत बड़ा इनाम घोषित किया है। कालि-दासने तुरन्त—

'बाले तव मुखाम्भोजे कथमिन्दीवरद्वयम्।'

[हे बाले! तेरे मुख-कमलपर ये दो (नेत्ररूपी) नीलकमल कैसे आये?]

इस तरहकी पूर्ति कर दी। वेश्याने राजासे मिलनेवाले पुरस्कारके लालचमें कालिदासका वध कर डाला। इससे राजा कुमारदासको शक हुआ और उसने भय दिखा कर उस वेश्यासे कालिदासके बारेमें पूछा, तब वेश्याने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। अपने प्रिय मित्र कालिदासकी शोचनीय मृत्यु देखकर राजाको अत्यन्त दुःख हुआ। कालिदासका विरहदुःख उसको यहाँ तक अखरा, कि वह पागलसा हो गया और कालिदासकी चितामें कूद कर जल मरा। स्वर्गीय महामहोपाध्याय डॉ. सतीशचन्द्र विद्याभूषण कहते हैं कि अब भी सिंहलद्वीपमें माटर नामक दक्षिण प्रांतमें किरिन्दी नदीके मुहानेके पास वह स्थान बतलाया जाता है जहाँ कालिदासकी चिता बनी थी।

राजसभामें रहते समय कालिदासने अपनी प्रतिभा तथा समस्यापूर्तियोंसे बड़े बड़े दिग्गज पण्डितों और अपने आश्रय-दाता विक्रमादित्यको भी अनेकों बार चकित कर दिया था। इस प्रकार वहुतसी आख्यायिकायें पण्डितसमाज में प्रचलित हैं। इसी तरहकी कालिदासके सम्बन्धमें कुछ आख्यायिकायें बल्लाल कविने, जो ग्यारहवी शताब्दीके प्रख्यात दानशूर भोजराजाकी सभामें विद्यमान थे, 'भोज-प्रबन्ध' में दी हैं। उनमेंसे दो मनगढ़न्त आख्यायिकायें नीचे दी जाती हैं:—

एक बार एक पण्डितने राजसभामें आकर समुद्रवाचक छः संस्कृत पदोंकी 'अम्भोधिर्जलधिः पयोधिरुदधिर्वारांनिधिर्वारिधिः' यह पंक्ति पढ़ी और विद्वानोंको चुनौती दी कि जो इस समस्याकी पूर्ति कर देगा उसीको 'विजयपत्र' मिलेगा। सर्व पण्डित तो एक दूसरेका मूँह ताकने लगे, इतनेमें कालिदासने आगे बढ़कर उक्त समस्याकी पूर्ति निम्न-लिखित श्लोक बनाकर की:—

अम्बा कुप्यति तात मूर्ध्नि विधृता गङ्गेयमुत्सृज्यताम्
विद्वन् षण्मुख सन्ततं मयि रता तस्या गतिः का वद।
कोपाटोपवशाद्विवृद्धवदनः प्रत्युत्तरं दत्तवान्
अम्भोधिर्जलधिः पयोधिरुदधिर्वारांनिधिर्वारिधिः।।

"एक दिन कुमार कार्त्तिकेयने शंकरसे कहा—'पिताजी, यह देखकर कि आपने गंगाको अपने मस्तकपर धारण किया है माताजी बहुत नाराज हैं'।

इसपर शंकरने कहा, 'अरे, जो सदासे मुझसे प्रेम करती आ रही है वह कहाँ जाय?' यह सुनते ही कुमार आगबबूला हो गया और उसके छहों मुखोंसे एक साथ 'समुद्रमें जाय' इस अभिप्रायसे 'अम्भोधिः' इत्यादि समुद्रवाची छः शब्द निकल पड़े।"

यह समस्यापूर्ति सुनकर वह अभिमानी पण्डित ठण्डा पड़ गया और राजा भोजको बड़ी खुशी हुई।

ईश्वरकी कृपाके बिना विद्यार्जन करने में बहुत कड़ी मेहनत उठानी पड़ती है, इस बातको अच्छी तरह जाननेके कारण कालिदास निर्धन तथा अपठित ब्राह्मणोंको राजसभासे पारितोषिक दिला दिया करते थे। एक बार एक ब्राह्मण राजसभामें आया। वह वेदके पुरुषसूक्तकी सिर्फ पहली पंक्ति जानता था जिसे उसने राजसभामें आकर सुनाया, पर इससे राजा भोज कैसे प्रसन्न हो सकता था? कालिदास सभामें मौजूद थे। उन्होंने उस बेचारे ब्राह्मणकी बिगड़ी हुई सूरतसे ही ताड़ लिया कि इस गरीब ब्राह्मणका ज्ञानभण्डार खतम हो चुका है। इसलिए इस गरीब ब्राह्मणकी सहायता करनेके लिए उन्होंने आगे बढ़कर राजासे कहा—महाराज, इस ब्राह्मणने आपकी बड़ी तारीफ की है। उसके कहनेका आशय यह है—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
चलितश्चकितश्छन्नस्तव सन्ये प्रधावति ॥

'राजन्! जब आपकी सेना वैरियोंका दमन करनेके लिए आक्रमण करती है तब शेषनाग पृथ्वीके भारसे दबकर अपने स्थानसे विचलित हो जाता है, इन्द्र विस्मित होता है और सूर्य धूलसे ढक जाता है।' इस श्लोकमें कालिदासने बड़ी चतुराईसे 'यथासंख्य' अलङ्कारका चमत्कार दिखलाकर भोज महाराजसे उस गरीब ब्राह्मणको बहुत-सा धन दिलवा दिया।

इस तरहकी अनेक दन्तकथायें पण्डितसमाजमें प्रचलित हैं। ऐसी आख्यायिकाओंपर कहाँ तक विश्वास किया जा सकता है, इसका विवेचन इस पुस्तकके प्रथम परिच्छेदमें हमने स्पष्ट रूपसे किया है। इसी तरहकी दन्तकथाएँ कालिदासके चरित्रके सम्बन्धमें जैनग्रन्थकार मेरुतुंगके प्रबन्धचिन्तामणि नामक ईसाके चौदहवीं शताब्दीके ग्रन्थमें पाई जाती हैं। उनसे मालूम होता है कि वे सब कहानियाँ कालिदासके बाद करीब हजार वर्ष पीछेकी हैं। बाण, अभिनन्द, सोड्ढल आदि पण्डितोंने कालिदासपर अनेक प्रशंसात्मक श्लोक रचे हैं। उनमें ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता जो उपर्युक्त आख्यायिकाओंसे मिलता जुलता हो। कालिदास और

कुमारदासकी मित्रताका उल्लेख सोलहवीं शताब्दीके एक सीलोनी ग्रन्थमें पाया जाता है। इसलिए वह भी विश्वसनीय नहीं हो सकता। प्रोफेसर कीथने * यह ि द्ध किया है कि 'जानकीहरण' का लेखक कुमारदास सिंहलद्वीपका राजा न था और ईस्वी सन् ५१७–५२६ के लगभग उसका शासनकाल भी नहीं ठहरता। बल्कि वह ईसवी सन् ७००–७५० के लगभग का कवि था। पहले प्रकरणमें अनेक प्रमाण देकर यह सिद्ध किया जा चुका है कि कालिदास लगभग चौथी शताब्दीमें हुए थे। इससे यह मालूम हो जायगा कि मनगढ़न्त आख्यायिकायें कहाँ तक सत्य हैं।

विश्वास–योग्य परम्परागत आख्यायिकाओंके न होनेसे हमें कविके समस्त ग्रन्थोकी आलोचना करके उसके चरित्रके सम्बन्धका ज्ञान कण कणके रूपमें संचित करना पड़ता है। यह बात अब सर्वमान्य हो चुकी है कि प्रत्येक ग्रन्थ-कारका मत, विद्वत्ता और स्वभाव उसके ग्रन्थोंमें प्रतिबिंबित होते हैं। शेक्सपीयर सदृश जिन ग्रन्थकारोंके चरित्रके बारेमें विश्वसनीय जानकारी नहीं प्राप्त होती उनके ग्रन्थोंमें विविध उल्लेखोंसे चरित्रसम्बन्धी अनुमान निकालनेकी पद्धति पाश्चात्य समीक्षकोंकी है। उसीके अनुसार कालिदास-चरित्रपर प्रकाश डालनेका प्रयत्न नीचे किया गया है।

कालिदासने ब्राह्मण कुलमें जन्म लिया था, इसमें सन्देह नहीं। गुप्त कालमें जब हिंदू धर्म और संस्कृत विद्याका पुनरुज्जीवन हुआ तब क्षत्रिय वैश्यादि इतर जातिके लोग भी संस्कृत विद्यामें पारंगत होते थे, यह समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त, हरि-षेण आदिके कवित्व-नैपुण्यके विषयमें जो उल्लेख उत्कीर्ण लेखोंमें प्राप्त होते हैं उनसे सिद्ध होता है। तथापि कालिदासके बहुतसे ग्रन्थोंमें ऋषियोंके, विद्वान् ब्राह्मणोंके और यज्ञकर्ता यजमानोंके शब्दचित्र प्रेमसे अंकित दिखाई देते हैं और शाकुन्तलमें उन्होंने वैदिक छन्दमें स्वयंरचित श्लोक दिया है। इससे उनकी ब्राह्मण जातिके विषयमें सन्देह नहीं रह जाता। वे मंदसोरके निवासी थे, ऐसी कल्पना करके म. म. हरप्रसाद शास्त्रीने उन्हें दसोरा ब्राह्मण बतलाया है। किन्तु वह मान्य नहीं हो सकता। क्योंकि मन्दसौरकी अपेक्षा उज्जैनके साथ उनका अधिक संबंध दिखता है, यह हम ऊपर कह चुके हैं।

प्राचीन कालमें विविध विद्याओंके अध्ययनके लिये भारतमें अनेक जगह विद्यापीठ थे–पंजाबमें तक्षशिला, मगधमें नालन्दा, सौराष्ट्र में वलभी, मालवामें उज्जैन। इन स्थलोंके विद्यापीठोंके सुन्दर वर्णन प्राचीन पाली वाङमयमें और

---

* Keith, The Date of Kumaradasa, J. R. A. S., 1901, pp. 578–582.

चीनी यात्रियोंके प्रवासवर्णनमें मिलते हैं। इनके अतिरिक्त जगह जगह विद्वान् ब्राह्मणोंद्वारा स्थापित गुरुकुल थे। उनमें वेदों, व्याकरण, ज्योतिष आदि शास्त्रों, और न्यायमीमांसादि दर्शनोंका केवल अध्ययन ही नहीं होता था, बल्कि सुधामधुर काव्योंके निर्माणके लिये भी प्रोत्साहन मिलता था। बाणके 'हर्षचरित' में इसका विशद वर्णन आया है। कवि बाण कालिदाससे दो सौ वर्ष बाद हुआ था। तो भी बाणने जो तत्कालीन परिस्थितिका वर्णन किया है उससे यह पद्धति बहुत प्राचीन कालसे आई हुई मालूम होती है। ऐसा ज्ञात होता है कि कालिदासकी शिक्षा भी ऐसे ही किसी गुरुकुलमें हुई होगी। 'रघुवंश' के प्रथम सर्गमें महर्षि वशिष्ठके आश्रमका वर्णन बहुत सुन्दर रीतिसे किया गया है। राजा दिलीप अपनी धर्मपत्नीसहित सायंकालके समय आश्रममें पहुँचे। उस समय तपस्वीजन वनसे समिधा, दर्भ, पुष्प आदि लेकर आश्रमको लौट रहे थे। ऋषि-पत्नियाँ पर्णकुटीके सामने आश्रमके हरिणोंको दाना खिला रही थीं और हिरण भी उनके चारों ओर उछल कूद रहे थे। ऋषि-कन्यायें वृक्षोंके केदारोंमें पानी डाल कर शीघ्र ही दूर हो जाती थीं ताकि पक्षी निःशंक होकर पानी पी सकें। आँगनमें धानके ढेर लगे हुए थे और पास बैठी हुईं हिरनियाँ रोमन्थ कर रही थीं। सायंकाल यज्ञकर्ममें जो हविर्भाग अग्निमें हवन किया गया था उसकी सुगन्ध चारों ओर फैल रही थी, दिलीपने इस तरहका दृश्य आश्रममें देखा। तत्पश्चात् रात्रिमें राजा पर्णशालामें दर्भशय्यापर सोये और प्रातःकाल वशिष्ठ शिष्योंके वेदाध्ययनघोषसे जाग उठे। इसी काव्यके पाँचवे सर्गम वरतन्तु ऋषिके, 'शाकुंतल' में कण्व और मारीचके, तथा 'विक्रमोर्वशीय' में च्यवनके आश्रमोंका जो मनोहर वर्णन आया है उससे मालूम होता है कि तत्कालीन आश्रमोंकी व्यवस्था, नियम तथा अध्ययनक्रमसे कालिदास भलीभाँति परिचित थे।

कालिदासने एक स्थल पर कहा है कि ऐसे गुरुकुलोंमें चौदह विद्याओंका अभ्यास कराया जाता था। याज्ञवल्क्य स्मृतिमें उन विद्याओंके नाम इस प्रकार दिये गये हैं—

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश॥

'चार वेद, शिक्षा, व्याकरण आदि छः अंग, पुराण, न्याय, मीमांसा तथा धर्मशास्त्र, ये मिलकर चौदह विद्यायें हैं, और ये ही धर्मके मूलभूत है।' कवि राजशेखरने अपनी 'काव्यमीमांसा '(अ. ८) में प्राचीन आचार्योंके मतका इस प्रकार उल्लेख किया है कि कविको श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण, दर्शनशास्त्र,

शैव-पांचरात्र आदि मत, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, और नाटयशास्त्र यह राजसिद्धांत-त्रयी, भिन्न भिन्न देशोंके लोक-व्यवहार, इसके सिवा धनुर्वेद, रत्नपरीक्षा, योगशास्त्र आदि विषयोंका अध्ययन करना चाहिए। कालिदासने इनमेंसे बहुतसे विषयोंका मार्मिक अध्ययन किया था, यह उनके काव्य-नाटकग्रन्थोंसे दिखलाया जा सकता है।

इसपर विचार करनेसे पहले एक दो बातें ध्यानमें रखनी आवश्यक हैं। उपर्युक्त विषयोंमेंसे कालिदासने किसी एकपर न तो कोई मौलिक ग्रन्थ ही रचा और न संस्कृत साहित्यका इतिहास लिख कर उन सभी विषयोंका उसमें विवेचन ही किया। इन विविध विषयोंका उल्लेख उन्होंने अपने कथानकके वर्णनमें, उपमा आदि अलंकारोंके प्रयोगमें अथवा पात्रोंकी सहज बातचीतमें बड़े स्वाभाविक ढंगसे किया है। कालिदास प्रौढ़ विद्वान् होते हुए भी अत्यन्त नम्र थे, इसलिए उन्होंने किसी भी स्थलपर अपना पाण्डित्य प्रकट करनेकी चेष्टा नहीं की। तो भी उनकी ग्रन्थ-सामग्री विविध विषयोंसे भरी हुई है और उसमें अनेक विषयोंके उल्लेख कहीं कम और कहीं अधिक मात्रामें पाये जाते हैं, जिससे उनके ज्ञान-गाम्भीर्यका पता लगता है।

यदि कालिदासकी शिक्षा किसी गुरुकुलमें हुई होगी तो उन्होंने एक या अनेक वेदोंका अध्ययन अवश्य किया होगा। ऋग्वेद तथा उसके उदात्त आदि स्वरोंका उल्लेख 'कुमारसम्भव' (२.१२) और –'रघुवंश' (१५.७६) में पाया जाता है। यजुर्वेदके अश्वमेध-यज्ञका 'मालविकाग्निमित्र' में और राज्यसंरक्षणार्थ उपयोगमें आनेवाले अथर्ववेदके मन्त्रोंका उल्लेख 'रघुवंश' में मिलता है। कालिदासको अपने 'विक्रमोर्वशीय' नाटकका संविधानक ऋग्वेद (१०, ९५) और शतपथ ब्राह्मण (५,१–२) की कथासे सूझा होगा। उनकी रची हुई कुछ उपमाओंसे उनका 'ब्राह्मणग्रन्थों' से परिचय अच्छी तरह सिद्ध होता है। राजा दिलीपकी रानी सुद-क्षिणा यज्ञपत्नी दक्षिणाके समान थी (रघु. १, ३१) यह कल्पना, मालूम होता है, उनको 'यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसः' इस ब्राह्मणवाक्यसे ही सूझी होगी। 'परमेश्वरने जलमें अपना वीर्य डाला जिससे यह चराचर सृष्टि पैदा हुई' 'और 'सृष्टिनिर्माणके लिये भगवान्ने स्त्री-पुरुषका रूप धारण किया,' इस तरहकी कल्प-नायें उपनिषद् तथा मनुस्मृतिसे लेकर कविने 'कुमारसम्भव' में रक्खी हैं। फिर भी कविकी मनोवृत्ति कर्मकाण्डकी अपेक्षा अध्यात्मविद्याकी तरफ अधिक दीखती है। 'मालविकाग्निमित्र' में उन्होंने एक जगह कहा है कि तीनों वेदोंकी शोभा उपनिषदोंकी अध्यात्मविद्यासे होती है। 'कुमारसम्भव' में ब्रह्मा और शिवकी

तथा 'रघुवंश' में विष्णुकी स्तुति उनके उपनिषदोंके अध्ययनसे निश्चित हुए 'एकेश्वरमत' की निदर्शक है। 'द्रवः संघातकठिनः स्थूलः सूक्ष्मो लघुर्गुरुः। व्यक्तो व्यक्तेतरश्चासि' इत्यादि परस्परविरोधी विशेषणोंसे की हुई ब्रह्माकी स्तुति पढ़ते समय 'अस्थूलमनणु, अ ह्रस्वमदीर्घम्' इत्यादि उपनिषदोंके वाक्योंकी याद आती है। उपनिषदोंके परम तत्त्व ब्राह्मका भी उल्लेख 'कुमारसम्भव' (३,१५) में. आया है। मालूम होता है कि कालिदासने भगवद्गीताका अध्ययन बहुत अच्छे ढंगसे किया होगा, क्योंकि उसमें आई हुई अक्षर, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ आदि संज्ञायें तथा समाधिमें चित्तको लय करनेवाला योगी वायुहीन स्थलमें स्थित दीपकके समान रहता है, ये उपमाएँ और स्थावर सृष्टिमें हिमालय परमेश्वरकी विभूति है, यह कल्पना इन सभीका उपयोग कविने 'कुमारसम्भव' * में किया है।

इसके सिवा उन्होंने भारतीय दर्शनशास्त्रका और उसकी भिन्न भिन्न शाखाओंका अध्ययन किया था। सारे जगत्में एक ही तत्त्व भरा है, ब्रह्मा, विष्णु और महेश उसी तत्त्वके भिन्न भिन्न रूप हैं, यह वेदान्तशास्त्रकी कल्पना प्रायः उनके सभी ग्रन्थोंमें पाई जाती है। पुरुष (आत्मा) उदासीन है, सृष्टिमें चारों ओर जो प्रवृत्ति दिखाई देती है वह प्रकृतिकी ही है, इस प्रकारका सांख्यसिद्धान्त 'कुमारसंभव' में (२,१३) उपलब्ध है, परन्तु द्वैतवादी सांख्योंका यह मत मान्य न होनेके कारण कविने प्रकृति और पुरुष इन दोनों तत्त्वोंको परमेश्वररूप ही माना है। योगशास्त्रसे कालिदासका अच्छा परिचय था। 'कुमारसम्भव' के तृतीय सर्गमें ध्यानस्थित शिवका वर्णन कविने तीन श्लोकोंमें बड़ी सुन्दरता और विस्तारके साथ किया है और आगेके एक श्लोकमें (३, ५८) उन्होंने 'योगी योगसे हृदयमें परमेश्वरका साक्षात्कार कर सकते हैं,' ऐसा सूचित किया है। 'पर्यङ्कबन्ध' (कुमार. ३, ४५) 'वीरासन' (रघु. १३, ५२) इत्यादि योगासनोंका भी कविने कई स्थानोंपर निर्देश किया है। यद्यपि न्याय और वैशेषिक दर्शनकी पारिभाषिक संज्ञाओंका उपयोग करनेका कविको प्रसङ्ग नहीं मिला तो भी यह निःसंकोच रूपसे कहा जा सकता है कि इन शास्त्रोंपर भी कविका पूरा अधिकार था, क्योंकि उसने 'रघुवंश' में एक स्थलपर (१३,१) शब्दको आकाशका गुण बतलाकर वैशेषिक मतका उल्लेख किया है। 'कुमारसंभव' में शिव-पार्वती और 'रघुवंश' में अज-इन्दुमतीके विवाहका वर्णन गृह्यसूत्रोंके आधारपर है। विवाहके उपरान्त पति-पत्नीको कमसे कम तीन रात तक ब्रह्मचर्यका पालन तथा भूमिपर शयन

---

* कुमार. ३, ५०; ६, ७७; ३, ४८ इत्यादि।

करना चाहिए, इस गृह्यसूत्रके नियमका पालन भगवान् शंकरजीने किया था ऐसा वर्णन 'कुमारसम्भव' (७, ८४) में आया है। मनुस्मृतिमें जो नियम हैं उनके अनुसार राजा दिलीपकी प्रजा वर्ताव करती थी। (रघु. १, १७) धर्मशास्त्रोंके नियमके अनुसार निःसन्तान मनुष्यकी सम्पत्ति राजाके कोशमें जाती है (शाकुंतल ६)। इन विधानोंसे यह सिद्ध होता है कि कालिदासने मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रोंका सम्यक् अध्ययन किया था। इसके अतिरिक्त उन्हें व्याकरण, अर्थशास्त्र, और कामशास्त्रका भी अच्छा अभ्यास था। 'कुमारसम्भव'में 'पुराणस्य कवेस्तस्य' (२, १७) इस श्लोकमें 'चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः' इस शब्दका प्रयोग उन्होंने पातञ्जल महाभाष्यसे लिया है। कालिदासने स्थान स्थान पर उमा, रघु, अज, चन्द्र, तपन, शतक्रतु इत्यादि नामोंकी व्यत्पत्ति दी है और सुन्दर व्याकरणविषयक कुछ उपमाओंकी योजना की है, इससे उनके व्याकरणज्ञानका परिचय मिलता है। हम यह पहले ही कह चुके हैं कि राजा विक्रमादित्यने कालिदासको अपना राजदूत बनाकर कुन्तलदेशकी सभामें भेजा था। इससे प्रतीत होता है कि कालिदास राजनीतिशास्त्रविशारद थे। उनके ग्रन्थोंसे भी यही बात सिद्ध होती है। 'मालविकाग्निमित्र' में 'तत्काल राज्यारूढ़ हुए शत्रुका नाश करना बहुत आसान है' इस संबंधमें तंत्रकारका वचन उन्होंने उद्धृत किया है। 'कुमारसंभव' में (३,६) शुक्रनीतिका स्पष्ट उल्लेख किया है। सप्तांग, यातव्य, प्रकृति, मूल, प्रत्यन्त, पार्ष्णि इत्यादि अर्थशास्त्रमें व्यवहृत होनेवाली अनेक पारिभाषिक संज्ञायें स्थान स्थानपर प्रयुक्त की गई हैं। 'रघु धर्मविजयी था', 'सुह्मदेशके लोगोंने वैतसी वृत्तिका अवलंबन करके अपने प्राण वचाये', 'विदर्भका राजा अग्निमित्रका प्रकृत्यमित्र (स्वभावशत्रु) था' इत्यादि विधानोंसे कालिदासका अर्थशास्त्रसंबंधी ज्ञान स्पष्ट होता है। दिन और रातके भिन्न भिन्न विभागमें राजाको किस प्रकार अपनी दिनचर्या रखनी चाहिए, इसके बारेमें अर्थशास्त्रकारोंने कुछ नियम निर्माण किये हैं, उनके अनुसार राजा अतिथि चलता था ऐसा वर्णन 'रघुवंश' में आया है। अर्थशास्त्रके नियमानुसार अग्निमित्र, पुरूरवा और दुष्यन्तकी अमात्य-परिषद् थी और उनकी सलाहके अनुसार राजा लोग राज्यका संचालन करते थे। पुरूरवाकी राजधानीमें राज्यकी व्यवस्था नगराध्यक्ष करता था, ऐसा कालिदासने वर्णन किया है। उनका राजनैतिक ध्येय बहुत ऊँचा था। यह दुष्यन्त, रघु, दिलीप आदि राजर्षियोंके उदात्त चरित्रसे विदित होता है। इसका विस्तृत विवेचन एक स्वतंत्र प्रकरणमें करना उचित होगा।

अर्थशास्त्रकी तरह कामशास्त्रका भी कविने सूक्ष्म अध्ययन किया था। पहले

प्रकरणमें बतलाया जा चुका है कि कण्व मुनीने शकुन्तलाको जो उपदेश दिया उसकी अधिकांश बातें कालिदासने वात्स्यायनके 'कामसूत्र' से ली हैं। किंबहुना 'शाकुन्तल' नाटकके प्रथम अङ्कमें दुष्यन्त और शकुन्तलाकी सखियोंमें बातचीतका रमणीय प्रसंङ्ग वात्स्यायनके 'कामसूत्र' के 'कन्यासंप्रयुक्तक' नामक अधिकरणके आधारपर कविको सूझा होगा। वात्स्यायनने उस अधिकरणमें बतलाया है कि लज्जापरवश युवतीको अपने प्रियतमसे किस तरह बोलना चाहिए (कामसूत्र, पृ. २०३–५)। 'उसको चाहिए कि अपनी सखियोंके द्वारा प्रियसे संभाषण शुरू करे। बातचीत करते समय सिर झुकाकर स्मित हास्य करे। सखीके व्यंग्य करनेपर उससे नाराज हो जावे। सखी जान बूझकर कहे कि नायिकाने मुझसे यह कहा है कि, तो नायिका उस बातको अस्वीकार करे। प्रियतम द्वारा उत्तरकी याचना होनेपर भी मुँहसे एक शब्द भी न निकाले, अगर कुछ शब्द निकले भी तो मैं कुछ नहीं जानती इस अभिप्रायसे वे अस्पष्ट रहें। प्रियतमको देखकर नेत्रकटाक्ष फेंके तथा स्मित हास्य करे।' कालिदासने उस अङ्कमें 'कामसूत्र' की सूचनाओंका उपयोग बहुत ही सुन्दर ढंङ्गसे किया है। पार्वतीका पाणिग्रहण करते समय शङ्करका हाथ पसीनेसे तर हो गया और पार्वतीका शरीर पुलकित हो गया, ऐसा वर्णन कालिदासने किया है। यह वर्णन कामसूत्रके प्रथम संगमके वर्णनानुसार नहीं है। मालूम होता है विस्मृतिके कारण कविसे गलती हो गई होगी। भूल ध्यानमें आते ही 'कामसूत्र' के अनुसार उन्होंने रघुवंशमें अज, इन्दुमतीकी अवस्थाका वर्णन किया है। 'कामसूत्र' में नगरवासी विलासी तथा दाक्षिण्यसम्पन्न नागरकोंका सविस्तर वर्णन है, कविने उसीको लक्ष्य करके 'साधु आर्य! नागरकोऽसि' 'अन्यसंक्रान्तप्रेमाणो नागरका अधिकं दक्षिणा भवन्ति।' इस तरह 'विक्रमोर्वशीय' में तथा 'नागरकवृत्त्या सान्त्वयैनाम्' इस तरह 'शाकुंतल' में कहा है। अग्निमित्रके प्रेमसम्बन्धमें सहायता करनेवाले विदूषकको रानी इरावती 'कामतन्त्रसचिव' की उपाधि देती है। इन सब बातोंसे यह सिद्ध होता है कि कविको कामशास्त्रका अच्छा ज्ञान था।

यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि शाकुन्तल आदि उत्कृष्ट नाटक निर्माण करनेवाले कविको 'नाटचशास्त्र' भी अच्छी तरह अवगत था। नाटचशास्त्रकार भरत मुनिने अष्टरसात्मक 'लक्ष्मीस्वयंवर' नामक नाटकका प्रयोग अप्सराओंद्वारा स्वर्गमें कराया था। उस समय उर्वशीने बातचीत करते समय एक अक्षम्य अपराध कर डाला जिसके लिए मुनिने उसे शाप दिया था। यह प्रसङ्ग 'विक्रमोर्वशीय' (अङ्क ३) में आया है। उस स्थलपर कविने संधि, वृत्ति, रस, राग

आदि पारिभाषिक संज्ञाओंका उपयोग किया है। 'मालविकाग्निमित्र' के प्रथम अङ्कसे यह पता चलता है कि नाटचशास्त्रकी तरह साभिनय गानयुक्त नृत्य भी कालिदासको अच्छी तरह अवगत था। इसी प्रसंगमें कविने छलिक, भाविक, पंचांगाभिनय आदि संज्ञाओंका उपयोग किया है।

कालिदासने ज्योतिष, आयुर्वेद तथा धनुर्वेदका भी अच्छा अभ्यास किया था। जामित्र, उच्चसंस्थ (कुमार. ७–१; रघु. ३, १३) इत्यादि संज्ञाओंसे उनका ग्रहज्योतिषसम्बन्धी ज्ञान स्पष्ट होता है। 'तारकासुर, धूमकेतूकी तरह, लोगोंका नाश करनेके लिए उत्पन्न हुआ' (कुमार. २, ३२), 'शत्रुपर चढ़ाई करनेवाला राजा शुक्रयुक्त दिशाको वर्ज्य करता है, उसी तरह नन्दीकी आँखें बचाकर मदनने शंकरके तपोवनमें आकर प्रवेश किया' (कुमार ३, ४३), 'चन्द्रमाका उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रसे जब योग होता है तब मैत्र मुहूर्त्त होता है, उस समय सुहागिनी तथा पुत्रवती युवतियोंने पार्वतीके बाल गूँथे' (कुमार. ७, ६) 'मंगल वक्रगतिसे पूर्वराशिपर आता है उसी प्रकार शायद रानी इरावती लौट आयेगी' (फलज्योतिष मालविका. ३), इत्यादि उल्लेखोंसे उनके ज्ञानका पता लगता है। रातके नीरव समयमें चन्द्र तथा नक्षत्रोंको देखनेका उन्हें शौक रहा होगा, नहीं तो 'एष चित्रलेखाद्वितीयामुर्वशीं गृहीत्वा विशाखासमीपगत इव चन्द्र उपस्थितो राजर्षिः' (विक्रमो. १), 'किमत्र चित्रं यदि विशाखे शशाङ्कलेखामनुवर्तेते' (शाकुं. ३), इसी तरहकी सुन्दर उपमायें तथा सुभाषित उनको न सूझते।' 'वैद्य कहते हैं कि भोजनका समय टल जानेसे दोष उत्पन्न होता है' (माल. १), 'मित्र! मालविका तेरे सामने ऐसी दीखती है जैसे मद्यपानसे ऊबे हुए मनुष्यके सामने मिश्री' (माल. ३), इस तरहके राजाके प्रति विदूषकके नर्मपरिहास वचनोंमें, तथा 'दुष्ट मनुष्यका, चाहे वह उसका सगा और प्यारा ही क्यों न हो, साँपसे डसी हुई ऊँगलीके समान राजा दिलीप त्याग कर देता था।' (रघु. १, २८), इस तरहकी उपमाओंसे उनका आयुर्वेदीय ज्ञान विशद होता है। 'आलीढ' 'वाजिनीराजना' इत्यादि संज्ञाओंसे तथा 'राजाको जंगली हाथी नहीं मारना चाहिए' इस तरह उल्लिखित नियमोंसे कविका धनुर्वेदपरिशीलन व्यक्त होता है।

कालिदासके ग्रन्थोंसे यह दिखाया जा सकता है कि व्याकरण, अर्थशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र आदि तर्ककर्कश बुद्धिप्रधान शास्त्रोंकी तरह संगीत, चित्रकला, प्रसाधनकला, इत्यादि प्रयोगसाध्य ललितकलाओंका भी कालिदासको अच्छा अभ्यास था। वाद्योंके चार प्रकार माने जाते हैं—वीणा आदि तन्तुवाद्य, मृदंग आदि चर्मवाद्य, मुरली आदि छिद्रयुक्त वाद्य, झाँझ, मजीरा आदि घनवाद्य।

इनमेंसे अधिकांशका वर्णन कालिदासके ग्रन्थोंमें है। नारदमुनि गोकर्ण क्षेत्रस्थ शंकरके दर्शनके लिये जा रहे थे, उस समय उनकी वीणामें लगी हुई पुष्पमाला इन्दुमतीके वक्षस्थलपर गिरी जिससे उसकी मृत्यु हो गई। यह घटना 'रघुवंश' में है। 'कुमारसंभव'में एक स्थलपर कविने वर्णन किया है – प्रातःकाल स्वरोंके आरोह अवरोहका अनुसरणकर तारोंपर हाथ फेरनेवाले किन्नरोंके मंगलगीतोंसे शंकर जागृत हुए। यहाँ सितार सरीखा तन्तुवाद्य अभिप्रेत है। मेघदूतमें भी यक्ष-स्त्री सुमधुर कण्ठसे अपने प्रियतमके गुणवर्णनसंबंधी गीतको गाते समय आँसुओंसे वीणाके तार भिगोती जाती थी और साफ करती जाती थी, ऐसा वर्णन आया है। मालूम होता है कि कविको सब वाद्योंमें मृदंग बहुत अच्छा लगता था। उनके कई ग्रन्थोंमें मृदंगवादनका वर्णन आया है। 'मालविकाग्निमित्र'में एक स्थलपर मृदंग बजनेसे नृत्य करनेका समय निकट आ पहुँचा है – इस बातका उल्लेख है। कविने 'मेघदूत'में अलकानगरीमें संगीतके समय मृदंग बजते थे – ऐसा वर्णन किया है। 'रघुवंश' में राजा अग्निवर्ण नर्तकीके नृत्य करते समय मृदंग वजाकर ताल देते थे। अनेक स्थानों पर ऐसा वर्णन है कि मृदंगकी ध्वनिको मेघका गर्जन समझकर मयूर नृत्य करने लगे। इसके अतिरिक्त रघुके जन्म, इन्दुमतीके स्वयंवर और अतिथि राजाके राज्यारोहण आदि अवसरोंपर तूर्य, शहनाई आदि वाद्योंका, और युद्धवर्णनमें शंख बजानेका उल्लेख है। कालिदासने एक उपमामें बतलाया है कि सुस्वर वादनसे मन प्रसन्न होता है और वेसुर बजनेसे श्रोता ऊब उठते हैं, इससे उनकी वादनाभिरुचि प्रगट होती है।

कालिदासके ग्रन्थोंमें गायनका भी वर्णन पाया जाता है। 'मालविकाग्निमित्र'के प्रथम अंकमें मालविका राजाके प्रति अपना प्रेम साभिनय गीतसे व्यक्त करती है। 'शाकुन्तल' की प्रस्तावनामें विद्वत्परिषद्के मनोरंजनार्थ नटी ग्रीष्म-वर्णनात्मक गीत गाती है, जिसको सुनकर प्रेक्षक तल्लीन होकर चित्रकी भाँति लिखे हुए-से रह जाते है। पंचम अंकमें उपेक्षिता हंसपदिका रानी रागपूर्ण गीत गाकर अप्रत्यक्ष रीतिसे राजाकी भर्त्सना करती है। 'कुमारसम्भव'में मदनदाहके उपरान्त निराश हुई पार्वतीके गद्‌गद मधुर कण्ठसे गाया हुआ त्रिपुर विजय-गीत सुनकर किन्नरियाँ आँसू वहाने लगती हैं। 'रघुवंश'में कुश और लवके सुमधुर कण्ठसे गीतमनोहर रामचरित सुनकर सारी सभा शोकाकुल हो उठी थी। इन प्रसंगोंमें कविने बतलाया है कि किस तरह सुरीले गानका प्रभाव श्रोताओंके मनपर पड़ता है। मूर्छना, ध्वनि, वर्णपरिचय, षड्ज, मध्यम इत्यादि गायनवादनकी पारिभाषिक संज्ञायें उनके ग्रन्थोंमें आई हैं। इससे उनके संगीतज्ञ होनेका पता चलता है।

नृत्य, गीत, वाद्य आदि कलाओंकी तरह कालिदासको चित्रकलाकाभी अच्छा ज्ञान था। उन्होंने अपने काव्योंमें कपड़ों तथा दीवालोंपर अंकित चित्र, स्तम्भोंपर उत्कीर्ण आकृति और देवमूर्तियोंका उल्लेख किया है। उनके ग्रन्थोंमें दुष्यन्त, पुरूरवा, यक्ष, राजा अग्निवर्ण, यक्षपत्नी ये सब उत्तम चित्रकार दिखलाए गये हैं। 'मालविकाग्निमित्र' में धारिणी और 'शाकुन्तल' में शकुन्तलाकी सखियाँ चित्रकलाकी अनुरागिणी बतलाई गई हैं। उनके नाटकोंकी अनेक घटनायें चित्र-दर्शन अथवा चित्रलेखनपर निर्मित हुई हैं। 'मालविकाग्निमित्र' में मालविकाका प्रथमदर्शन एक चित्रमें धारिणीकी दासीके रूपमें कराया जाता है और राजा उसके सौंदर्यपर मोहित होता है। चित्रमें इरावतीकी ओर ध्यानसे देखते हुए राजाको देखकर मालविकाके हृदयमें ईर्ष्या उत्पन्न होती है। 'मेघदूत' में यक्ष विरहदुःखसहनके लिए अपनी प्रणयकुपिता प्रियतमाका चित्र गेरूसे शिलापर खींचकर जब उसको प्रणाम करना चाहता है, तब उसकी आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लग जाती है और उसका प्रयत्न विफल हो जाता है। 'शाकुन्तल'में शकुन्तलाका परित्याग कर देनेपर पश्चात्ताप-पीड़ित राजा कण्वाश्रममें शकुन्तलाके प्रथमदर्शनका चित्र खींचता है। इस तरहके प्रसंगोंसे कथानकके विकासके लिए कालिदासने अपने ग्रन्थोंमें चित्रकलाका मार्मिक रीतिसे उपयोग किया है। उपर्युक्त घटनाओंमें दुष्यन्त राजा द्वारा लिखित शकुन्तलाका चित्र अधूरा ही रह गया था उसे पूरा करनेके लिए जिन जिन बातोंकी आवश्यकता थी उन सबको राजाने निम्नलिखित श्लोकमें वर्णन किया है। उससे मालूम होता है कि सुन्दर चित्रके लिए पार्श्वभूमिकी कितनी आवश्यकता होती है, इसे कवि उत्कृष्ट रीतिसे जानता था।

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी
पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः।
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः
शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम्॥

शाकुन्तल, ६, १७.

[इस चित्रमें अब भी मालिनी नदी, उसके किनारे पर बैठे हुए हसोंकी जोड़ियाँ, पास ही हिमालयकी उपत्यका, जहाँ छोटे छोटे हरिण बैठे हुए हैं, उसी तरह एक बड़ा वृक्ष, जिसकी शाखाओंपर गेरुए वस्त्र सूखनेके लिए डाले गये हैं और उसकी छायामें कृष्णसार मृगके सींगपर अपना वाम नेत्र खुजाती हुई हरिणी, इतनी बातें मुझे खींचनी हैं।]

राजाका खींचा हुआ चित्र इतना हूबहू था कि शकुन्तलाकी माताकी सहेलीको, जो वहाँ खड़ी हुई थी, चित्रको देखकर एक क्षणके लिए ऐसा मालूम हुआ मानो शकुन्तला ही सामने खड़ी है। इसके बाद राजाने वर्णन किया कि शकुन्तलाके शरीरपर कैसे कैसे पुष्पालंकार होने चाहिए। पार्श्वभूमि, भावनाका आविष्कार, समुचित अलंकार आदि विषयोंका सूक्ष्म रीतिसे वर्णन करनेवाले कविको स्वयं ही कुशल चित्रकार होना चाहिए। 'कुमारसम्भव' यौवनसे भरी हुई पार्वतीके अलग अंग स्पष्ट दिखाई देने लगे, यह कल्पना व्यक्त करनेके लिये कविने चित्रकारके द्वारा धीरे धीरे स्पष्ट होने वाले चित्रकी सुन्दर उपमा दी है। चित्रकार पहिले सूक्ष्म रेखाओंसे चित्रकी बाह्यरेखायें (outlines) खींचता है फिर उसमें तूलिकासे रंग भर देता है। सिर्फ बाह्यरेखा खींचनेसे चित्रके सब भाग अलग स्पष्ट हो जाते हैं परन्तु उसका स्पष्ट रूप तब ही व्यक्त होता है जब उसमें रंग भरा दिया जाता है। 'तूलिकासे जैसे चित्र खिल उठता है' यह उपमा कविको उसके स्वयं चित्रकार हुए बिना कभी न सूझती।'* श्रीयुत ओगलेका यह मत सबको मान्य होना चाहिए। कालिदासके समयमें अजन्ताकी गुफाओंमें रंगीन चित्र खींचे गए थे इसका प्रमाण मिलता है। इससे तत्कालीन चित्रकलाकी श्रेष्ठता सिद्ध होती है।

कालिदासको स्वदेशके इतिहासका तथा भूगोलका सूक्ष्म ज्ञान था। 'मालविकाग्निमित्र' नाटकमें वर्णित घटना कई सौ वर्ष पहलेकी थी, फिर भी कालिदासको तत्कालीन परिस्थितिका ठीक ठीक पता था, यह हालमें प्रकट हुई बातोंसे सिद्ध होता है। कुछ समय पूर्व डॉ. श्री. व्यं. केतकरने यह कहा था कि 'कालिदासके मालविकाग्निमित्रमें पुष्यमित्रको सेनापतिके पदपर नियुक्त बतलाया गया है और यह नहीं कहा गया कि उसने अपने स्वामीका वध करके राजगद्दी छीन ली थी। लेकिन साथ ही उसके अश्वमेध यज्ञ करनेका भी वर्णन किया है। इससे मालूम होता है कि या तो कालिदासको राज्यतंत्रका कुछ अनुभव नहीं था या पुष्यमित्रको इतना उत्कृष्ट दिखानेकी इच्छासे उसने अपनी विवेकबुद्धिको तिलाञ्जलि दे दी थी। इसके अतिरिक्त पुष्यमित्रने जो यज्ञ किया था वह अश्वमेघ ही था, इसके सम्बन्धमें कोई प्रमाण नहीं।" कालिदासको जो ऐतिहासिक साधन उपलब्ध थे वे आजकल उपलब्ध न होनेसे उपर्युक्त बातोंका खण्डन करना बहुत कठिन है। फिर भी सौभाग्यसे तत्कालीन शिलालेखोंमें विश्वास-

---

* देखो—के. ल. ओगले: 'कालिदास आणि चित्रकला' विविधज्ञानविस्तार, पु. ५८, पृ. ३७५.

योग्य प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। इससे यह विदित होता है कि पुष्यमित्रने एक नहीं दो अश्वमेध यज्ञ किये थे*। राजसिंहासनपर बैठने के बाद भी उसने अपनी सेनापतिकी पदवी कायम रक्खी थी। इसलिये कालिदासके मत्थे उपर्युक्त दोनों अपराध नहीं मढ़े जा सकते तथा यह भी सिद्ध होता है कि उनका ऐतिहासिक ज्ञान अचूक था।

कालिदासके ग्रन्थोंमें अनेक देशोंका, पर्वतोंका, नदियोंका तथा नगरोंका वर्णन है। उसमें कहीं कोई भूल नहीं पाई जाती। 'कुमारसंभव' के आरम्भमें तथा 'मेघदूत' में उन्होंने हिमालयका विस्तृत तथा यथार्थ वर्णन किया है। भारवि जैसे अन्य कवियोंने भी हिमालयका वर्णन किया है लेकिन उसमें वस्तुस्थितिकी अपेक्षा कल्पनापर ज्यादा जोर दिया गया है। यात्राके मिस हिमालयपर जानेवाले अथवा ग्रीष्म-कालमें जानेवाले लोगोंका कहना है कि वहाँके मेघोंका, रात्रिके समय प्रकाशित होनेवाली औषधि इत्यादिका वर्णन कविने वहुत सुन्दर ढंगसे किया है। वंक्षु अथवा सिन्धु नदीके किनारेपर केशरके वृक्ष होते हैं—यह किसी अन्य कविने वर्णन नहीं किया। वंगालमें शालि-धान्यका, दक्षिणमें ताम्रपर्णीके तीरपर मोतियोंके कारखाने आदिका जो वर्णन कविने किया है वह वस्तुस्थितिके अनुसार है। इससे सिद्ध होता है कि कालिदासने स्वयं दूर दूर प्रान्तोंका प्रवास और प्रकृति-निरीक्षण किया होगा अथवा चन्द्रगुप्तके कालमें कार्यवश दूसरे देशोंमें नियत किये हुए अधिकारियोंसे या भिन्न देशोंमें व्यापार करनेके लिये जानेवाले व्यापारियोंसे भी उनको ऐतिहासिक तथा भौगोलिक बातोंका पता लगा होगा।

यह वतलानेकी आवश्यकता नहीं कि कविने उपर्युक्त विषयोंके सिवा कोश, छन्द, तथा अलंकार आदि विषयोंके ग्रन्थोंका अच्छा अध्ययन किया था। कवि राजशेखरने काव्यरचना करनेवाले के लिए पहले पुरातन कवियोंके ग्रन्थोंका अभ्यास करनेकी आवश्यकता वतलाई है। कालिदासके ग्रन्थोंसे प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष प्रमाणों द्वारा यह कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने प्राचीन कालके व्यासवाल्मीकि-प्रणीत महाभारत-रामायणादि ग्रन्थ, कुछ पुराण, अश्वघोष आदि कवियोंके काव्य तथा भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि नाटककारोंके नाटकोंका गहन अध्ययन किया था। 'विक्रमोर्वशीय' (अंक ४) में 'राजा कालस्य कारणाम्' यह उक्ति★

* Ep. Ind., vol. xx, p. 54.

★ मुनयोऽपि व्याहरन्ति राजा कालस्य कारणमिति।

'रघुवंश' (२, ५३) में 'क्षतात्किल त्रायत इति क्षत्रियः' ऐसी क्षत्रिय शब्दकी व्युत्पत्ति, 'मालविकाग्निमित्र' में 'तिलक' पुष्पके नामका श्लेष आदि कल्पनायें उन्होंने महाभारतसे ली होंगी। रामायणवर्णित वर्षा और हेमन्त ऋतुकी छाप उनके 'ऋतुसंहार' पर पड़ी है। 'रघुवंश' में वर्णित राजाओंकी नामावली उन्होंने प्राचीन पुराण ग्रन्थोंसे ली होगी। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि उन्होंने अश्वघोषके काव्योंको अच्छी तरह पढ़ा होगा। अगले छठे परिच्छेदमें यह बतलाया जायगा कि भासादि नाटककारोंके नाटकोंसे उन्होंने कुछ कल्पनायें तथा घटनायें अपनाकर अपनी प्रतिभासे उन्हें रमणीय रूप दे दिया है।

मनुष्य कितनी ही प्रखर प्रतिभाका विद्वान् कलानिपुण और शास्त्रज्ञ क्यों न हो परन्तु जब तक उसका जीवन विशुद्ध न होगा तब तक उसके द्वारा उच्च कोटिका साहित्य सृजन नहीं हो सकता। 'जैसा कविका स्वभाव वैसा उसका काव्य, जैसा चित्रकार वैसा ही उसका चित्र'—यह एक सामान्य नियम है, ऐसा राजशेखरने जो कहा है वह सत्य है। (काव्यमीमांसा, अ. १०) दुर्भाग्यसे कालिदासके चरित्रकी विश्वसनीय बातें बहुत शीघ्र लुप्त हो गईं और उनका स्थान मनगढंत बातोंने ले लिया। इसीसे उनका चरित्र बिल्कुल विकृत रूपमें लोगोंके सामने आया। ऐसी दशामें राजशेखरके कथनानुसार हमें कविके चरित्रको उनके ग्रन्थोंसे परखना है।

कालिदासके समस्त ग्रन्थोंका सम्यक् निरीक्षण करनेसे मालूम होता है कि वह विलासी तथा विनोदी स्वभावके थे। उनके सभी ग्रन्थोंमें शृंगार रसकी प्रधानता है, जिसके कारण एक सुभाषितमें उनका वर्णन 'कविता देवीका विलास' कहकर किया गया है। उनके विनोदी स्वभावकी झलक उनके नाटकोंकी कुछ मनोरंजक घटनाओं तथा खासकर उनके विदूषक–पात्रनिर्माणमें व्यक्त होती है। कालिदास बहुत साफ दिलके थे। उन्होंने कहा है कि 'किसीके साथ सात कदम चलनेसे अथवा कुछ समय तक बातचीत करनेसे ही मित्रता हो जाती है।' (कुमार. ५, ३९; रघु. २, ५८)। 'पुरुषोंका स्त्रियोंके प्रति प्रेमभाव चंचल, लेकिन मित्रप्रेम चिरस्थायी होता है,' (कुमार. ४, २८)। इन उक्तियोंसे हम उनके मित्रप्रेमकी कल्पना कर सकते हैं। उनका हृदय अत्यन्त कोमल था। दिनमें सूर्यके प्रकाशसे निष्प्रभ पड़ी हुई चन्द्रकलाको देखकर उनको अत्यन्त दुःख होता था। (कुमार. ५, ४८)। समाजमें धीवर जैसे हलके दर्जेके लोगोंके चित्र भी उन्होंने बड़े ही मार्मिक ढंगसे खींचे हैं, इसमें उन लोगोंके प्रति भी कविकी सहानुभूति व्यक्त होती है। किसी भी व्यक्तिके स्वभावका मर्म निकाल लेनेमें

वे सिद्धहस्त थे, नहीं तो 'शाकुन्तल' में रंग बदलनेवाले पुलिस सिपाहीका हूबहू शब्दचित्र उनके हाथसे न बनता। 'स्त्रीपुमानित्यनास्थैषा वृत्तं हि महितं सताम्,' (कुमार. ६, १२) इस उक्तिसे मालूम होता है कि वह गुणोंका आदर करते थे न कि व्यक्तिका। उनका निरतिशय प्रेम केवल मनुष्योंपर ही नहीं था, बल्कि मृग, मयूर, आदि अन्य प्राणियोंपर भी था। उन्होंने 'शाकुन्तल' के चौथे अङ्कमें यह दिखाया है कि यदि हम उनसे प्रेम करेंगे तो वे भी हमें चाहेंगे। उनके निर्मित स्त्री – पात्र लतावृक्षोंपर अपनी संतानके समान प्रेम रखनेवाले हैं। 'मेघदूत' में तथा अन्य ग्रन्थोंमें उन्होंने अनेक वृक्ष, लता तथा पुष्पोंका मनोहर वर्णन किया है। इससे उनका निसर्ग-प्रेम तथा अपने निरीक्षणसे प्रकृतिका यथार्थ मर्म जानना सूचित होता है।

कालिदासके संबंधमें यह प्रवाद है कि उनका कौटुंबिक चरित्र निर्दोष नहीं था परन्तु उनके ग्रन्थोंमें इसके संबंधमें आधार नहीं मिलता। उन्होंने गृहस्थाश्रमकी 'सर्वोपकारक्षम' कहकर प्रशंसा की है। 'पतिपत्नीका प्रेम सत्य सनातन है, भगवान् शंकर जैसे असाधारण इन्द्रियनिग्रही योगीपर भी प्रेमने अपना प्रभाव जमाया फिर और सामान्य लोगोंकी क्या बात है' इस प्रकार उन्होंने 'कुमारसंभव' (६, ९५) में कहा है। उन्होंने अपने काव्योंमें स्त्रियोंके प्रति अत्यन्त आदरभाव प्रगट किया है। स्त्रियोंके बिना धार्मिक कृत्य बिल्कुल असम्भव है। (कुमार. ६, १३), विवाहसंबंध स्थापित करनेमें स्त्रियाँ बड़ी चतुर होती हैं। (कुमार. ६, ३२), पुरुष कन्याविवाहके सम्बन्धमें प्रायः स्त्रियोंकी सलाहके अनुसार चलते हैं। (कुमार. ६, ८५), इत्यादि उक्तियाँ 'कुमारसंभव' में हैं, जिनके द्वारा कविने यह सूचित किया है कि कौटुम्बिक जीवनको सुखमय बनानेके लिए पतिपत्नीको उचित है कि एक दूसरेकी इच्छा और मतका ख्याल करें। उनके सब स्त्री-पात्र प्रेमी, सुस्वभाव तथा ललितकलानिपुण हैं। 'रघुवंश' के अजविलापमें उन्होंने यह बतलाया है कि आदर्शपत्नी कैसी होनी चाहिए। उन्होंने 'रघुवंश' (८, ६७) में इन्दुमतीके वर्णनमें वह अजकी गृहस्वामिनी, कठिन समयपर सलाह देनेवाला मन्त्री, एकान्तमें प्रियसखी और ललितकलामें प्रियशिष्या जैसी थी, इस तरहका उल्लेख किया है। 'कुमारसंभव' में 'प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता' (५, १), 'स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि वेषः' (७, २२) इत्यादि उक्तियोंसे तथा 'मेघदूत' में विरहिणी यक्षपत्नीके वर्णनसे यह मालूम होता है कि पतिव्रता स्त्रियोंके विषयमें कालिदासके विचार कैसे थे। वेश्याके घरमें रातदिन पड़े रहनेवाले कविके हाथसे इन्दुमती, यक्षपत्नी, शकुन्तला तथा सीता जैसी स्वाभि-

मानिनी, सुशील, प्रेममूर्ति पतिव्रताओंके शब्दचित्र नहीं निकल सकते थे।

कालिदासका प्रेमी हृदय छोटे छोटे बच्चोंके सहवासमें प्रसन्न होता था (रघु. ३, २४)। उन्होंने एक जगह कहा है कि सन्तान उत्पन्न होनेसे दम्पतीका परस्पर प्रेम कम नहीं होता बल्कि बढ़ता ही है। 'रघुवंश' (१, ६९) में उन्होंने सन्तानकी प्रशंसा की है कि तपश्चर्या और दानसे मिलनेवाला पुण्य सिर्फ परलोकमें काम आता है परन्तु शुद्ध वंशकी सन्तान इह और परत्र दोनों लोकोंमें सुखकारी होती है। उनके काव्योंमें कई जगह छोटे छोटे बच्चोंका सुन्दर वर्णन पाया जाता है। छोटा-सा बालक रघु अपनी धायके कहे अनुसार प्रणाम करके अपने पिताके आनन्दको बढ़ाता था (रघु. ३, २५) इस श्लोकको स्वभावोक्ति अलंकारका उत्कृष्ट नमूना कहकर साहित्यदर्पणमें उद्धृत किया है। 'शाकुन्तल' (७, १७) में 'जिनके दाँतकी कली अभी निकली ही है और जो बिना कारण ही हँसने लगते हैं, जिनके बोल अस्पष्ट होते हुए भी मधुर लगते हैं, ऐसे बच्चोंको गोदमें लेकर उनके धूलिभरे अंगोंसे जो अपने वस्त्र मैले करते हैं वे ही धन्य हैं!' इस तरहका सुन्दर वर्णन है। उन्होंने अपने नाटकोंमें यह बतलाया है कि दुष्यन्त और पुरूरवा स्वयं अपने बालकोंको नहीं पहिचानते थे तो भी उनकी दृष्टि बच्चोंपर पड़ते ही उनका सन्तानस्नेह उमड़ पड़ा। इससे उन्होंने यह दर्शाया है कि मनुष्यके स्वभावमें अपत्य-प्रेम एक नैसर्गिक कोमल भावना है। मनुष्यके जीवनमें कई अत्यन्त करुणोत्पादक घटनायें होती हैं। पतिगृहमें भेजनेके लिए कन्याकी बिदाई भी वैसी ही घटनाओंमें शामिल है। इस अवसरपर उसके पिताके हृदयकी उथल पुथलका मर्मस्पर्शी शब्द-चित्र उन्होंने 'शाकुन्तल' के चौथे अङ्कमें अंकित किया है। कण्व जैसे स्नेहार्द्र पिताके शब्द-चित्र रँगनेवाले कालिदासको अपत्य-प्रेमका अनुभव न था ऐसा कौन सहृदय पाठक कहेगा?

कालिदासको द्वितीय चन्द्रगुप्त जैसे उदार सम्राट्का आश्रय था और उनके जीवनका उत्तरार्ध राजदरबारमें ही बीता था। सदा राजसभामें रहनेवाले कविकी दृष्टिसे वहाँके आचार विचार, चाल ढाल, राजाओंकी इच्छा-अनिच्छा, समयानुसार राजसेवकोंका आदर करके उनसे काम निकालना इत्यादि बातें चूकती नहीं। इस दृष्टिसे 'कुमारसंभव' के तीसरे सर्गमें इन्द्रकी सभाका वर्णन पढ़ने योग्य है। 'राजाओंका प्रेम अपने आश्रितोंपर मतलबके अनुसार कम ज्यादा होता रहता है' (कुमार. ३, १), 'होशियार आदमी मौकेसे अपने मालिकसे प्रार्थना कर काम निकाल लेता है' (कुमार. ७, ९३) इत्यादि उक्तियाँ कालिदासको अपने अनुभवसे या सूक्ष्म निरीक्षणसे सूझी होंगी। जब भगवान् शंकर विवाहके

लिए रवाना हुए तब उन्होंने अपने समीपस्थ गणोंके हाथकी तलवारोंमें अपना रूप देखा, सूर्यने उनके ऊपर छत्र रखा, ब्रह्मा और विष्णुने जयजयकार की। उसके बाद इन्द्र आदि देवताओंने दर्शनकी इच्छासे नन्दीको इशारा किया और वह उन लोगोंको शंकरके सामने ले गया, उन्होंने अत्यन्त नम्रतासे प्रणाम किया, शिवजीने सिर हिलाकर ब्रह्मदेवका, चार शब्दोंसे विष्णुका, स्मितहास्यसे इन्द्रका और नयनकटाक्षसे अन्य देवताओंका सन्मान किया-इस वर्णनमें राजदर्बारमें होने-वाले पौर्वापर्यक्रम और योग्यतानुसार प्राप्त होनेवाले सन्मानका अच्छा प्रदर्शन है। राजदर्बारमें रहनेके कारण कालिदासकी वाणीमें शिष्टता दिखाई देती है। 'विक्रमोर्वशीय' में उर्वशी जब स्वर्गको लौटना चाहती है तब वह राजासे चित्र-लेखा सखीके द्वारा विनती करती है कि 'महाराजकी आज्ञा हो तो अपनी प्रिय-सखीके समान आपकी कीर्तिको स्वर्गको ले जाऊँ'। 'शाकुन्तल' में प्रियंवदा दुष्यन्तसे कहती है 'महाराजके मधुर भाषणसे मुझे धैर्य हुआ है—इसलिए मैं आपसे पूछनेका साहस करती हूँ कि आपने किस राजर्षिका वंश अलङ्कृत किया है, किन देश-वासियोंको आपने अपनी विरह-व्यथासे पीड़ित किया है तथा किसलिए आपने अपने अत्यन्त कोमल शरीरको तपोवनके क्लेश पहुँचाये हैं?' इससे कविवरके राजसभोचित शिष्टाचार-ज्ञानका पता लगता है।

कालिदास महान् विद्वान् होते हुए भी अत्यन्त नम्रशील थे। 'मालविकाग्नि-मित्र' और 'विक्रमोर्वशीय' नाटक तथा 'मेघदूत' 'कुमारसम्भव' आदि काव्य लिख-नेके बाद किसी भी ग्रन्थकारको अपनी कृतिका अभिमान हो सकता है। उससे नीचे दर्जेकी ग्रन्थरचना करनेवाले पण्डितराज जगन्नाथकी दर्पोक्तियाँ काफी प्रसिद्ध हैं। परन्तु 'शाकुन्तल' जैसा अद्वितीय अनुपम नाटक, 'रघुवंश' समान विविध रसोंसे ओतप्रोत अनुपम महाकाव्य विद्वानोंके आगे प्रस्तुत करते समय कविने कितनी नम्रता दिखाई है! कालिदास नम्र होने पर भी राजदर्बारोंमें रहनेवाले तथा चापलूसी करनेवाले इतर पंडितोंकी तरह स्वाभिमान-शून्य नहीं थे, नहीं तो उनके मुखसे पहले कही हुई 'इह निवसति मेरुः' इत्यादि उक्ति कभी न निकलती और स्वाभिमानिनी शकुन्तला तथा सीताके शब्द-चित्र उतनी सुन्दरतासे उनकी कलमसे अंकित न होते। ऐसे महान् विद्वान्, कलाकार, प्रेमी, विनोदी, चतुर, एवं स्वाभिमानी नररत्नके चरित्रको मनगढंत कथाओंके आधारपर विपरीत रूप दिया जाना और परम्पराभिमानी लोगोंसे आजतक मान्य होना—यह केवल दैवका दुश्चेष्टित नहीं तो और क्या है!

कालिदासका रहन-सहन कैसा था तथा उनकी दिनचर्या किस प्रकारकी थी

यह जाननेके लिए विश्वासयोग्य प्रमाण नहीं मिलते। राजशेखरकी 'काव्यमीमांसा'में (अ. १०) इसका वर्णन है कि आदर्श कविका जीवन किस प्रकारका होना चाहिए, उसे काल्पनिक ही मान लिया जाय तो भी वह वास्तविकतासे बहुत दूर नहीं हो सकता। "कविको सदा पवित्र रहना चाहिए। वह पवित्रता तीन प्रकारकी है-वाणी, मन और शरीरकी। पहली दो पवित्रताएँ शास्त्रके पठनसे आती हैं। शारीरिक पवित्रतामें, पैरके नाख़ून निकालना, ताम्बूल खाना, शरीरमें सुगन्धि द्रव्योंका लेपन करना, उत्तम सादे वस्त्र पहिनना, सिरपर पुष्प धारण करना इत्यादि बातोंका अन्तर्भाव होता है। शुद्ध आचरण ही सरस्वतीका आकर्षक है। कविका घर स्वच्छ लिपापुता और धुला होना चाहिए, उसमें छहों ऋतुओंके योग्य अलग अलग स्थल होने चाहिए। पास ही वृक्षवाटिका, क्रीडापर्वत, वापी, पुष्करिणी, नहर, मोर, हिरन आदि पशु, सारस, चक्रवाक, हंस, चकोर शुक-सारिकादि पक्षी, गरमीका ताप निवारण करनेके लिए फुहारे-घर, लता-मण्डप होना चाहिए। काव्य-रचना द्वारा थके हुए मनको आराम देनेके लिए वहाँ किसी तरहका शोर गुल न रहे, कविके परिचारक अपभ्रंशभाषाप्रवीण, दासियाँ मागधी-भाषा जाननेवालीं, अन्तःपुरके सेवक प्राकृतसंस्कृतभाषाभिज्ञ तथा मित्र सब भाषाओंके जाननेवाले हों। कविका लेखक सर्वभाषाकुशल, शीघ्रवाक्, सुन्दर अक्षर लिखनेवाला, अनेक चिह्न पहिचाननेवाला, अनेक लिपियोंका ज्ञाता तथा स्वयं काव्य-रचनामें निपुण होना चाहिए। यदि ऐसा सर्वगुणसंपन्न मनुष्य हमेशा उसके पास न हो तो इनमेंसे कुछ गुणोंवाला मनुष्य तो होना ही चाहिए। नियत समयके विना कोई काम नहीं हो सकता, इसलिए कविको दिनरातके एक एक प्रहरके आठ विभाग कर लेने चाहिए। प्रातःकाल सन्ध्यावन्दनके बाद कवि सारस्वत सूक्तका जप करे, इसके वाद अपने विद्याभवनमें प्रसन्नचित्त होकर अपनी काव्यरचनाके लिए उपयोगी ग्रन्थोंका एक प्रहर तक स्वाध्याय करे, क्योंकि स्वाध्यायसे कविकी प्रतिभाका विकास होता है, दूसरे प्रहरमें काव्यरचना करे, दोपहरको स्नान करके भोजन करे, भोजनोपरान्त मित्रोंकी साहित्यगोष्ठी करे, उसमें समस्या-पूर्ति और काव्य-रचनाके विविध अंगोंकी चर्चा करे, चौथे प्रहरमें पहले जो काव्य-रचना की थी उसकी परीक्षा या तो स्वयं करे या अपने मित्रों द्वारा करावे। रचनाप्रवाहमें कविकी अपने गुण-दोष परखनेकी विवेकदृष्टि नहीं होती इसलिए परीक्षण आवश्यक है। उस समय अनावश्यक बातोंको निकाल देना चाहिए, जिस बातकी कमी हो उसको रख दे, जिस जगह रचना असंगत हो उसको बदल दे और जो बातें छूट गई हों उनका स्मरण करे। सायंकालमें

फिर संध्यावंदन तथा सरस्वतीकी उपासना करनी चाहिए। जिस रचनाकी परीक्षा हो चुकी है उसे रातमें साफ सुन्दर अक्षरोंसे लिख रखना चाहिए। इसके बाद अच्छी तरह निद्रा लेना चाहिए। गहरी नींद सोनेसे स्वास्थ्य अच्छा रहता है। प्रातः चौथे प्रहर शय्यासे उठ जाना चाहिए क्योंकि ब्राह्म मुहूर्तमें मन प्रसन्न रहता है और भिन्न भिन्न विषय आँखोंके सामने आते हैं।" राजशेखरके उपर्युक्त वर्णनमें कहीं कहीं अतिशयोक्ति झलकती है। फिर भी विक्रमादित्यसदृश दानशूर सार्वभौम नृपतिका आश्रय पानेका जिसे सौभाग्य मिला था उस कवि कालिदासकी जीवनचर्या उपर्युक्त रीतिके अनुसार रही हो इसमें कोई बात असम्भव नहीं दीखती।

कालिदासका आयुष्यमान कितना था इस संवंधमें अभी तक कोई निश्चित मत स्थिर नहीं हो सका है। फिर भी अनुमान लगाकर निर्णय निकालनेके लिए जगह है। कालिदासके ग्रन्थोंमें 'ऋतुसंहार' और 'मालविकाग्निमित्र' सबसे पहलेकी रचनायें हैं और 'रघुवंश' सबसे पीछे लिखा गया होगा। 'रघुवंश' के अठारहवें सर्गमें ६ वर्षकी उम्रमें ही सिंहासनपर आरूढ़ हुए सुदर्शन नामक बाल-राजाके सुन्दर काव्यमय वर्णनमें कालिदासने पन्द्रह श्लोक रचे हैं। 'रघुवंश' के अन्तिम राजाओंका अनुक्रम 'विष्णुपुराण' की वंशावलीसे वहुत कुछ मिलता जुलता है, फिर भी उसमें या अन्य पुराणोंमें यह उल्लेख नहीं मिलता कि सुदर्शन बाल्यावास्थामें ही सिंहासनपर वैठा था। इससे यह अनुमान निकाला जा सकता है कि कविने यह दृश्य प्रत्यक्ष देखा होगा और इसीसे यह वर्णन उसे सूझा होगा।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि वाकाटक नृपति द्वितीय रुद्रसेनकी युवावस्थामें मृत्यु हो जानेपर उसका नाबालिग पुत्र दिवाकरसेन सिंहासनपर बैठा। उस समय उसकी आयु पाँच छः वर्षसे अधिक नहीं होगी; क्योंकि उसकी माता प्रभावती गुप्ता कमसे कम तेरह वर्ष उसके नामसे राज्य करती रही। इस समय द्वितीय चन्द्र-गुप्तने अपनी पुत्रीको राज्यकारभारमें साहाय्य करनेके लिए जो विश्वसनीय अधि-कारी विदर्भमें भेजे, उनमें कालिदास भी होंगे यह अनुमान ऊपर किया गया है। उस समय विदर्भमें जो वालराजाके राज्यकारभारका दृश्य कविने देखा उसीसे रघुवंशमें सुदर्शन राजाका वर्णन करनेकी स्फूर्ति उसे हुई होगी। दिवाकरसेन वालिग होनेपर थोड़े ही कालमें कालवश हो गया, क्योंकि उसके अनन्तर उसके छोटे भाई दामोदरसेन ऊर्फ द्वितीय प्रवरसेनने लगभग तीस वर्ष राज्य किया, यह उसके ताम्रपत्रोंके उल्लेखोंसे ज्ञात होता है। इस प्रवरसेनने राज्यारोहणके बाद शीघ्र ही 'सेतुबन्ध' नामक प्राकृत काव्यका आरम्भ किया। उसमें उसको अनेक अड़चनें

आईं, यह उसने स्वयं एक गाथा (सेतु. १, ९) में कहा है। इस प्रसंगपर कालिदासने उसको जो साहाय्य किया, उससे वह काव्य कालिदासहीने रचा यह आख्यायिका प्रचलित हो गई। 'मालविकाग्निमित्र' लगभग ई. स. ३९५ में रंगमंचपर आया यह हमने आगे बताया है। उस समय कालिदास अत्यन्त तरुण अर्थात् लगभग २५ वर्षके होंगे। द्वितीय प्रवरसेन ई. स. ४२० के लगभग सिंहासनपर बैठे, यह अनेक प्रमाणोंसे ज्ञात होता है। उस समय कालिदासकी अवस्था पचास वर्षसे कम नहीं होगी। इसके अनन्तर सेतुबन्धकी रचना हुई। अतः निधनके समय कालिदासकी आयु लगभग पचपन वर्षसे कम नहीं होगी। संस्कृत-ललित-वाङ्मयमें कालिदासके समान विपुल ग्रन्थरचना राजशेखरको छोड़कर और किसी कविने नहीं की। इसलिये कालिदासके आयुर्मानके संवंधमें उपर्युक्त अनुमान असंगत नहीं दीखता।

५ कालिदासके काव्य

'क इह रघुकारे न रमते ।'—सुभाषित

('रघुवंश'कार कालिदासमें किसका मन न रमेगा ?)

किसी सर्वोत्तम ग्रन्थके लेखकका नाम एक बार प्रसिद्ध हुआ कि उसके पीछे उसीके नामपर अनेक ग्रन्थ निकलने लगते हैं। स्वयं प्रसिद्ध होनेकी अपेक्षा प्राचीन कालके ग्रन्थकारकी यह इच्छा होती थी कि उसके बनाये हुए ग्रन्थोंका आदर और प्रचार अधिकसे अधिक हो । फलतः बिल्कुल निम्न श्रेणीके ग्रन्थ भी प्रसिद्ध ग्रन्थकारोंके नामपर प्रचलित किये जाते रहे हैं। कभी कभी एक ही नामके अनेक ग्रन्थकार भिन्न भिन्न समयमें उत्पन्न होते हैं । समयके प्रचंड प्रवाहमें उनके व्यक्तिगत भेद नष्ट हो जाते हैं और उन्हींमेंसे किसी एक प्रसिद्ध व्यक्तिविशेषमें अन्य व्यक्ति लीन हो जाते हैं । संभवतः कालिदासके संबंधमें भी ऐसा ही हुआ होगा। ऑफ्रेक्ट साहेबने, अपनी 'बृहत्संस्कृतग्रन्थसूची' में कालिदासके नामसे प्रचलित तीस पैंतीस ग्रन्थोंका निर्देश किया है। उनमें काव्य नाटकोंके अतिरिक्त ज्योतिष, रत्नपरीक्षा, देवतास्तुति इत्यादि भिन्न भिन्न विषयोंके ग्रन्थ हैं। इनमेंसे बहुतसे ग्रन्थ तो कालिदासके नामपर गढ़े हुए अथवा कालिदाससे बहुत काल पीछे पैदा हुए कालिदासनामधारी किसी अन्य ग्रन्थकारके रचे हुए होंगे। उदाहरणार्थ 'नलोदय' काव्यको लीजिए। कविने इस काव्यमें यमक आदि शब्दालंकारोंकी बेहद भरमार कर दी है, और इसलिए बहुतसे स्थलोंपर अर्थ दुर्बोध हो गया है । 'रघुवंश' आदि काव्योंमें कालिदास शब्दालंकारोंके लिए विशेष उत्सुक नहीं दिखाई पड़ते । इसलिए अनेक विद्वानोंका खयाल था कि यह काव्य कालिदासका न होगा । अब तो छान बीन करनेसे वह ईसाके बाद दसवीं शताब्दीमें उत्पन्न हुए वासुदेव नामक कविका बनाया हुआ सिद्ध हो चुका है *। यहाँ ऐसे काव्योंका विचार करना हमें अभीष्ट नहीं ।

---

* A. S. R. Aiyar : Authorship of the Nalodaya, J.R. A. S. for 1925, p. 263 f

'ऋतुसंहार', 'मालविकाग्निमित्र', 'कुमारसम्भव', 'विक्रमोर्वशीय', 'मेघदूत', 'कुन्तलेश्वरदौत्य', 'शाकुन्तल' और 'रघुवंश' ये आठ ग्रन्थ कालिदासके रचे हुए हैं। इनके अतिरिक्त 'सेतुबंध' अथवा 'रावणवहो' नामक प्राकृत काव्यमें, जो प्रवरसेनके नामपर प्रसिद्ध है, कालिदासका हाथ रहा होगा, ऐसा हमने पहले प्रकरणमें अनुमान किया है। 'कुन्तलेश्वरदौत्य'को छोड़कर अवशिष्ट काव्य नाटक आज उपलब्ध हैं। 'कुन्तलेश्वरदौत्य' भी कालिदासकी कृति है यह क्षेमेन्द्रने अपनी 'औचित्यविचारचर्चा' (पृ. १३९) में कहा है। राजशेखरकृत 'काव्यमीमांसा' और भोजके 'शृंगारप्रकाश' नामक ग्रंथमें 'कुन्तलेश्वरदौत्य'से अवतरण उद्धृत किये गए हैं। अवशिष्ट ग्रन्थोंमें 'ऋतुसंहार' 'कुमारसंभव' 'मेघदूत' और 'रघुवंश' काव्य हैं, तथा 'मालविकाग्निमित्र' 'विक्रमोर्वशीय' और 'अभिज्ञानशाकुन्तल' नाटक हैं। ये आठ ग्रन्थ कविने उपरिनिर्दिष्ट क्रमके अनुसार रचे होंगे। इस परिच्छेदमें हम कालिदासके काव्योंका तथा आगामी परिच्छेदमें नाटकोंका समीक्षण करेंगे।

कालिदासके काव्योंकी समीक्षा करनेके पहले उनके पूर्वकालीन कवियोंके ग्रन्थोंका थोड़ासा सिंहावलोकन करना आवश्यक है। यद्यपि अत्यन्त प्राचीन संस्कृत काव्य-ग्रन्थ आजकल लुप्त हो गये हैं तथापि काव्यकलाका उद्गम वैदिक कालमें अच्छी तरह हो चुका था, यह निश्चित है। जिन्होंने ऋग्वेदमें अनेक अलंकारोंसे विभूषित उषादेवीका सुन्दर वर्णन किया है, वरुण देवताके सूक्तोंमें जिन्होंने अपने हृदयके उद्गार व्यक्त कर क्षमायाचना की है, जिसके दाशराज्ञ-सूक्तके समान युद्धवर्णन अब भी ऋग्वेदमें मौजूद हैं, क्या उन आदि ऋषिवर्योंको शृंगार, वीर, करुणात्मक काव्यरचना करना नहीं आता था? फिर भी ऊपर लिखे अनुसार उनके वे सब काव्य आज नाममात्रको भी विद्यमान नहीं हैं। वर्त्तमान काव्योंमें सबसे प्राचीन काव्य रामायण है। रामायणमें वर्णित रामकी पितृभक्ति, भरतका भ्रातृप्रेम आदि घटनाएँ हृदयस्पर्शी हैं तथा कविने उन उन प्रसंगोंका वर्णन बड़ी मार्मिकतासे किया है। रामायणकी विविध कल्पनाओं, शब्द-प्रयोगों एवं उपमा आदि अलंकारोंसे, अश्वघोष, कालिदास आदि कवियोंने अपने काव्योंको अलंकृत किया है। उदाहरणके लिये अश्वघोषके 'बुद्धचरितको' ले लीजिए। इस काव्यमें बुद्धके अन्तःपुरमें सोती हुई स्त्रियोंका वर्णन, रामायणके सुन्दरकाण्डमें वर्णित हनुमान द्वारा देखे हुए रावणके अन्तःपुरके वर्णनसे मिलता जुलता है। कविको यह कल्पना रामायणसे मिली होगी। अन्यान्य महाकाव्योंकी तरह इसमें भी छन्दभेद रक्खा गया है।

किन्तु रामायण कितना ही हो एक धार्मिक भावनासे रचा हुआ महाकाव्य है। लौकिक दृष्टिसे रचे हुए प्राचीन काव्योंका उल्लेख कहीं मिलता है या नहीं, यह

देखना चाहिए।'पतंजलिकृत व्याकरण-महाभाष्य' में उद्‌धृत उदाहरणोंमें कुछ काव्योंके इलोकोंके खण्ड यत्र-तत्र दिखाई पड़ते हैं। ईसाके जन्मसे १५० वर्ष पूर्व पतंजलि हुए थे यह निश्चित है और इस कारण इन उदाहरणोंका महत्त्व भी अधिक है। 'वरतनु संप्रवदन्ति कुक्कुटाः', 'प्रियां मयूरः परिनर्नृतीति', 'प्रथते त्वया पतिमती पृथिवी' इत्यादि उदाहरण 'महाभाष्य' में प्रसंगवश आये हुए हैं। इन उदाहरणोंसे यह मालूम होता है कि पतंजलिके समयमें विविधवृत्तविभूषित अलंकारयुक्त अनेक काव्य रहे होंगे। इस कालके उपरान्त भी काव्यनिर्माणकला प्रचलित थी, यह प्राचीन शिलालेखोंसे मालूम होता है। उदाहरणार्थ, काठियावाड़के जूनागढ़ नामक नगरके निकट क्षत्रप रुद्रदामन्का संस्कृत शिलालेख है। उस शिलालेखसे मालूम होता है कि जिसने यह लेख लिखा था वह काव्यकलाका पूर्ण ज्ञाता था।

यद्यपि ये लेख आलंकारिक भाषा तथा काव्यदृष्टिसे लिखे गये हैं, तथापि हैं सब गद्यमें। कालिदासको जिन ग्रन्थोंसे प्रेरणा मिली होगी उनमेंसे अधिकांश कालके गर्भमें समा गये हैं। दैवयोगसे इन ग्रन्थोंमेंसे कवि अश्वघोषके ग्रन्थ उपलब्ध हैं। उनसे तत्कालीन काव्यरचनाकी कल्पना की जा सकती है। अश्वघोष अयोध्याका रहनेवाला ब्राह्मण था। उसके रचे हुए काव्योंसे पता चलता है कि वह उपनिषद्, भगवद्गीता, सांख्य आदि दर्शनशास्त्रोंका पूर्ण पण्डित था। कुछ समयके बाद वह बौद्धधर्मावलम्बी हो गया। अश्वघोषके बनाये हुए 'सौन्दरनन्द' तथा 'बुद्धचरित' ये दो काव्य संस्कृत-काव्य-जगत्‌में अपने रचयिताका नाम अमर रक्खेंगे। 'सौन्दरनन्द' में कुल अठारह सर्ग हैं। और उन सर्गोंमें भगवान् बुद्धने अपने सौतेले भाईको अपने चलाये हुए धर्ममें किस प्रकार दीक्षित किया, इस बातका वर्णन है। 'बुद्धचरित'के १७ सर्ग हैं। किन्तु उनमेंसे केवल प्रथम १३ सर्ग अश्वघोषकृत और शेष चार अमृतानन्द कविके बनाये हुए हैं। उन १३ सर्गोंमें बुद्धके जन्मसे लेकर मारविजय तककी घटनाओंका वर्णन है।

'सौन्दरनन्द' काव्यके अन्तमें कविने यह स्पष्ट लिखा है कि यह काव्य उसने स्वांतःसुखाय नहीं, अपितु सांसारिक विषयोपभोगमें डूबी हुई जनताका ध्यान बौद्धधर्मकी शिक्षाके अनुसार वर्णित मोक्षमार्गकी ओर प्रेरित करनेके लिये लिखा है। अश्वघोष स्वयं एक प्रतिभाशाली कवि था और रामायण आदि ग्रन्थोंका अनुशीलन करनेके कारण वह अपने काव्योंको रुचिर और काव्यगुणोंसे पूर्ण बना सका। उसकी कविता सरल और अव्याजमनोहर है। बुद्ध तथा नन्दके चरित्रोंमें कविने चुने हुए प्रसंगोंका वर्णन अलंकारमण्डित भाषामें किया है। नन्दके भिक्षु बन जानेपर उसकी हृदयेश्वरी सुन्दरीका विलाप, गौतमके उद्यानमें जाते समय पौर स्त्रियोंकी जल्दबाजी, जिस

रात्रिमें गौतमने गृहत्याग किया उस अवसरपर देखा हुआ स्त्रियोंका बीभत्स रूप, गौतमको वनमें छोड़कर छन्दका अकेले कपिलवस्तु लौटना, तथा गौतमके वियोगमें पुरवासियोंका विलाप इत्यादि प्रसंग इतने करुणोत्पादक हैं और कविने उन्हें इतना मार्मिक बनाया है कि उसे सुनकर सहृदय जनोंके हृदयमें करुण रसका आवेग उमड़ पड़ता है। पहले परिच्छेदमें हम अश्वघोष तथा कालिदासके काव्यगत कल्पनासाम्यके कुछ स्थलोंको दिखा चुके हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि कालिदासने अश्वघोषकृत काव्योंका अच्छी तरह अभ्यास किया होगा। कालिदासकी रचनापर अश्वघोषकी पूरी छाप पड़ी हुई है। इस तरहके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनमें अश्वघोष और कालिदासकी रचनामें केवल शब्दसादृश्य ही नहीं बल्कि अर्थ और अलंकारगत सादृश्य भी मिलता है। उदाहरणार्थ—

बभूव स हि संवेगः श्रेयसस्तस्य वृद्धये।
धातोरधिरिवाख्याते पठितोऽक्षरचिन्तकैः।।

सौन्दरनन्द, १२, ९.

इस प्रकारकी व्याकरणविषयक उपमा, एवं 'यथावदेनं दिवि देवसंघा दिव्यैर्विशेषैर्महयाञ्च चक्रुः' और 'कार्यस्य कृत्वा हि विवेकमादौ सुखोधिगन्तुं मनसो विवेकः' इत्यादि अपाणिनीय प्रयोगोंका अनुकरण कालिदासने किया है ❋। किन्तु स्वयं कालिदास निर्दोष तथा बड़ी सावधानीसे रचना करनेवाले कवि थे। उन्होंने अश्वघोषके काव्योंकी अनेक त्रुटियाँ निकाल दी हैं। उदाहरणार्थ 'आकार्ष्टाम्' 'अवर्धिष्ट' सदृश कर्णकटु शब्द-प्रयोग, 'नृपोपविश्य' के समान संधिका, तथा 'गृह्य', 'विवर्धयित्वा', 'परिपालयित्वा' जैसा कृदन्तों के अशुद्ध रूप, भट्टिकाव्यके समान 'अवर्धिष्ट' 'अवृधत्' आदि तृतीय भूतकालके वैकल्पिक क्रियारूपोंके प्रयोगोंका बाहुल्य अनुचित समझकर कालिदासने उन्हें सतर्क होकर त्याग दिया है। अश्वघोषके काव्यगत यथासंख्य, पादांत-यमक जैसे नीरस तथा कृत्रिम अलंकार और पढ़नेमें कठिन छन्दोंको कालिदासने बड़ी होशियारीसे अपनी रचनामें नहीं आने दिया। उन्होंने भ्रमरके सदृश वृत्ति धारण कर अश्वघोषके केवल काव्यगत सुन्दर भागको अपने लिये चुना और अपने काव्योंमें उसका समावेश किया।

अश्वघोषके बाद उससे अधिक सरस काव्यरचना करनेवाले अनेक प्रतिभाशाली कवि हुए होंगे, किन्तु उनमेंसे आज एकका भी काव्य उपलब्ध नहीं। कालिदासके पहले भी कितने सुन्दर और निर्दोष काव्य होते थे इसका पता प्रयागस्थ शिलास्तम्भ-प्रशस्ति★

❋ रघुवंश १५, ९; ९, ६१; ४, ३ देखिए।
★ Fleet : Gupta Inscriptions, No. 1.

से चलता है । वह प्रशस्ति चम्पू काव्यका एक सुन्दर उदाहरण है । उसका प्रथमार्ध पद्य तथा द्वितीयार्ध बहुधा गद्यमें है । उसके गद्यमें आलंकारिकोंके विधानके अनुसार सामासिक पदोंकी बहुलता होनेपर भी, अनुप्रास, उपमा, श्लेष आदि अनेक अलंकारोंके परिमित उपयोग और शब्दमाधुर्यसे विशेष रमणीयता आ गई है । शिलास्तम्भका पृष्ठभाग कई जगह विकृत हो जानेसे प्रशस्तिका पूर्वार्ध यत्रतत्र खण्डित हो गया है। तथापि निम्नलिखित श्लोकसे उसके रचयिता हरिषेणकी काव्यप्रतिभाका अनुमान लगाया जा सकता है ।

आर्यो हीत्युपगुह्य भावपिशुनैरुत्कर्णितैः रोमभिः
सभ्येषूच्छ्वसितेषु तुल्यकुलजम्लानाननोद्वीक्षितः ।
स्नेहव्याकुलितेन बाष्पगुरुणा तत्त्वेक्षिणा चक्षुषा
यः पित्राभिहितो निरीक्ष्य निखिलां पाह्येवमुर्वीमिति ।।

इस श्लोकमें चन्द्रगुप्तने अपनी वृद्धावस्थामें समुद्रगुप्तको जिस समय सिंहासनका उत्तराधिकारी बनाया उस समयका हृदयंगम वर्णन है । इस श्लोककी तारीफमें डा. बूलरने मुक्तकंठसे कहा है कि ‘ इस प्रसंगका वर्णन इससे कम शब्दोंमें और अधिक सजीवतासे चित्रित कर सकना कठिन है । इस श्लोकमें एक शब्द भी अधिक नहीं है । इसे पढ़ते समय वृद्ध चन्द्रगुप्तकी राजसभाका दृश्य आँखोंके सामने आ जाता है । एक ओर राजसिंहासन हमें ही प्राप्त हो इस अभिलाषासे उसके पुत्र बैठे हैं, तथा दूसरी ओर सम्राट् किसी अयोग्य व्यक्तिको राज्यका उत्तराधिकारी न बना दें इस आशंकासे भयभीत सभासद निर्णयकी प्रतीक्षामें बैठे हैं । ऐसे प्रसंगमें ‘ यही केवल योग्य अधिकारी है ’ ऐसा कहकर रोमांचित तथा गद्गद चित्तसे चन्द्रगुप्तने समुद्रगुप्तका आलिंगन किया और प्रेमाश्रुपूर्ण तथा तत्त्वान्वेषी नेत्रोंसे उसे देखकर कहा कि ‘ तू इस सारी पृथ्वीका पालन कर ’। यह सुनकर अन्य राजकुमारोंके मुख निष्प्रभ हो गये और सभासदोंने सन्तोषकी साँस ली । यह पद्य बहुत थोड़े शब्दोंमें भावगम्भीर, सरस एवं उज्ज्वल चित्रको अङ्कित करनेवाली भारतीय काव्य-कलाका उत्तम उदाहरण है।’ इसके पश्चात् यदि ‘ मेघदूत ’ जैसे सर्वांगसुन्दर सर्वोत्तम काव्यकी रचना हुई तो इनमें क्या आश्चर्य ?

ऋतुसंहार

कालिदासकृत काव्योंमें ‘ ऋतुसंहार ’ निम्न श्रेणीका ग्रन्थ माना जाता है। कई विद्वानोंको सन्देह है कि कदाचित् उक्त काव्य कालिदासका नहीं है । परन्तु उनकी यह शंका निर्मूल है । यह अनेक प्रमाणोंद्वारा सिद्ध किया जा सकता है । वल्लभदेवकी

'सुभाषितावलि' में 'ऋतुसंहार' के दो श्लोक (६, १७ और २०) कालिदासके नामपर उद्धृत किये गये हैं। प्रथम परिच्छेदमें हम यह दिखला चुके हैं कि ईसाके ४७३ वर्ष बादकी मन्दसोरकी प्रशस्तिमें 'ऋतुसंहार' के कुछ श्लोकोंकी छाया है। इससे तो यही सिद्ध होताहै कि यह काव्य ईसाकी ५ वीं शताब्दीसे पहलेका है। कालिदासको ऋतुवर्णन बहुत प्रिय था। उन्होंने अपने प्रत्येक काव्यमें किसी एक ऋतुका वर्णन किया है। 'कुमार-सम्भव' में वसन्तका, 'विक्रमोर्वशीय' और 'मेघदूत' में वर्षाऋतुका, 'शाकुन्तल' में ग्रीष्मका, तथा 'रघुवंश' में सभी ऋतुओंका वर्णन कविने किया है। सरस्वती देवीकी आराधना करते समय प्रकृतिके वर्णनको छोड़कर और कौन-सा सरल एवं सरस विषय कवि अपने लिए चुनेगा ? इस तरहके काव्यमें किसी कथानकका सम्बन्ध न रहनेसे जब स्फूर्ति होती है तब श्लोक बनाकर पीछेसे जोड़ सकते हैं। हमने द्वितीय परिच्छेदमें कहा है कि दूसरी और तीसरी शताब्दीमें हिन्दुस्तानमें कुशान साम्राज्य होनेके कारण पूर्वीय तथा पश्चिमीय देशोंके साथ व्यापारकी अधिक उन्नति हुई। सम्पत्तिका प्रवाह देशमें सब ओरसे बहने लगा। ऐश्वर्यके साथ साथ विलासप्रियता भी बढ़ी। परिणाम यह हुआ कि मध्यमश्रेणीके लोगोंका ध्यान ललितकलाओंकी ओर विशेष रूपसे आकृष्ट हुआ। वात्स्यायनकृत 'कामसूत्र' में नागरकोंकी विविधकलाभिज्ञता और विलास-प्रियताका अच्छा वर्णन है। उनके इन गुणोंसे ललितकलाको और साहित्यको कहाँ तक प्रोत्साहन मिलता था, इसका पता लगता है। प्रत्येक नागरकके घरके खास दीवानखानेमें कुछ ऊँचे स्थानपर केशरचनाके लिए आवश्यक सामग्री, पुष्पमाला, ताम्बूल, गुलाबजल तथा अन्य सुगन्ध द्रव्य सजे रक्खे रहते थे। कानिस्तपर वीणा, चित्रलेखनके लिए आवश्यक रंग और तूलिकादि वस्तुयें और पास ही एक दो काव्य भी रक्खे हुए दिखाई पड़ते थे। सन्ध्यासमय ऋतुके अनुसार अच्छी पोशाक पहनकर, जैसे आजकलके जेंटलमेन क्लबों और सोसायटीज़में मनोरंजन करनेके लिए जाया करते हैं, उसी तरह उस कालमें लोग गोष्ठियोंमें या जहाँपर मित्रों या रसिकोंकी बैठकें जमती थीं, जाया करते थे। तात्कालिक काव्यरचना, समस्यापूर्तियाँ, प्रतिमालास्पर्धा (अन्त्या-क्षरप्रतियोगिता) आदि मनोविनोदात्मक कार्योंमें सन्ध्याका समय बिताया जाता था। उक्त स्थानोंपर समय समयपर विविधकलाभिज्ञ, चतुर, विदुषी वेश्याओंको भी आमंत्रित किया जाता था, या उन्हींके घर कभी मंडली जमा हुआ करती थी। ऐसे ही प्रसंगोंपर काव्यरचना और कलाप्रवीणता प्रदर्शित करनेके लिये परस्पर प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ हो जाती थी। ऋतुवर्णन के समान विषय ऐसे समय ही सूझते हैं। जिस समय 'ऋतुसंहार' रचा गया होगा उस समय कालिदासको किसी राजाका आश्रय नहीं मिला होगा। कारण यह है कि इस काव्यमें राजाका या राजाश्रयका प्रत्यक्ष उल्लेख दृष्टि-

गोचर नहीं होता। कुछ श्लोक तो एक ही कल्पनाको लेकर दुहराये गये हैं। कुछ श्लोक अपनी प्रियाको लक्ष्य करके लिखे गये हैं। कई श्लोकोंमें 'स्त्रियोंके सहवासमें तुम्हारा ग्रीष्मकाल सुखदायी हो' ऐसा भाव पुरुषोंको संबोधित करके प्रगट किया गया है। इन सब बातोंसे पता चलता है कि कालिदासने यह खण्डकाव्य नागरक समाजमें बनाया होगा।

'ऋतुसंहार' काव्यमें कुल छः सर्ग हैं। प्रत्येक सर्गमें १६ से लेकर २८ तक श्लोकसंख्या है। इन सर्गोंमें ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर और वसन्त इन छः ऋतुओंका क्रमानुसार वर्णन किया गया है। प्रत्येक ऋतुके वर्णनमें उस ऋतुका वृक्ष-लताओं और पशुपक्षियोंपर होनेवाला प्रभाव तथा उसके आगमनसे कामी जनोंकी चित्तवृत्ति और व्यवहारमें दिखाई देनेवाले परिवर्तन तथा उनके हृदयोंमें तरह तरहके विचारोंका उद्गम इन सबका कविने सुंदर वर्णन किया है। उदाहरणार्थ, ग्रीष्म ऋतुका वर्णन देखिए——

रवेर्मयूखैरभितापितो भृशं विदह्यमानः पथि तप्तपांसुभिः।
अवाङ्मुखो जिह्मगतिः श्वसन्मुहुः फणी मयूरस्य तले निषीदति ॥

ऋतु. १, १३.

इस श्लोकमें कविने बताया है कि 'सूर्यकी अत्यन्त प्रखर किरणोंद्वारा ऊपरसे और गरम गरम धूलसे नीचेसे गरमी पहुँचनेके कारण झुलसा हुआ और व्याकुलताके कारण जल्दी जल्दी श्वास छोड़नेवाला वक्रगति सर्प अपना सहज जातिवैर भूलकर मयूरकी छायाका सहारा ले रहा है'। 'ग्रीष्म-कालकी चाँदनी बहुत भली मालूम होती है। ठंडे पानीमें डूबे रहनेके लिये जी चाहता है। रातमें भवनके ऊपर खुली छतपर प्रिया-सहित कामोद्दीपक सुरापान और वीणा-वादनमें कामी जन रात्रिका समय बिताते हैं। निशामें स्वच्छ सफेद घरोंके ऊपर छतोंपर सुखनिद्रालीन रमणियोंकी मुखकान्ति देखकर चन्द्रमा लज्जासे फीका पड़ जाता है' इत्यादि वर्णनद्वारा कविने ग्रीष्म ऋतुमें होनेवाला कामी जनोंकी चित्तवृत्तिपर परिणाम दिखाया है। ग्रीष्मके बाद वर्षाका आगमन होता है। उस समय प्यासे चातक पक्षियोंकी याचना पर जलभारविनम्र मनोहर गर्जनध्वनि करते हुए मेघ जल बरसाते हैं और पथिकोंको अपनी प्रेयसियोंका विरह सताता है, इत्यादि विषयोंका इस ऋतुमें वर्णन किया गया है। शरद्का वर्णन देखिए–

काशांशुका विकचपद्ममनोज्ञवक्त्रा
सोन्मादहंसरवनूपुरनादरम्या।

आपक्वशालिरुचिरानतगात्रयष्टिः
प्राप्ता शरन्नववधूरिव रूपरम्या ।। ऋतु. ३, १.

'सफेद काशकी सुंदर साड़ी पहने हुए, विकसित कमल ही जिसका मनोहर मुख है, उन्मत्त हंसोंकी ध्वनि ही जिसके नूपुरोंकी आवाज है, पके हुए धान ही जिसका सुन्दर कृश शरीर हैं, ऐसी नववधूसदृश रमणीय इस शरद् ऋतुकी रातें चन्द्रकी प्रभासे, नदियाँ हंसोंसे, सरोवर सारस पक्षियोंसे, वनस्थली पुष्पभारसे विनम्र सप्तपर्ण वृक्षोंसे, तथा उपवन मालती पुष्पोंसे श्वेत दिखाई पड़ते हैं।' चतुर्थ तथा पंचम सर्गमें कविने हेमन्त तथा शिशिर ऋतुओंका वर्णन किया है । किन्तु यह वर्णन पहले तीन सर्गोंके समान मनोहर नहीं है। इन ऋतुओंने प्रकृतिसुन्दरीके नेत्राह्लादक पुष्पादि अलंकार नहीं दिखाई पड़ते इस लिए कविने केवल चार पाँच श्लोकोंमें ही प्रकृतिका वर्णन समाप्त कर दिया है । अन्य श्लोकोंमें युवा-युवतियोंकी प्रेमलीलाका वर्णन है। अन्तमें वसन्तका वर्णन अधिक रमणीय हुआ है । इस ऋतुमें वृक्ष सपुष्प, सरोवर पद्मयुक्त, कामिनियाँ काम-वश, पवन परिमलयुक्त, संध्यासमय सुखकारी तथा दिन रमणीय होते हैं, ऐसा कविने एक ही श्लोकमें इस ऋतुकी रमणीयताका दिग्दर्शन कराया है। यह वर्णन अत्यन्त मनोहर है, स्वाभाविकताकी अच्छी मात्रा दीख पड़ती है। वसन्त-समीरका वर्णन देखिए—

आकम्पयन् कुसुमिताः सहकारशाखा
विस्तारयन्परभृतस्य वचांसि दिक्षु ।
वायुर्विवाति हृदयानि हरन्नराणां
नीहारपातविगमात् सुभगो वनान्ते ।। ऋतु. ६, २२.

'कुहरा नष्ट हो जानेसे सुखकारी वायु बौरे हुए आमोंकी डालियोंको हिलाकर, कोकिलके कलकूजनको चारों तरफ फैलाकर लोगोंके हृदयोंको अपनी ओर खींच रहा है', इत्यादि वर्णन है। इस श्लोकमें कालिदास-रचित उत्तरकालीन काव्यके गाम्भीर्य, लालित्य आदि गुण दृष्टिगोचर होते हैं ।

उपर्युक्त वर्णनोंसे तथा 'ऋतुसंहार' के अन्य श्लोकों द्वारा यह ज्ञात होता है कि कविका मन बाह्यसृष्टि तथा शृङ्गारकी ओर अधिक झुका हुआ है। 'ऋतुसंहार' में कविने स्वभावोक्तिकी ओर विशेष ध्यान दिया है । कई जगह उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारोंका अच्छा निर्वाह हुआ है। किन्तु उनमें उत्तरकालीन काव्योंके अलंकारोंकी रमणीयता दृष्टिगोचर नहीं होती। अर्थान्तरन्यास जैसे ललित और मधुर अलंकारका उदाहरण 'ऋतुसंहार' में एक भी नहीं। कविकी शब्द-रचनामें भी लालित्य नहीं

आ पाया है। कई जगह पुनरुक्ति, 'तडिल्लताशक्रधनुर्विभूषिताः पयोधराः' (२, २९) इत्यादि स्थलोंमें लतादि शब्दोंका अनावश्यक प्रयोग और कहीं कहीं व्याकरणनियमभंग आदि दोष भी मिलते हैं। इस काव्यकी रचनाके समय, कालिदासकी आँखोंके आगे वालमीकि-रामायणके किष्किंधाकाण्डमें वर्णित वर्षा तथा शरद्का वर्णन रहा होगा। तुलनाके लिये शब्दप्रयोग और कल्पनाका साम्य नीचे दिये हुए उदाहरणोंमें देखिए—

रामायण—

बालेन्द्रगोपान्तरचित्रितेन विभाति भूमिर्नवशाद्वलेन।
गात्रानुपृक्तेन शुकप्रभेण नारीव लाक्षोक्षितकम्बलेन।। ४, २८, २४.

ऋतुसंहार—

प्रभिन्नवैदूर्यनिभैस्तृणाङ्कुरैः समाचिता प्रोत्थितकन्दलीदलैः।
विभाति शुक्लेतररत्नभूषिता वराङ्गनेव क्षितिरिन्द्रगोपकैः।। २, ५.

'चमकते हुए मरकत मणिके समान हरे तृणांकुरोंसे छाई हुई और निकले हुए कन्दलीदलोंसे व्याप्त भूमि बीरबहूटियोंसे, रक्तवर्णमणियोंके अलंकारोंसे अलंकृत सुन्दर ललना जैसी शोभित हो रही है'।

वर्षाऋतुमें हरित तृणपर लाल रंगकी वीरबहूटियाँ दिखाई देती हैं। उनका वर्णन रामायणमें लाखकी उपमाद्वारा तथा ऋतुसंहारमें लाल मणिकी उपमाद्वारा किया गया है। कालिदासकी उपमा सरस है, फिर भी वाल्मीकिने नूतन हरित तृणको भूमिके हरित वसनकी मनोहर उपमा दी है। कालिदास वहाँ तक पहुँच भी नहीं सके। रामायणके अन्य श्लोकोंमें भी कविने नई नई कल्पनाओं तथा उत्प्रेक्षादि अलंकारोंका यथोचित निर्वाह करके ऋतुवर्णनको अधिकसे अधिक रमणीय बनाया है। 'ऋतुसंहार'का ऋतुवर्णन इसके आगे कुछ नीरस और मामूलीसा दिखाई पड़ता है। फिर भी इस काव्य-द्वारा कविके मार्मिक सृष्टिनिरीक्षणकी उज्ज्वल नैसर्गिक प्रतिभाकी तथा विकासोन्मुख कलानैपुण्यकी कल्पना हमारे सामने आती है। इसीसे यह अनुमान किया जा सकता है कि अपने इस काव्यके कारण कालिदासको विशेष ख्याति प्राप्त हुई होगी। इसके बाद शीघ्र ही द्वितीय चन्द्रगुप्तने वाकाटकोंकी सहायतासे क्षत्रपोंका पराभव कर उनके मालवा और काठियावाड़ प्रान्तोंको अपने राज्यमें संमिलित किया और उज्जैनको अपनी राजधानी बनाया। वाकाटकोंके साथ स्थापित संबंधको सुदृढ करनेके लिये उसने अपनी बेटी प्रभावतीका वाकाटक रुद्रसेनके साथ विवाह कर दिया। उस विवाहोत्सवके समय कालिदासका नाटक 'मालविकाग्निमित्र' रंगमंचपर प्रस्तुत किया गया होगा। इस नाटकके संबंधमें अगले परिच्छेदमें विचार किया जायगा। इस नाटकद्वारा कालि-

दास और चन्द्रगुप्तका जो स्नेहसंबंध जुड़ा वह उत्तरोत्तर दृढ़ होता गया । कुछ समयके बाद चन्द्रगुप्तका रानी ध्रुवदेवीसे कुमारगुप्तनामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस अवसर पर कालिदासने 'कुमारसंभव' नामक काव्यकी रचना की होगी। हम अब इसी काव्यका समीक्षण करते हैं —

कुमारसंभव

अब तक प्राप्त हुई 'कुमारसंभव' की प्रतियोंमें सत्रह सर्ग हैं। कुछ लोगोंका कहना है कि इसमें पहले २२ सर्ग थे । इसके विषयमें कुछ लोगोंका यह भी कहना है कि कालिदास इस काव्यको पूर्ण नहीं कर सके, तथा आरंभके ८ सर्ग ही वास्तवमें कालिदासके रचे हुए हैं। साथ ही सुप्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथकृत संजीविनी टीका भी प्रथम ८ सर्गोंपर ही मिलती है, आगे नहीं । इन बातोंपर हम आगे विशेष प्रकाश डालेंगे ।

एक बार ब्रह्माके वरदानसे उन्मत्त होकर तारकासुरने देवताओंको वहुत सताया । देवताओंने ब्रह्माजीके आदेशानुसार शिव और पार्वतीका विवाह करा दिया। फलतः दोनोंके संयोगसे कार्त्तिकेयकी उत्पत्ति हुई। तारकासुरके वधके लिये उनको सेनापति बनाया गया और उनके हाथों उस उग्र असुरका संहार हुआ, यह कथा इस काव्यमें वर्णित है । इसके प्रथम सर्गमें कविने हिमालयका वहुत ही सुंदर वर्णन किया है । आगे पार्वतीके जन्म और उसके शैशव और यौवनका मनोहर वर्णन है । एक बार पार्वतीको उसके पिताके निकट बैठी देख महर्षि नारदने भविष्य-वाणी की कि यह कन्या शिवकी अर्धांगिनी होगी । उनकी इस बातपर विश्वास कर हिमालयने उसके यौवनमें पदार्पण करने पर भी विवाहकी जरा भी चिन्ता न की । उस समय भगवान् शंकर हिमालयपर ही तप कर रहे थे । उनकी सेवा करनेकी आज्ञा पर्वतराजने अपनी पुत्रीको दे दी (सर्ग १) । इसी समय तारकासुरके त्राससे डर कर देवता लोग ब्रह्माजीकी शरणमें गये। उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर उन्होंने देवताओंसे कहा कि 'मैं स्वयं उसे वरदान दे चुका हूँ। इसलिए उसका नाश करना मेरे लिये असम्भव है। आप लोग यत्न कर पार्वतीपरमेश्वरका परिणय कराइए। उनसे उत्पन्न हुआ पुत्र तारकासुरको मारकर तुम्हें निर्भय करेगा (सर्ग २)।' इन्द्रने अपनी सभामें कामदेवको बुलाया और समाधिस्थ शंकरके हृदयमें पार्वतीके प्रति आकर्षण पैदा करनेका भार उसे सौंपा। मदन अपनी पत्नी रति तथा वसन्तको लेकर हिमालयपर गया। वहाँ शिवजीके हृदयमें कामवासनाका वीज बोनेके लिये सर्वप्रथम वसन्तने सर्वत्र अपना साम्राज्य स्थापित किया। शिवजी जिस जगह ध्यानस्थ बैठे थे उस लतागृहके द्वारपर नन्दी पहरा दे रहा था। उसकी आँख बचाकर मदन अन्दर चला गया। योगस्थ शिव उस समय परमात्मदर्शनमें लीन

थे । कुछ कालके अनन्तर समाधि टूटनेपर उनकी अनुमतिसे नन्दीने पार्वतीको भीतर आने दिया। पार्वतीने उनके चरणोंमें पुष्पाञ्जलि अर्पण कर गंगा नदीमें उत्पन्न हुए कमलोंके शुष्क बीजोंकी माला शिवजीको भेंट करनेके लिए आगे बढ़ाई । माला स्वीकार करते समय बहुत अच्छा मौका पाकर मदनने अपने धनुषपर सम्मोहन नामक बाण चढ़ाया । परिणाम यह हुआ कि शिवजीकी चित्तवृत्ति क्षणभरके लिए चंचल हो उठी, किन्तु उन्होंने तुरन्त उस वृत्तिका दमन कर चित्तको वशमें किया और वे उस कारणको ढूँढ़ने लगे जिससे उनके मनमें विक्षोभ हुआ था। सामने निगाह डाली तो मदनको धनुष्यपर बा ग चढ़ाये आगे खड़ा देखा। बस फिर क्या था, मारे क्रोधके उन्होंने अपना तीसरा नेत्र खोल दिया और उससे जो भयंकर अग्नि निकली, उसमें मदन जलकर भस्म हो गया (सर्ग ३) । अपने पतिकी यह दुर्दशा देख रति एकदम मूर्छित हो गई । जब उसे कुछ होश हुआ तो वह बहुत विलाप करने लगी । उसे सान्त्वना देनेके लिए उसके प्रियतमका सखा वसन्त वहाँ आया। उसे देख रतिका दुःख दुगुना हो उठा । वह पिछली बातें याद कर फूट फूटकर रोने लगी । अत्यन्त दुःखके कारण वह देहत्याग करना ही चाहती थी कि इतनेमें आकाशवाणी हुई 'शिवजी जिस समय पार्वतीका पाणि-ग्रहण करेंगे उस समय वे मदनको अवश्य प्राण-दान देंगे । तब तक तू अपनी देहरक्षा कर' (सर्ग ४) । अपनी नजरके आगे मदनका दहन देख पार्वतीको अत्यन्त निराशा हुई और वे शिवकी प्राप्तिके लिए कठोर तपश्चर्या करने लगीं । उनकी तपश्चर्यासे प्रसन्न होकर शिव ब्रह्मचारीका वेष धारण कर तपसे कृश-शरीर पार्वतीके पास आये । उन्होंने ब्रह्मचारीकी पूजा की । ब्रह्मचारीने उनसे यह प्रश्न किया कि सब प्रकारके अनुकूल सुखसाधनोंके होनेपर भी इस यौवनकालमें कठोर तपस्या करनेका कारण क्या है ? परन्तु पार्वतीकी सखीद्वारा ब्रह्मचारीको ज्ञात हुआ कि ये शिवजीपर मोहित हो चुकी हैं और उनको पानेके लिए ही घोर तपस्या कर अपने सुकुमार शरीरको कठिन कष्ट दे रही हैं। इतना हाल मालूम होनेपर ब्रह्मचारीने शिवजीकी खूब निन्दा की । उनके सर्पभूषणका, रक्तबिन्दु टपकनेवाले गजचर्मके दुपट्टेका, श्मशान-वासका, दरिद्रताका, तथा तीसरे नेत्रके होनेसे उत्पन्न हुई कुरूपताका खूब निन्दात्मक वर्णन किया और ऐसे कुरूप वरको पानेके लिए इतनी कड़ी साधना करनेका प्रत्याख्यान किया । ब्रह्मचारीके भाषणको सुनते ही पार्वतीका क्रोध भड़क उठा और उन्होंने उनकी बातोंका खण्डन कर अपना शिवजीको वरण करनेका अटल निश्चय सूचित किया । ब्रह्मचारी कुछ कहनेको ही थे कि पार्वती उठकर जाने लगी । तब शंकरने प्रगट होकर उन्हें दर्शन दिया और जानेसे रोककर कहा कि मैं तुम्हारी कठिन तपश्चर्यासे प्रसन्न होकर आजसे तुम्हारा दास हो गया हूँ (सर्ग ५)। इसके बाद शिवजीने अरुन्धतीसहित सप्तर्षियोंको

भेजकर पार्वतीका हाथ माँगा। हिमालयने पत्नीसे सलाह कर शङ्करका यह प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार किया (सर्ग ६)। शुभमुहूर्तमें पार्वतीके साथ शिवजीका परिणय हुआ। इस मांगलिक अवसरपर पार्वतीकी वेष-भूषाका, उनकी सखियों के द्वारा किये हुए परिहासका, विवाहके लिए प्रस्थान करते समय शिवजीके परिवारका, उनके पुर-प्रवेशके समय नगर-स्त्रियोंकी जल्द-बाजीका तथा विवाहोत्सवका विस्तृत और अत्यन्त रमणीय वर्णन कविने किया है (सर्ग ७)। विवाह होनेके बाद शिवने पार्वतीके साथ विविध भोगविलासमें सैकड़ों वर्ष बिता दिये (सर्ग ८)। तब इन्द्रादि देवताओंने अग्निको कबूतर बनाकर शिव-पार्वतीके विलास-स्थलपर भेजा। पहले तो शिवजीको बड़ा क्रोध आया किन्तु अग्निने उन्हें वस्तुस्थितिका पूरा ज्ञान कराया तब वे प्रसन्न हुए और उन्होने अपना वीर्य उसमें स्थापित किया। अग्निको यह सहन न हुआ तो उसने इन्द्रके कहनेसे स्वर्गकी गंगामें उस वीर्यको डाल दिया (सर्ग ९)। गंगा भी उसे धारण न कर सकी तो उसने वहाँ स्नान करने आई हुई छः कृत्तिकाओंके शरीरमें उसे डाल दिया। इससे उनको गर्भ रह गया। उस गर्भका भार षट्कृत्तिका सह न सकीं इसलिये उन्होंने वेतसवनमें छोड़ दिया और आप चली गईं (सर्ग १०)। उसी समय शिव और पार्वती विमानमें बैठे हुए उस मार्गसे जा रहे थे, उनकी दृष्टि उस बालकपर पड़ी। वे उसे अपने वीर्यसे उत्पन्न समझकर अपने घर उठा लाए। वह केवल छः दिनकी अवधिमें बड़ा होकर सकल शस्त्रों और शास्त्रोंमें पारंगत हो गया। इस तरह कुमारकी उत्पत्ति हुई (सर्ग ११)। आगे इन्द्रादि देवताओंको प्रार्थना करनेपर शिवजीने उसे देवसेनाका सेनापतित्व देकर स्वर्ग भेज दिया (सर्ग १२)। सेनानी स्कन्दको आगे कर देवताओंने तारकासुरपर चढ़ाई कर दी (सर्ग १३)। उसने भी लड़ाईकी तैयारी की और बुरे शकुन होनेपर भी कुमारके साथ उसने युद्ध किया। बड़ा लोमहर्षण युद्ध हुआ और अंतमें कुमारके बाणसे तारकासुर मारा गया। स्वर्गसे देवोंने कुमारपर पुष्पवृष्टि की। अब इन्द्र निश्चिन्त हो गया। (सर्ग १४–१७)।

'कुमारसम्भव' के १७ सर्गोंमें केवल ८ सर्गोंपर ही अरुणगिरिनाथ, मल्लिनाथ आदिकी टीकाएँ उपलब्ध हैं। इस काव्यका 'कुमारसम्भव' नाम होनेसे कुछ लोगोंका यह अनुमान है कि कविने कुमारके जन्मतककी घटनाओंका वर्णन किया होगा। किन्तु यह बात युक्तिसंगत नहीं है। कारण कि कुमारगुप्तके जन्मोत्सवपर उक्त काव्यकी रचना किए जानेसे, सम्भव है कालिदासने इस काव्यको यह नाम विशेष अभिप्रायसे दिया हो। इसके अतिरिक्त इन प्रथम ८ सर्गोंमें कुमारजन्म तक भी कथानककी प्रगति नहीं हुई है, यह बात ऊपर दिये हुए सारांशसे स्पष्ट होती है। अतः यह काव्य अधूरी ही रह गया होगा, ऐसा अनुमान कर सकते हैं। सातवें तथा आठवें सर्गमें शिवपार्वतीके

संभोगका वर्णन बहुत ही उत्तान तथा मर्यादारहित हुआ है और उसके सदभिरुचि के विरुद्ध होनेसे आनन्दवर्धनादि अलंकारशास्त्रियोंने कविको दोषी ठहराया है (ध्वन्यालोक, पृ. १४७)। कहते हैं कि शृङ्गारके नग्न वर्णनसे पार्वतीने क्रुद्ध होकर शाप दिया। फलतः यह काव्य अपूर्ण ही रह गया। टीकाकार अरुणगिरिनाथने इस किंवदन्तीका स्पष्ट उल्लेख किया है। इन बातोंसे पता चलता है कि कालिदासके समयमें ही इस तरहके आक्षेप होने लग गये थे। सम्भवतः इसीसे कालिदासने 'कुमारसम्भव' को अपूर्ण ही रहने दिया। कारण कुछ भी हो अष्टम सर्गके बादके सर्ग कालिदासके रचे हुए नहीं हैं। पहले भागके सर्गोंकी अपेक्षा दूसरे भागके सर्गोंकी श्लोकसंख्या कम है। साठ श्लोकोंसे कम श्लोकवाले सर्ग संपूर्ण 'रघुवंश' में दो तथा 'कुमारसंभव' के अष्टसर्गात्मक पहले भागमें एक ही है। इसके विपरीत 'कुमारसंभव' के उत्तरार्धके नव सर्गोंमें सात सर्ग ऐसे हैं जिनमें साठसे कम श्लोकसंख्या है। इन सर्गोंकी भाषाशैली भी पूर्वार्धकी भाषाशैलीकी अपेक्षा भिन्न कोटि की है। उपमा, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारोंका निर्वाह उस खूबीसे नहीं किया गया है जैसा कि कालिदासके अन्य ग्रन्थोंमें दीखता है। 'उपाविशत्सुरेन्द्रेणादिष्टं सादरमासनम्', (१०, ४) इत्यादि स्थानोंमें यतिभङ्ग, 'परित्यजध्वम्' (१२, ३६), 'मद्विग्रहमधि' (१०, १२), 'शत्रुविजेष्यमाणम्' (१३, २१) आदि अशुद्ध प्रयोग, 'च' 'हि' के समान पादपूरक अव्ययोंका अधिक मात्रामें प्रयोग, 'अहो अहो देवगणाः सुरेन्द्रमुख्याः शृणुध्वं वचनं ममैतत्।' (१२, ५४) जैसी नीरस रचनायें तो यही घोषित करती हैं कि 'कुमारसंभव' को अपूर्ण देखकर कालिदासके उत्तरकालीन निम्न कोटिके किसी कविने इसे बड़े साहसके साथ पूरा कर डाला। अश्वघोषकृत 'बुद्धचरित' के विषयमें भी यही बात कही जा सकती है। हम पिछले परिच्छेदमें इसपर प्रकाश डाल चुके हैं।

इस काव्यमें महादेव, पार्वती और मदन इनकी विविध चेष्टाओंके वर्णनमें कविने अपनी सारी शक्ति व्यय कर दी है। महादेव तथा पार्वती एक महान् असाधारण, दिव्य दम्पती हैं। एक त्रैलोक्यका पिता तो दूसरी जगन्माता—ऐसी अलौकिक विभूतियोंके मानसिक विकारोंका वर्णन करते समय अनौचित्यका परिहार करना अत्यावश्यक था। परन्तु यदि केवल अद्भुत रूपमें ही कवि वर्णन करता तो संभव है पाठक उन्हें इतने प्रेमसे न अपनाते। कविने इस मर्यादाको अत्यन्त कुशलतापूर्वक निभाया है। महान् इन्द्रियनिग्रही, सदैव तपश्चर्यामें संलग्न, चित्तको किंचित् भी चंचल होते देख उसका कारण ढूंढ़कर, कारणभूत कामदेवको प्राणान्त दण्ड देनेवाले, कठोरहृदय भगवान् शंकर पार्वतीकी उग्र तपश्चर्या तथा उनके सहज प्रेमसे प्रसन्न हो जाते हैं और फिर उनके साथ विवाहकी उत्सुकतासे प्रतीक्षा करते हैं। उनके साथ विविध विलासयुक्त

प्रणयकेलियाँ करते हैं । सन्ध्यावन्दनादि नित्य साधनानुष्ठानमें जब अधिक समय लग जाता है तो पार्वती रुष्ट हो जाती हैं । वे उनसे अनुनय-विनय करते हैं । इत्यादि बातोंका वर्णन कविने अत्यन्त रमणीय रूपमें किया है । अपने अनुपम सौंदर्यका जिन्हें बड़ा अभिमान है परन्तु मदनका दहन हो जाने पर जिन्हें बड़ी निराशा हुई और फिर महादेवकी प्राप्तिके लिये अत्यन्त घोर तपस्या करके जिन्होंने अपने अतिसुकुमार शरीरको कड़े कष्ट दिये, गुरुजनोंके सन्मुख अत्यन्त नम्र, किन्तु दुर्जनोंको अपने वाग्बाणोंसे घायल करनेवाली, पतिके संध्यावंदनमें अधिक समय लग जानेसे सपत्नीसमान मत्सरग्रस्त पार्वतीका वर्णन कविने बड़ी कुशलतासे किया है । उसी तरह विश्वमें अपना सर्वत्र स्थापित प्रचंड साम्राज्य देख अभिमानमूर्ति, साक्षात् योगिराज शंकरको भी मोहमें डालनकी गर्वोक्ति करनेवाला, किन्तु हृदयमें साशंक होनेके कारण नन्दीकी आँख बचाकर शंकरके आश्रममें चोरकी भाँति प्रवेश करनेवाला मदन भी बड़ी निपुणतासे चित्रित किया गया है !

पहले आठ सर्गोंके सभी वर्णन कविने बड़ी ही कुशलतासे किये हैं । फिर भी आरंभमें हिमालयका वर्णन, तीसरे सर्गमें आकस्मिक वसन्त ऋतुके आगमनसे वनश्रीका वर्णन, चौथे सर्गमें रति-विलाप, पंचम सर्गमें बटुवेशधारी शिव तथा तपस्विनी पार्वतीका संवाद—ये विषय बहुत ही उत्कृष्ट प्रसादपूर्ण शैलीमें अंकित किये गये हैं। इस काव्यमें शृङ्गारके संभोग और विप्रलम्भ इन दोनों भेदोंकी तथा करुणरसकी प्रधानता है । विस्तारभयसे इस काव्यमें वर्णित सभी उत्कृष्ट वर्णन यहाँ नहीं दिये जा सकते । फिर भी इनमेंसे कुछ उदाहरण पाठकोंके सन्मुख प्रस्तुत किये जा रहे हैं ।

आमेखलं संचरतां घनानां छायामधःसानुगतां निषेव्य ।
उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते शृङ्गाणि यस्यातपवन्ति सिद्धाः ।।

कुमार. १, ५.

हिमालयपर निवास करनेवाले सिद्ध पुरुष पर्वतके मध्यभागके चारों ओर घूमनेवाले मेघोंकी, नीचे शिखरपर पड़नेवाली छायाका सेवन करके जब वृष्टिसे ऊब जाते हैं तब ऊँचे ऊँचे शिखरोंपर जाकर सूर्यप्रकाशका आनंद लेते हैं।

कुबेरगुप्तां दिशमुष्णरश्मौ गन्तुं प्रवृत्ते समयं विलङ्घ्य ।
दिग्दक्षिणा गन्धवहं मुखेन व्यलीकनिःश्वासमिवोत्ससर्ज ।

कुमार. ३, २५.

जैसे वचन तोड़कर प्रियतमके चले जानेपर पत्नी विरहव्यथासे साँसें छोड़ती

है उसी तरह सूर्यने असमयमें ही उत्तर दिशाका आश्रय लिया तब मलयानिलके रूपमें दक्षिण दिशाने दुःख-निःश्वास छोड़े।

मदनदहनके पश्चात् रतिका विलाप पढ़कर ऐसे सहृदय पाठक विरल ही होंगे, जिनके आँसू न उमड़ पड़ें। स्वयं अपनी आँखोंके आगे पतिको भस्म हुआ देख रतिको पहले मूर्च्छा आती है। कुछ देर पीछे होश आने पर वह जमीनपर पड़ी हुई विलाप करती है। उसकी केशावली बिखर गई है और उसका विलाप सुनकर सारा वन रो उठता है। मदनके अनेक गुणोंका तथा उसके प्रणयविलासोंका स्मरण करके वह शोक करती है। यह वर्णन अत्यन्त हृदयद्रावक हुआ है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित श्लोक देखिए—

हृदये वससीति मत्प्रियं यदवोचस्तदवैमि कैतवम्।
उपचारपदं न चेदिदं त्वमनङ्गः कथमक्षता रतिः ।। कुमार. ४, ६.

"तुम तो कहा करते थे कि 'तू मेरे हृदयमें सदा रहती है'। परन्तु अब मुझे मालूम हुआ कि ये सब बनावटी बातें थीं। यह केवल मुझे खुश करनेके लिये ही कहते थे। नहीं तो तुम्हारे नष्ट हो जानेपर मैं कैसे अक्षत बनी रहती?" इस श्लोकमें शब्द बहुत सरल हैं, भाषा आलंकारिक नहीं, तो भी उसमें रतिविलापका वर्णन बड़ी मार्मिकताके साथ हुआ है।

पंचम सर्गमें ब्रह्मचारीका छलपूर्ण भाषण और उसपर पार्वतीका दिया हुआ मुँहतोड़ उत्तर भी बेजोड़ हैं। शंकरके अकिंचनत्व और उनके श्मशान-निवास आदिके दोष जिस समय ब्रह्मचारीने पार्वतीको सुनाये उस समय पार्वतीने निम्नलिखित उत्तर दिया—

अकिंचनः सन् प्रभवः स सम्पदां त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः।
स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः ।।
कुमार. ५, ७७.

'स्वयं धनहीन होकर भी वे दूसरोंको सम्पदा देते हैं, श्मशानमें रहकर भी तीनों लोकोंके स्वामी हैं, भयंकर रूप होनेपर भी लोग उन्हें शिव (कल्याणकारी) कहते हैं। सच बात तो यह है कि उनके संबंध में सच्चा ज्ञान किसीको नहीं है।' भगवान् शंकरकी जात-पाँत और जन्म किसीको मालूम नहीं है, ब्रह्मचारीके इस आक्षेपका उत्तर पार्वतीने इस प्रकार दिया—

विवक्षता दोषमपि च्युतात्मना त्वयैकमीशं प्रति साधु भाषितम्।
यमामनन्त्यात्मभुवोऽपि कारणं कथं स लक्ष्यप्रभवो भविष्यति ।।
कुमार. ५, ८१.

'निर्दोष शंकरमें तू जो दोष ही दोष दिखानेकी चेष्टा कर रहा है सो इस अनधिकार चेष्टामें भी तेरे मुखसे एक बात तो सच निकल ही गई है । तूने जो यह कह दिया कि शिवके जन्म का कोई ठिकाना नहीं, सो बहुत ठीक है । ब्रह्मा तककी उत्पत्ति जिनसे हुई है उन अनादि शिवके जन्मका पता किसीको कैसे लग सकता है ?'

आत्मानुभूति के सार-सर्वस्व भरी हुई अर्थान्तरन्यासकी उक्तियाँ कालिदासकी असाधारण विश्वव्यापिनी प्रतिभाको प्रदर्शित करती हैं — 'एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवांकः ।' (१, ३) (जहाँ सैकड़ों गुण हैं वहाँ एक जरासे दोषके कारण किसीके महत्त्वमें कमी नहीं आ सकती), 'स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते ।' (४, २६) (अपने संबंधियों और इष्टमित्रोंके आगे भरा हुआ दुःख इस प्रकार बाहर निकल पड़ता है, मानों हृदयके किवाड़ खुल गये हों), 'न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि हृत।' (५, ४२) (रत्न किसीको ढूँढता नहीं, अपितु लोग ही उसे ढूँढ़ते हैं) 'मनोरथानामगतिर्न विद्यते ।' (५, ६४) (मनोरथों को कुछ भी दुष्प्राप्य नहीं) इत्यादि । ऐसी बहुत सी उक्तियाँ हैं जो आज भी प्रसंगानुसार कहावतोंके रूपमें प्रचलित हैं ।

कालिदासने 'कुमारसंभव' का कथानक किस ग्रन्थसे लिया इस विषयमें विद्वानोंमें मतभेद हैं । शिवपुराण तथा स्कंदपुराणमें कार्त्तिकेयकी कथाका वर्णन है । उस वर्णनसे कालिदासके 'कुमारसंभव' का वर्णन बहुत कुछ मिलता जुलता है । उदाहरणार्थ नीचे कुछ श्लोक दिये जाते हैं—

१ शिवपुराण—द्वयोरपि भवान् श्रेष्ठः सर्वगः सर्वशक्तिमान् ।
वज्रं च निष्फलं स्याद्वै त्वं तु नैव कदाचन ।।

(दोनों में आप श्रेष्ठ हैं, सर्वगति और सर्वशक्तिमान् हैं। वज्र चाहे निष्फल हो जाय किन्तु आप कभी असफल नहीं हो सकते।)

कुमारसंभव——

वज्रं तपोवीर्यमहत्सु कुण्ठं त्वं सर्वतोगामि च साधकं च। ३, १२.

(तपश्चर्यासे शक्तिशाली व्यक्तियों पर वज्रका प्रभाव कुण्ठित हो जाता है, किन्तु तुम सर्वत्रगति और कार्यसाधक हो।)

२ शिवपुराण—अन्येषां गणना नास्ति पातयामि हरं यदि।

कुमारसंभव—

कुर्यां हरस्यापि पिनाकपाणेर्धैर्यच्युतिं के मम धन्विनोऽन्ये ।। ३, १०,

(पिनाक धनुष-धारी शंकरको भी धैर्यसे डिगा सकता हूँ, अन्य धनुषधारियोंकी तो गणना ही क्या? ')

इस विलक्षण अर्थ-साम्यके कारण कालिदासने शिव और स्कंदपुराणसे अपनी कथा ली है, ऐसा कई लोग कहते हैं। पर हमारी समझमें यह युक्ति-संगत नहीं। इस समय जो अठारह पुराण उपलब्ध हैं, लोगोंकी धारणा है वे व्यासजीके बनाये हुए हैं। वस्तुतः इन पुराणोंका बहुतसा अंश बहुत पीछेका बना हुआ है। तब वे पुराण कालिदासके समयमें मौजूद थे इसका कोई पर्याप्त प्रमाण नहीं मिलता। उलटे 'कुमारसंभव' में विविध प्रसंगोंका जो उत्कृष्ट गुंफन हुआ है वह कालिदासका अपना है, यह बात उनके और दूसरे ग्रंथोंसे स्पष्ट होती है। विवाहके अनन्तर भगवान् शंकर अंगदेशमें तपश्चर्या कर रहे थे। वहाँ मदनने पहुँचकर तपोरत शिवको प्रेमलीलामें फँसानेकी चेष्टा की, उस समय शंकरने क्रुद्ध होकर उसे अनङ्ग कर दिया—यह कथा रामायणके बालकाण्डमें २३ वें सर्ग में आई है। यह कथा कालिदासको अवश्य ज्ञात रही होगी*। कलाकी दृष्टिसे कविने उसमें परिवर्तन करना आवश्यक समझा। अतः पार्वतीके विवाहके पूर्व हिमालयपर मदनका दहन कालिदासने कराया है। बाह्य रूप पर ही अवलंबित रहनेवाला प्रेम स्थायी नहीं होता। किन्तु जो अनेक संकटों और आपत्तियोंमें भी अविचल रहता है वही प्रेम सत्य है, इस मतका समर्थन कविने इस प्रसंगमें किया है। इस मतका विकास आगे चलकर 'शाकुंतल' में पूर्णताको प्राप्त हुआ। इससे यह प्रतीत होता है कि 'कुमारसंभव' के आरंभिक आठ सर्गोंमें जो कुछ वर्णन हुआ है वह कालिदासकी अपनी संपत्ति है और उसीका अनुकरण शिवपुराण तथा स्कंदपुराण आदिमें किया गया है। बादके सर्गोंमें किसी अन्य कविने स्कंद-पुराणान्तर्गत घटनायें लेकर 'कुमारसंभव' को पूरा किया है—यह डॉ. विंटरनित्सका मत है† और वह विश्वसनीय भी है।

मेघदूत

हम पहले कह आये हैं कि कालिदास कुछ समय तक राजनैतिक-कार्यवश विदर्भमें रहे थे। संभवतः उसी समय इस खण्ड-काव्यकी रचना हुई होगी। इस काव्यका कथानक इस प्रकार है।

अलकाधिपति कुवेरके एक सेवक यक्षने प्रमादवश कुछ अपराध किया। कुवेरने उसे एक सालके देश-निर्वासनका दंड दिया। शाप-पीडित यक्ष अलका-नगरी छोड़ जनकात्मजाके स्नानसे पवित्र जलवाले रामगिरि नामक पर्वत-

* इस प्रकारका उल्लेख 'रघुवंश' के ११, १३ में आया है। किन्तु संभवतः यह श्लोक प्रक्षिप्त हैं। कुछ प्राचीन टीकाकारोंने भी इस श्लोककी व्याख्या नहीं की है।

† Geschichte der Indischen Litteratur, Band II, 58.

पर जाकर रहने लगा। आठ महीने व्यतीत होने पर आषाढका अन्तिम दिन आया। आकाशमें बादल घिर आये। इस समय वर्षा ऋतुके आरम्भमें मेघ-दर्शनसे यक्षका पत्नी-वियोग-दुःख भड़क उठा। मेरी पत्नीकी भी मेरे विरहमें यही दशा हुई होगी, ऐसा सोचकर विरही यक्षने मेघको दूत बनाकर अपनी कुशलवार्ता प्रियतमाके पास भेजनेका निश्चय किया। धुवाँ, आग, पानी, हवा आदि तत्त्वोंसे बना हुआ अचेतन मेघ मेरा सन्देश किस प्रकार ले जा सकेगा, यह संशय कामार्त यक्षके मनमें नहीं आया। उसने उसी पर्वतपर नवविकसित कुटज पुष्पोंसे मेघकी पूजा तथा स्तुति की और उसे अलकानगरीको जानेका मार्ग बताया। मालप्रदेश, आम्रकूट पर्वत, और विन्ध्याचलकी प्रचण्ड चट्टानोंमें बिखरी हुई नर्मदाका वर्णन करके यक्षने मेघको दशार्ण देशकी राजधानी विदिशाका मार्ग बताया।

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रान्तिहेतो-
स्त्वत्संपर्कात्पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः।
यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्‌गारिभिर्नागराणा-
मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि ।। मेघ. २५.

'विदेशाके पास ही 'नीचैर्गिरि' नामक पर्वत है। मेघ, वहाँ थोड़ी देर ठहरकर विश्राम कर लेना। उसपर कदम्बके बड़े बड़े फूल खिले देख तुझे ऐसा मालूम होगा, जैसे तुझसे भेंट होनेके कारण यह पर्वत पुलकित हो उठा है। नीचैर्गिरि-पर सुंदर शिलागृह हैं जिनमें वेश्याओंके अंगरागकी सुगंध फैलती है, जिससे विदिशावासी नागरिकोंका उग्र यौवन प्रकट होता है।'

इसके उपरान्त यक्षने मेघसे मार्गमें न पड़ते हुए भी उज्जैनको जानेका आग्रह किया। उज्जैनका वर्णन कविने बहुत ही विस्तारपूर्वक और सुंदरताके साथ किया है। उदाहरणके लिए महाकालके मंदिरमें संध्याकालमें आरतीके समय वेश्या-नृत्यका वर्णन देखिए—

पादन्यासक्वणितरशनास्तत्र लीलावधूतै
रत्नच्छायाखचितवलिभिश्चामरैः क्लान्तहस्ताः।
वेश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान् प्राप्य वर्षाग्रबिन्दू-
नामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान्।। मेघ. ३७.

'उस उज्जैनमें महाकालेश्वरके मन्दिरमें नृत्य करते समय जिनकी करधनी बज रही है वे हाथोंमें रत्नजडित दंडयुक्त चँवरोंको हिलानेसे थकी हुई वेश्यायें

तेरे वर्षाके प्रथम जलकी बूंदोंसे नखोंके घावोंमें सुख पाकर तुझपर लंबे कटाक्ष-पात करेंगी।'

इसके उपरान्त मार्गमें मिलनेवाली गंभीरा नदी, देवगिरिनामक पर्वतपर स्थित कार्त्तिकेय के मंदिर, चर्मण्वती (चंबल) नदी, दशपुर (आधुनिक मंदसोर), ब्रह्मावर्त देश, कुरुक्षेत्र, सरस्वती और गंगा आदि नदियोंका तथा अन्तमें हिमालय पर वसी हुई अलकानगरीका वर्णन बहुत थोड़ेमें किन्तु अत्यन्त रमणीयताके साथ कल्पनावैचित्र्यके बाहुल्यसे किया है। रामगिरिसे लेकर अलकानगरी तक मिलनेवाले पर्वत, देश, नगर, ग्राम, वन, उपवन, नदी आदिका वर्णन अत्यन्त रमणीय होनेसे यह भाग बहुत ही चित्ताकर्षक हो गया है।

उत्तरार्धमें कविने अलकानगरीका तथा यक्ष-गृहका वर्णन करते समय अपनी प्रतिभा द्वारा एक नूतन सृष्टिकी रचना कर कल्पना-शक्तिको स्वच्छंद विहार करनेका अवसर दिया है। आरम्भमें यक्ष अलकानगरीका वर्णन करते हुए कहता है–'हे मेघ! अलकानगरीके भवन गगनचुंबी हैं। वे बढ़िया बढ़िया चित्रोंसे सुसज्जित हैं। वहाँ मृदंग बजा करते हैं और वे रत्नखचित हैं। वहाँके निवासी सदैव तरुण रहते हैं और यौवनका स्वच्छंद आनन्द लूटते हैं। वहाँ वृक्ष और लतायें पुष्प-फलके भारसे नम्र, मयूर आनन्दित तथा रात्रि चन्द्रप्रकाशयुक्त होती हैं। वहाँ महलोंके स्फटिकमणियुक्त पृष्ठभागपर बैठकर तेरी गम्भीर ध्वनिके समान ही निकलती हुई मृदंग-ध्वनिको सुनते हुए यक्षजन अपनी प्रेयसियोंके साथ मदिराका पान करते हैं। वहाँ चित्र-विचित्र बढ़िया वस्त्र, अलंकारके लिए पुष्प, पल्लव, पैरमें लगानेके लिए लाक्षाराग इत्यादि स्त्रियोंके शृङ्गारकी सारी सामग्री कल्पवृक्षोंसे मिलती है। अलकामें भगवान् शंकर निवास करते हैं, इसलिए मदन अपने धनुष और बाणका उपयोग कर ही नहीं पाता। तथापि चतुर सुन्दरियाँ मदनका यह कार्य अपने अमोघ कटाक्षों द्वारा पूरा करती हैं। इसी रम्य नगरीमें यक्षराज कुबेरके प्रासादके उत्तरकी तरफ मेरा गृह है जिसमें इन्द्र-धनुषके समान रमणीय वन्दनवार बँधे हैं, जिनके कारण मेरा गृह तुझे दूरसे ही दीख पड़ेगा। मेरे उस घरके उद्यानमें मेरी प्रियतमाका लगाया हुआ, सहजहीमें हस्तगत होने-वाला पुष्पभारसे नम्र एक मन्दार नामक वृक्ष है। उसीके निकट एक सुन्दर बावली है जिसकी मरकत मणिकी सीढ़ियाँ हैं और उसमें हमेशा सुवर्णकमल खिले रहते हैं। इस वापीके कूलपर नीलमणि तथा सुवर्णकदलीकुंजवेष्टित क्रीडा-पर्वत है। वहीं माधवीमण्डपके समीप तुझे अशोक और बकुल वृक्ष दीख पड़ेंगे। इन वृक्षोंके बीचमें रत्नखचित एक सुवर्ण स्तंभपर स्फटिक-शिला है उसपर

प्रतिदिन सायंकालको मेरी प्रिया कंकण-नादमधुर करतलशब्दसे मयूरको नृत्य-कलाकी शिक्षा देती है। इन सब चिन्होंपर ध्यान रखते हुए मेरे घरका पता तू लगाना। उस क्रीडा-पर्वतपर बैठकर यदि तू अपनी विद्युत-दृष्टिसे मेरे घरका अन्तर्भाग देख लेगा तो तुझे यही दिखाई देगा—

आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा
मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती ।।
पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थां
कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ।। मेघ. ९०.

'जिस समय तू मेरे घर पहुँचेगा उस समय मेरी प्रियतमा मेरी कुशल-कामनानिमित्त देवाराधना कर रही होगी, अथवा विरहव्यथासे दुर्बल मेरे शरीरका अनुमान करके उसी भावको चित्रित करनेवाला मेरा चित्र खींच रही होगी,या पिंजड़ेमें बैठी हुई मीठी बोली बोलनेवाली मैनासे पूछ रही होगी—'अरी रसिके, क्या तुझे कभी मालिककी याद आती है? तुझे तो वे बड़ा प्यार करते थे।' या वह मैले कपड़े पहने अपनी गोदमें वीणा रखकर मेरे संबंधमें रचे हुए किसी गीतको गा रही होगी और आँसुओंकी झड़ीसे भीगे हुए वीणाके तारोंको पोंछ कर पूर्वाभ्यस्त मूर्छना (स्वरलहरी) को बार बार भूल जाती होगी, या भूमिपर बिखरे हुए फूलोंको गिन गिन कर वह मेरी शापकी अवधिके दिनोंको गिनती होगी। वह विरहसे अत्यन्त कृश हो गई होगी। अभ्यंग स्नान न करनेसे उसके केशोंकी बुरी दशा हुई होगी। वे रूखे हो गये होंगे और कपोलों तक लटक रहे होंगे। वस्त्र और अलंकारका पहनना जिसने छोड़ रक्खा हो, अत्यन्त दुःखसे जो पर्यंकपर लेटी हुई हो, ऐसी मेरी प्रियाको देख तुझे भी उसकी इस दशापर तरस आवेगा, और तू भी नूतन जलकणरूपी अश्रु बहावेगा उस समय यदि मेरी प्यारी सो गई हो तो एक पहर तक गर्जना न कर उसके जागनेकी राह देखना। कारण यह है कि महान् प्रयाससे प्राप्त स्वप्नावस्थामें वह मेरे गाढ़ालिंगनका आनन्द अनुभव कर रही होगी। उस समय तू अपनी गंभीर गर्जनाद्वारा विघ्न न डालना। जब वह तेरे जलविन्दुसम्मिश्रित शीतल वायुके झोकोंसे जाग उठे तब मेरा कुशल-संवाद कहते हुए यह सन्देश सुनाना—

श्यामास्वंगं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रछायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
हन्तैकस्थं क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ।। मेघ. १०९.

'प्यारी! मैं अहर्निश तेरी रूपमाधुरीका चिंतन किया करता हूँ और अपने नेत्र कृतार्थ करनेके लिए भिन्न भिन्न वस्तुओंमें तेरी समता ढूँढनेमें लगा रहता हूँ। तेरे कोमल अंगकी समता मुझे प्रियंगुलतामें मिल जाती है। तेरी दृष्टिकी समता चंचल चकित हरिणियोंके चितवनमें मिल जाती है। तेरे स्वच्छ मुखकी समता चन्द्रमामें मिल जाती है। तेरे केशोंकी समता मोरोंके परोंमें मिल जाती है। तेरे भ्रुकुटि-विलासकी समता नदीकी पतली पतली चंचल लहरोंमें मिल जाती है। परन्तु निष्ठुर, तेरे सर्वांगकी समता किसी एक वस्तुमें कहीं भी एकत्र देखनेको नहीं मिलती।'

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया-
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।
अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः॥ मेघ. ११०.

'हे प्रिये, मैं कभी कभी मन ही मन यह अनुमान करता हूँ कि तू रूठकर मानिनी बनी हुई बैठी होगी। अतः तुझे मनानेके लिए पत्थरकी शिलापर गेरूसे तेरी तस्वीर खींचता हूँ। परंतु ज्यों ही मैं अपना मस्तक तेरे चरणोंपर रखना चाहता हूँ त्यों ही मेरी आँखोंमें आँसू उमड़ आते हैं और मेरी दृष्टि वंद हो जाती है। मुझे तेरा वह चित्र दिखाई नहीं देता। मुझे मालूम न था कि कृतान्त इतना क्रूर और इतना निर्दयी है जो हम दोनोंके इस काल्पनिक संयोग को भी सहन नहीं कर सकता।'

स्वप्नमें तेरा दर्शन होते ही तेरे आलिङ्गनसुखके लिए मैं अपने हाथ फैला देता हूँ। मेरी यह करुणाजनक अवस्था देखकर वनदेवताओंके नेत्रोंसे वृक्षोंके पल्लवोंपर मोतियोंके समान अश्रु-बिंदु गिरते हैं। मैं बड़े धैर्य और विवेकसे यह विरह-दुःख सहन कर रहा हूँ। प्यारी! तू भी मेरी ही तरह उसे सहन कर क्योंकि—

कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण॥मेघ. ११४.

'सुख दुःख सदा एकसा नहीं रहता। जिसे दुःख मिलता है उसे बादमें सुख भी मिलता है। रथके पहिएकी तरह ये दोनों क्रमसे फिरा करते हैं। कभी सुख सामने आता है कभी दुःख।' भगवान् विष्णुके अपनी शेषशय्या त्याग कर उठते ही मेरे शाप का अंत हो जायगा। केवल चातुर्मास्यकी अवधि है। तब तक तू यह दुख सहन कर। स्वतंत्रता प्राप्त करते ही मैं तुझे अपने साथ ले शरद

ऋतुकी शुभ्र ज्योत्स्नामें नाना प्रकारकी प्रणय-क्रीड़ाका सुख अनुभव करूँगा।' हे मेघ! मेरी प्रार्थना पर ध्यान देकर अथवा मुझपर प्रेम होनेके कारण अनुकम्पासे मेरा काम पूरा कर। वर्षाकालमें अत्यन्त सुन्दर बनकर तू अपने वांछित स्थानको चला जाना। मेरे समान तुझे अपनी प्रेयसी विद्युल्लतासे कभी वियोग न हो।'

एक सौ बीस श्लोकोंके इस खण्डकाव्यमें कविने अपनी सारी शक्ति खर्च कर डाली है। इसमें उसकी सौन्दर्यान्वेषिणी दृष्टि और कलामर्मज्ञता स्पष्ट रूपसे सिद्ध होती है। कुशल चित्रकार जिस तरह तूलिकाकी सहायतासे चार छः रेखाओंमें सुन्दरसे सुन्दर चित्र बना देता है उसी तरह कविने बहुत ही अल्प शब्दोंमें मृदुल और अत्यन्त रमणीय उदार भावोंका चित्र उतारनेमें कमाल किया है। इस खण्ड-काव्यमें कई एक ऐसे स्थल हैं जिनपर कुशल चित्रकार भावपूर्ण चित्र तैयार कर सकता है। इस काव्यकी शब्द-रचनाका संघटन चमकते हुए हीरोंकी तरह निर्दोष तथा उज्ज्वल है। इसमें अर्थरूपी रत्नोंको, उपमा, उत्प्रेक्षा और अर्थान्तरन्यास आदि सुन्दर अलंकारोंमें जड़ देनेसे उनकी आभा और भी द्विगुणित हो गई है। यदि कालिदासने केवल 'मेघदूत' की ही रचना की होती तो भी वह संसारके महाकवियोंकी श्रेणीमें उच्चस्थान प्राप्त कर लेते। यह काव्य अत्यन्त सरस तथा अत्युत्कृष्ट है। निम्न-लिखित कुछ उदाहरणोंसे पाठकोंको इसका परिचय मिलेगा—

चम्बल नदीका परिचय देते हुए यक्ष मेघसे कहता है—

त्वय्यादातुं जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे
तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात्प्रवाहम्।
प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्य दृष्टी-
रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम्।। मेघ. ४८

'उस चर्मण्वती नदीका प्रवाह बहुत चौड़ा है। पर आकाशचारी देवताओंको दूरसे वह पतला जान पड़ता है। उन्हें उसकी पतली धार पृथ्वीके कंठमें पड़ी हुई मोतियोंके हा के सदृश दिखाई देती है। भगवान् विष्णुके वर्णको चुरानेवाले श्यामशरीर मेघ, तू जब उस नदीका जल पीनेके लिए नीचे झुकेगा तब उन गगनचारी देवताओंको ऐसा मालूम होगा जैसे मोतियोंके हारके बीचोंबीच एक बड़ा-सा नीलम जड़ दिया गया हो।'

इस श्लोकमें चंबल नदीके शुभ्र जलप्रवाहपर नील मेघके झुकनेके कारण उसपर इन्द्रनीलमणिमध्ययुक्त मुक्त हारकी सुंदर उत्प्रेक्षा कितनी हृदयंगम है।

हिमालयपर स्थित अलकापुरीका वर्णन देखिए—

तत्स्योसंगे प्रणयिन इव स्रस्तगंगादुकूलां
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन्।
या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना
मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम् ।।मेघ. ६५.

'हे कामचारी मेघ! उस कैलास पर्वतके अंकमें गंगाजीके ठीक तटपर अलका नामक नगरी है। वह मेरी निवासभूमि है। तू उसे देखते ही पहचान लेगा। कैलासकी प्रांतभूमिमें जान्हवीके किनारे बसी हुई वह नगरी उस रमणी सदृश मालूम होती है जो अपने प्रियतमकी गोदमें बैठी है और जिसकी सफेद साड़ीका अंचल हवासे उड़ रहा है। स्वच्छ जलकी बड़ी बड़ी बूंदें बरसाने वाले श्यामवर्ण मेघों को वह अपने ऊँचे ऊँचे महलोंके ऊपर इस तरह धारण कर लेती है जिस तरह बड़े बड़े मोतियोंसे गुंथे हुए केश-कलापको कामिनी अपने मस्तकपर धारण करती है।'

इस श्लोकमें श्लेष और उपमाका सुंदर संयोग हुआ है। 'कुमारसंभव' की तरह इस काव्यमें भी कविने स्थान स्थान पर अर्थान्तरन्यासका उपयोग किया है। 'कामार्त्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु' (कामीजन चेतन और अचेतन पदार्थोंका भेद नहीं जानते), 'रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय' [सब खाली चीजें हलकी होती हैं। (निर्धनका सब जगह अनादर होता है।) परन्तु भरपूर होनेसे भारीपन आता है। (धनिकोंका सब जगह आदर होता है।)]; 'स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु' (रमणियोंका अपने प्रियतमके प्रति प्रदर्शित हावभाव ही उनकी पहली प्रार्थना है।); 'प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा' (जिनका अन्तःकरण कोमल है, उनका बर्ताव प्रायः दयायुक्त होता है), इत्यादि सुंदर उक्तियोंसे बीच बीचमें इस काव्यकी शोभा द्विगुणित हो गई है।

इस काव्यमें सर्वत्र विप्रलंभशृङ्गार-वर्णनका ही साम्राज्य दिखाई देता है। विशेष कर उत्तरभाग में यक्ष अपनी और अपनी पत्नीकी विरहावस्थाका वर्णन जिन श्लोकोंमें करता है वे श्लोक अत्यंत करुणोत्पादक हैं। विरहिणी यक्षपत्नीका वर्णन करते समय कालिदासने एक आदर्श गृहिणीका उत्तम चित्र अंकित किया है। वह अन्य नायिकाओंकी तरह सिर्फ सुन्दरी ही नहीं अपितु विविधकलाप्रवीण, सहृदया, सच्ची प्रेमिका और आदर्श पतिव्रता है। ऐसी स्त्रीकी विरहावस्थाका चित्र कविने अत्यन्त कौशलसे चित्रित किया है।

इस काव्यमें सर्वत्र मन्दाक्रान्ता नामक छंदका ही प्रयोग किया गया है। 'कुमारसंभव' के समान अनुष्टुभ, उपेन्द्रवज्रा, वियोगिनी, रथोद्धता आदि सरल छन्दोंका प्रयोग 'मेघदूत' में नहीं है। इन छन्दोंकी अपेक्षा मन्दाक्रान्ता वृत्तकी रचना कठिन है। तथापि इस बड़े वृत्तमें कल्पनाको मूर्तिमान् करनेका कविको बहुत कुछ अवकाश मिलता है। इस छंदके नामानुसार मन्दगति होनेसे विप्रलंभ-शृङ्गारके वर्णनके लिए यह वृत्त सर्वथा उपयोगी भी है। कालिदाससे पहलेके कवियोंने इस वृत्तमें रचना नहीं की थी। हरिषेणनामक कविकी प्रयाग-स्थित शिला-स्तंभकी प्रशस्तिमें एक स्थानपर मन्दाक्रान्ता वृत्तका उपयोग हुआ है। परन्तु इस वृत्तको लोकप्रिय बनानेका श्रेय कालिदासको ही है। कालिदासने 'मालविकाग्निमित्र' में इस वृत्तका सर्वप्रथम उपयोग किया है, पर 'मेघदूत' की तरह उतनी सफाई से नहीं। 'मेघदूत'में आरम्भसे लेकर अन्त तक इस छंदका बड़ी ही सरसतासे निर्वाह किया गया है।

'मेघदूत' का समीक्षण समाप्त करनेसे पहले एक दो बातोंपर प्रकाश डालना बहुत आवश्यक है। यक्ष अलकापुरीसे निर्वासित होकर जिस रामगिरिपर रहनेके लिए गया था वह कहाँ है इसके बारेमें विद्वानोंमें बहुत मतभेद हैं। कुछ लोगोंका मत है कि मध्यप्रदेशकी भूतपूर्व सरगुजा रियासतके अन्तर्गत रामगढ़ नामक पर्वत ही रामगिरि है। राम, सीता तथा लक्ष्मणने यहाँ वनवासके समय स्नान किया था—ऐसी परंपरागत जनश्रुति है। 'मेघदूत' में दिये वर्णनके अनुसार (श्लोक १२) यहाँ एक शिलापर श्रीरामचन्द्रजीके चरणचिन्ह अब तक बने हुए हैं। यहाँपर बहुतसे प्राचीन भग्नावशेष भी विद्यमान हैं। इस पहाड़ीपर सीताबेंगा तथा जोगीमारा नामक गुफाओंमें ईसासे तीन सौ वर्ष पूर्वके खुदे हुए शिलालेख विद्यमान हैं। इससे मालूम होता है कि यह स्थान अत्यन्त प्राचीन है। फिर भी रामगढ़ ही रामगिरि होगा, यह मत सर्वमान्य नहीं है। कारण यह है कि यह पर्वत नर्मदा नदीसे ईशानकी ओर है, दक्षिणकी ओर नहीं। 'मेघदूत'में यक्षने 'रामगिरिसे उत्तर दिशामें जानेपर पहले माल प्रदेश, फिर आम्रकूट पर्वत और नर्मदा नदी मिलेगी' ऐसा मेघसे कहा है। कालिदास अपने काव्यमें इस प्रकारकी भौगोलिक भूल रहने देंगे यह संभव नहीं है। तब 'मेघदूत' में वर्णित रामगिरिको हमें अन्यत्र खोजना पड़ेगा। इस विचारसे तो नागपुरके निकट रामटेक नामक पर्वत ही रामगिरि हो सकता है। यह स्थान बहुत प्राचीन कालसे प्रसिद्ध है। यहाँ वाकाटक राजा द्वितीय प्रवरसेनके समयका एक ताम्रपत्र मिला है और इसी राज्यान्तर्गत विदर्भ देशके ऋद्धपुरमें मिले हुए ताम्र-पत्रपर 'रामगिरि-

स्वामिनः पादमूलात्' ऐसा उल्लेख है। इनसे यह सिद्ध होता है कि वर्तमान रामटेक ही 'मेघदूत'का रामगिरि रहा होगा। इस पर्वतके पास ही एक विशाल टीला संशोधकों द्वारा अन्वेषणकी राह देख रहा है। वहाँकी पुरानी ईंटोंके आकारसे विशेषज्ञोंने यह वात स्थिर की है कि वे गुप्तकालीन होंगी और यह स्थान उस समय प्रसिद्ध रहा होगा। इसके पास ही वाकाटकोंकी नन्दिवर्धन राजधानी थी। मालप्रदेश इसके उत्तरमें सतपुड़ा पर्वतके पठारपर रहा होगा। कल्याणके चालुक्योंके एक शिलालेखमें लिखा है कि द्वितीय आचुगि राजाने 'माल' देश पर विजय पाके पश्चात् जबलपुरके समीप त्रिपुरीके हैहयवंशी राजा को पराजित किया था। इसके बाद थोड़ासा पश्चिम में मुड़कर पुनः (भूयः) उत्तर के मार्ग से जाने पर मेघ को आम्रकूट पर्वत दिखाई देनेवाले था। यह आम्रकूट अमरकंटक नहीं किन्तु छिंदवाडा जिले में अमरवाडा (आम्रवाटक) गांव के उत्तर में स्थित सतपुड़ा पर्वत का शिखर होगा। इसके सविस्तर विवरण-के लिए हमारा 'मेघदूत में रामगिरि अर्थात् रामटेक', पृ. ३२–३४ देखिए

द्वितीय चन्द्रगुप्त की बेटी तथा द्वितीय प्रवरसेनकी माता प्रभावतीगुप्ता भगवान् रामचंद्रकी पादुकाओंकी पूजाके लिए रामटेक जाती थी, यह बात उसके ऋद्धपुरके ताम्र-पत्रमें लिखी है। वैसे ही कालिदास भी वहाँ गये होंगे और यहीं उन्हें 'मेघदूत' काव्यकी मौलिक कल्पना सूझी होगी। अपनी इस कल्पनाको विस्तृत करनेके लिए उन्होंने वाल्मीकि-रामायणसे सहायता ली होगी। वाल्मीकि-रामायणमें सम्पाति गृध्रने हनुमान् आदि वानरोंको लंकाका रास्ता बतलाया था। हनुमान् समुद्र पार कर लंका गये। वहाँ अशोक-वाटिकामें उन्होंने अति दीन दशामें डूबी हुई सीताको देखा। रामचन्द्रकी मुद्रिका उन्होंने सीताको परिचयरूपमें दी। रामायणमें रामचन्द्रकी विरहावस्थाका वर्णन निम्नलिखित श्लोकमें किया है—

अनिद्रः सततं रामः सुप्तोऽपि च नरोत्तमः।
सीतेति मधुरां वाणीं व्याहरन् प्रतिबुध्यते ।।
दृष्ट्वा फलं वा पुष्पं वा यच्चान्यत् स्त्रीमनोहरम्।
बहुशो हा प्रियेत्येवं श्वसंस्त्वामभिभाषते ।। सुन्दरकाण्ड, ३६, ४४–४५.

इन श्लोंकोकी और 'मेघदूत' की कल्पनामें जो समता है वह पाठकोंके ध्यानमें सहजही आ सकती है। 'मेघदूत' में यक्षने मेघको अलकाका मार्ग बतलाया है और निशानी भेजनेकी सुविधा न होनेसे उसने मेघके द्वारा प्रियतमाको विश्वास दिलानेके लिए अपनी कुछ अतीत-स्मृतियाँ ही बतलाई हैं। यक्षने

इसके साथ साथ यह भी कहा कि "मैं तेरे पतिका मित्र हूँ और उसका सन्देश लेकर आया हूँ" जब तू ऐसा कहेगा तो जिस प्रकार सीताने हनुमान्का सम्मान किया था उसी प्रकार मेरी प्रियतमा भी तेरा सम्मान करेगी।" (भर्तुर्मित्रं प्रियम् इत्यादि। १०५) इससे यह मालूम होता है कि उक्त प्रसंग कविके नेत्रोंके आगे वर्तमान था और उसने उसका उपयोग भी किया है। उपर्युक्त वर्णन में रामायण और मेघदूतमें प्रसंगसाम्य तथा कल्पनासाम्य होने पर भी अन्य स्थलोंमें कालिदासकी प्रतिभाने स्वतंत्र होकर अत्यन्त उत्कृष्ट सृष्टिका निर्माण किया है। अलकापुरीको जानेवाले मार्गमें मिलनेवाले नगर, ग्राम, पर्वत, नदी आदिके वर्णन करनेमें तथा अलका नगरीमें यक्षके आवासका और उसकी प्रियतमाकी विरहदशाका वर्णन करनेमें कालिदासने कमाल कर दिया है। वे इसमें किसीके ऋणी नहीं हैं यह निस्सन्देह कहा जा सकता है।

सेतुबन्ध

विदर्भ देशमें रहते समय कालिदासने 'सेतुबन्ध' नामक काव्यकी रचनामें महाराज द्वितीय प्रवरसेनको वहुत कुछ सहायता दी होगी। यह काव्य 'महाराष्ट्री' नामक प्राकृत भाषामें लिखा गया है। । उसमें १५ आश्वास अर्थात् सर्ग हैं। रामचन्द्रजीका समुद्रपर पूल बाँधना, वानरसेनाको लेकर लंकापर चढ़ाई करना और राक्षसोंके साथ घोर युद्ध तथा रावण-वध आदि उसके वर्णनीय विषय हैं। इसलिए इस काव्यको 'दहमुहवहो' (दशमुखवध) भी कहते हैं। प्रवरसेन भी कालिदासकी तरह शिवोपासक था। इसका पता हमें उसके ताम्रपटोंपर उत्कीर्ण लेखोंसे लगता है। कालिदासने शैव होकर भी जिस प्रकार 'रघुवंश' में रामचरित वर्णन किया है उसी प्रकार शैव प्रवरसेनने 'सेतुबन्ध' में रामकथा लिखी है। शायद उसने अपनी विष्णुभक्त माताके आदेशानुसार इस काव्यकी रचना की हो। काव्यका वर्णनीय विषय रामचरित्र होनेसे आरम्भमें प्रथम चार श्लोकोंद्वारा विष्णुकी स्तुति की गई है। तत्पश्चात् चार श्लोकोंमें प्रवरसेनके अपने इष्टदेव शंकरकी।

इस काव्यमें स्थान स्थानपर सुन्दर कल्पना, मनोहर अलंकार और हृदयहारी वर्णन पढ़नेको मिलता है। इसलिए दण्डीने अपने काव्यादर्श नामक अलंकार-ग्रन्थमें इस काव्यको 'सूक्तिरत्नसागर' कहा है। कवि बाण ने भी एक जगह 'इस सेतुद्वारा कपिसेनाकी तरह कविकी कीर्ति भी सागरको पार कर गई,' ऐसी श्लेषगर्भित स्तुति की है। उक्त काव्यमें कई स्थल ऐसे है, जहाँ कालिदास की कल्पनाओंका आभास मिलता है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित श्लोक देखिए—

पढमं विअ मारुइणा हरिसभरिज्जन्तलोअणेण मुहेण।
जणअतणआपउत्ति पच्छा वाआइ णिरवसेसं सिट्ठा।।

'हनुमानने पहले तो हर्षोत्फुल्लनयन मुखमुद्रासे सीतादेवीका समाचार रामचन्द्रजीको सूचित किया, फिर मुखसे निर्गत शब्दों द्वारा निवेदन किया।' यह कल्पना कालिदासके 'रघुवंश' में (सर्ग २, ६९) आई है। फिर भी ऐसे स्थलोंकी संख्या बहुत कम है। 'सेतुबंध' की रचना करते समय प्रवरसेनको बहुत-सी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। जहाँ तहाँ त्रुटियाँ रह जाती थीं उन्हें दुरुस्त करके आगे अपनी रचनाकी प्रगतिको बढ़ाना उन्हें कठिन प्रतीत हो रहा था—यह बात प्रवरसेनने स्वयं स्वीकार की है—

अहिणवराआरद्धा चुक्कक्खलिएसु विहडिअपरिठ्ठविआ।
मेत्तिव्व पमुहरसिआ णिव्वोढुं होइ दुक्करं कव्वकहा।।

'जिस प्रकार नये प्रेम के जोशमें मित्रता पैदा होती है फिर किसी अपराध या मनमुटावके कारण समयांतरमें वह टूट जाती है। परन्तु यदि मित्र रसिक हो तो फिरसे वह टूटी हुई मित्रता जुड़ सकती है। किन्तु अन्त तक उसका निर्वाह करना कठिन हो जाता है। उसी तरह नये नृपसे आरंभ की गई तथा जहाँ तहाँ शुद्ध की गई, निर्दोष एवं पाठकोंके हृदयको आकर्षित करनेवाली इस रमणीय कथाका निर्वाह करना मेरे लिए कठिन हो रहा है।' ऐसी कठिनाई उपस्थित होने पर प्रवरसेनको कालिदासकी सहायता मिली होगी। यह काव्य पूर्णतया कालिदास-रचित न होनेसे हम इसका विशेष विवेचन न कर उनके 'रघुवंश' का विवेचन करेंगे।

रघुवंश

यह काव्य कालिदासके काव्योंमें सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। मालूम होता है इसकी रचना उन्होंने सबसे पीछे की है, क्योंकि इसमें उनकी परिपक्व प्रज्ञा और प्रतिभाका परिचय मिलता है। उपलब्ध प्रतियोंमें इस काव्यके १९ सर्ग मिलते हैं। इन सर्गोंमें कुल २८ राजाओंका वर्णन है। इन राजाओंमें रघु नामक राजा बहुत बड़ा प्रतापी और दानशील हुआ था। उसके वंशधर राजाओंका इस काव्यमें वर्णन किया गया है। इसी लिए कविने इसका नाम 'रघुवंश' रक्खा है।

इसका मंगलाचरण बड़े मार्केका है। शब्द और अर्थका सम्यक् ज्ञान होनेके लिए उसके ही समान नित्य परस्परसंबद्ध पार्वती-परमेश्वरकी वन्दना करके कविने बहुत नम्रतापूर्वक अपने विषयका महत्त्व और उसके सामने अपना मन्दमतित्व

प्रकट किया है। कवि स्वयं कहता है--'जिस प्रकार ऊँचे वृक्षके फल तोड़नेके लिए किसी बौने मनुष्यका ऊपरको हाथ फैलाना उपहासास्पद होता है उसी प्रकार मुझ मन्दमतिका काव्यप्रणयनरूप प्रयास भी उपहास के लायक है। मैं हूँ तो मन्दबुद्धि, पर कवियोंको प्राप्त होनेवाली कीर्तिका अभिलाषी हूँ। जिस मणिमें पहलेहीसे छिद्र कर दिया गया है उसमें डोरा पिरोनेमें कुछ भी कठिनाई नहीं होती, उसी प्रकार पूर्वकविवर्णित इस वंशमें मेरा प्रवेश होगा।' इसके अनन्तर रघुकुलोत्पन्न राजाओंकी महत्ता संक्षेपमें वर्णन कर कविने सहृदय-समीक्षकोंसे अपने काव्यकी, सुवर्णकी तरह, परीक्षा करनेका अनुरोध किया है। पहले सर्गमें मनुवंशमें उत्पन्न राजा दिलीप का चरित्र वर्णन किया है। राजा दिलीप बड़े प्रतापी, धर्मात्मा और समस्त श्लाघनीय गुणोंसे सम्पन्न थे। उनका राज्य आसमुद्र पृथ्वी पर फैला हुआ था। उन्हें दुःख तो केवल पुत्र न होनेका था। अतः अपने राज्यका भार सुयोग्य मन्त्रियोंपर छोड़कर शीलरूपवती उदार-चरिता, राजमहिषी सुदक्षिणाको साथ लेकर दिलीप कुलगुरु वशिष्ठके आश्रममें पहुँचे। राजाने निःसन्तान होनेका दुख वशिष्ठजीसे निवेदन किया। ऋषिने ध्यानस्थ होकर सन्तानहीन होनेका कारण बतलाया-- 'राजन्! एक बार तुम स्वर्गमें इन्द्रसे भेंटकर वहाँसे भूलोकको लौटे आ रहे थे। तब कल्पवृक्षके नीचे खड़ी हुई कामधेनुकी परिक्रमा न कर तुमने उसका अपमान किया। इससे कुपित होकर उसने तुमको यह अभिशाप दिया कि मेरी पुत्री नन्दिनीकी सेवा किये बिना पुत्रलाभ न होगा। उस कामधेनुकी पुत्री नन्दिनी मेरे आश्रममें विद्यमान है। अनन्यचित्त होकर भक्तिभावसे तुम उसकी सेवा करो, वह प्रसन्न होकर तुम्हारा मनोरथ पूरा करेगी।' कुलगुरु वशिष्ठजीके आदेशानुसार राजा दिलीपने कामधेनुकी कन्या नन्दिनी नामके गायकी सेवा करनेका निश्चय किया (सर्ग १)। दूसरे दिन ही राजाने अपने अनुचरोंको बिदा कर दिया और स्वयं दत्तचित्त होकर उसकी सेवामें लग गया। इस प्रकार तीन सप्ताह बीत गये। एकदिन नंदिनीके मनमें आया कि राजाके सत्यकी परीक्षा लेनी चाहिए। वह चरती हुई हिमालयकी गुफामें घुस गई। राजा हिमालयकी प्राकृतिक शोभा देखनेमें अपनेको भूल गया। इतनेमें एक सिंह उस गायपर टूट पड़ा। गाय रक्षाके लिए चीख पड़ी। यह देखकर दिलीप उसकी रक्षाके लिए कटिबद्ध हो गया। ज्यों ही क्रुद्ध होकर उसने सिंहको मारनेके लिए तरकससे वाण निकालना चाहा उसका हाथ अकड़कर वहीं चिपक गया। यह देखकर सिंह राजासे मनुष्य-वाणीमें बोला, "राजन् मेरा नाम कुम्भोदर है, मैं निकुम्भका मित्र और शङ्करजीका सेवक हूँ। सामने इस देवदारु वृक्षको देखते हो न? इसे पार्वतीने अपने हाथसे सींचकर पाला-पोसा है। एक

दिन एक जंगली हाथीने अपने गण्डस्थलको खुजला कर इस देवदारुकी त्वचाको छील डाला। इससे पार्वतीको परम दु.ख हुआ। अत: श्रीशङ्करजीने मुझे सिंहका रूप देकर यह आज्ञा दी कि 'इस गुहाके पास आनेवाले प्राणियोंको मारकर तू अपनी जीविका चला।' मैंने कल उपवास किया था और यह गाय पारणारूपसे आज मुझे मिली है। अब तेरा कोई वश चलनेका नहीं, तू लौट जा।" राजाने उत्तर दिया–"भगवान् शंङ्करजी स्थावर और जंगम सृष्टिके उत्पादक, पोषक और संहारक हैं। अत: उनकी आज्ञा मुझे परममान्य है, किन्तु अपने गुरुके गोधनको सामने नष्ट होने देना भी उचित नहीं है, इसलिए मैं तुझे स्वदेह अर्पण करता हूँ। इसे तू स्वीकार कर और गायको छोड़ दे।" "एक गायके लिए संसारका साम्राज्य, और अपने तारुण्यपूर्ण सुन्दर शरीरका त्याग करना मूर्खताका चिन्ह है" इत्यादि कहकर सिंहने राजाको अपने निश्चयसे डिगानेका प्रयत्न किया, किन्तु राजाने एक न सुनी। इससे सिंहको राजाका कहना मानना पड़ा। राजाका हाथ खुल गया और वह सिंहके सामने गर्दन झुकाकर बैठ गया। 'अब मेरे ऊपर सिंह झपटनेवाला ही है,' ऐसा राजा सोच ही रहा था कि आकाशसे उसके ऊपर पुष्पवृष्टि होने लगी। उस सिंहको नंदिनीने राजाकी परीक्षाके लिए मायासे उत्पन्न किया था। राजाकी इस प्रगाढ गुरुभक्तिसे नंदिनी सन्तुष्ट हुई और पुत्रप्राप्तिका आशीर्वाद देती हुई राजासे अपना दूध पीनेके लिए बोली। आश्रमको लौटकर राजाने यह सब वृत्तान्त गुरु वशिष्ठ और रानी सुदक्षिणाको सुनाया। हवनसे और वछड़ेके पीनेसे बचे हुए दूधको राजा और रानीने गुरुकी आज्ञासे पिया। दूसरे दिन व्रतका उद्यापन कर वे दोनों राजधानीको लौट आये (सर्ग २)। रानी शीघ्र ही गर्भवती हुई और यथासमय जब पाँचों ग्रह उच्चस्थानमें थे ऐसे शुभ मुहूर्तमें उसको पुत्र उत्पन्न हुआ। राजाने उसका नाम रघु रक्खा। सकल शास्त्रविद्या और शस्त्रविद्यामें प्रवीण देखकर राजाने उसे युवराज बनाया और अश्वमेध याग आरम्भ किया। इस प्रकार निन्यानवे अश्वमेध यज्ञ निर्विघ्नतापूर्वक समाप्त हुए। सौवें अश्वमेधके समय इन्द्र अदृश्य रूपसे आकर अश्वको चुरा ले गया। किन्तु नन्दिनीकी कृपासे रघुको इन्द्रका यह कपट मालूम हो गया। उसने इन्द्रको लड़नेके लिए आव्हान दिया। दोनोंका भयंकर युद्ध हुआ। रघुकी वीरतासे सन्तुष्ट होकर इन्द्रने कहा "अश्वको छोड़कर तू दूसरा वर माँग।" रघुने यह इच्छा प्रदर्शित की कि अश्वके विना भी नियमपूर्वक समाप्त किये गये यज्ञका पुण्य मेरे पिताको मिले"। इन्द्रके इस बातको स्वीकार कर लेने पर रघु पिताके पास लौट आया। यज्ञको समाप्त होने पर राजा दिलीपने रघुको राजगद्दी पर बैठाया और स्वयं सुदक्षिणाके साथ तपोवनको चला गया। (सर्ग ३)। रघुने ऐसा सुन्दर राज्यशासन किया कि लोग दिलीपको भूल गये। प्रजारञ्जन करनेके

कारण रघुकी 'राजा' यह पदवी अन्वर्थ हुई । शरद् ऋतुके आनेपर षड्विध सेना साथ लेकर वह दिग्विजयके लिए निकला । पहले उसने पूर्व दिशामें सुह्म, वंग इत्यादि देश जीत कर गंगाके प्रवाहमें अपना विजयस्तम्भ गाढ़ा । फिर वह दक्षिणकी ओर चला । कलिंग देशके राजाका पराजय कर उससे कर लेकर छोड़ दिया, किन्तु उसके राज्यको आत्मसात् नहीं किया । बादमें पूर्व किनारेसे चल कर उसने कावेरी नदी पार की और पाण्ड्य राजाको पराजित किया तथा उससे ताम्रपर्णी नदीके मुहानेपर मिलनेवाले मोतियोंका कर लिया । दक्षिण दिशामें मलय और दर्दुर पर्वतपर चढ़ाई की और सह्य-पर्वत लाँघकर केरल और अपरान्त (कोंकण) देशके राजाओंको हराया । फिर पारसीक देशको जीतनेके लिए वह स्थलमार्गसे आगे बढ़ा । वहाँके घोर युद्धमें उसने अपने बाणोंसे यवनोंके लंबी दाढ़ीवाले सिर काट काट कर जमीन तोप दी । उत्तर दिशाके दिग्विजयमें हूण, काम्वोज इत्यादि राजाओंका पराभव कर और उनसे करभार लेकर वह हिमालयकी ओर चला । वहाँ उत्सवसंकेतादि गणराज्योंसे युद्ध होने पर उन्होंने राजा रघुके स्वामित्वको स्वीकार किया और भेंट नजर की । फिर कामरूप (आसाम) के राजाने रत्नरूपी पुष्पोंसे उसका सत्कार किया । इस प्रकार भारतवर्षके चारों दिशाओंके राज्योंको जीतकर पाई हुई अपनी सारी सम्पत्ति उसने विश्वजित् नामक यज्ञमें दान कर दी (सर्ग ४) ।

यज्ञ पूर्ण होने पर राजाका खजाना सर्वस्वत्यागसे खाली हो गया । इसी समय वरतन्तुका शिष्य ब्रह्मचारी कौत्स गुरु-दक्षिणाके लिए चौदह करोड़ सुवर्णमुद्रायें माँगने आया । ऐसे विद्वान् ब्राह्मणको खाली हाथ वापस भेजनेसे रघुकी अपकीर्ति होती । राजाको और कहींसे धनकी आशा नहीं थी । अन्य राजागण पहले ही राजा रघुको कर दे चुके थे । इस कारण उसने धनपति कुबेरपर चढ़ाई करनेका निश्चय किया । यह जानकर पहले ही कुबेरने राजाको प्रसन्न करनेके लिए सुवर्णमुद्राओंकी वर्षा कर दी । उस सुवर्णसे भरे हुए भण्डारको रघुने कौत्सको दे दिया । किन्तु उस निःस्पृह ब्राह्मण युवकने चौदह करोड़ सुवर्णमुद्रासे एक कौड़ी भी अधिक न ली । कौत्स ऋषिके आशीर्वादसे रघुको पुत्रकी प्राप्ति हुई । रघुका पुत्र अज भी पितृतुल्य गुणोंसे अलंकृत और महान् प्रतापी हुआ (सर्ग ५) । अजने युवावस्थामें पदार्पण किया उस समय विदर्भ-राजने अपनी बहन इन्दुमतीका स्वयंवर रचा । अज भी आमंत्रण पाकर स्वयंवरमें सम्मिलित होनेके लिए चला । मार्गमें उसे नर्मदा नदीके तटपर एक उन्मत्त हाथीका सामना करना पड़ा । वह पूर्व जन्ममें प्रियंवद नामक गन्धर्व था । किसी अपराधवश मतंग ऋषिके शापसे उसे हस्तियोनि मिली थी । अजके बाणसे वह हस्तियोनिसे मुक्त हुआ । उस उपकारके बदलेमें गन्धर्वने प्रसन्न होकर अजको

सम्मोहन नामक अपना अस्त्र दिया। विदर्भ देशकी राजधानी कुंडिनपुरमें अजका बड़ी धूम धामसे स्वागत हुआ। वहाँ वह अपने शिविरमें ठहरा। इन्दुमतीकी चाहमें अजको रातमें बहुत देरसे नींद आई। प्रातःकालके समय अजको जगानेके लिए वैतालिकोंने प्रभातका बहुत ही सुंदर वर्णन किया। ये प्रभातवर्णन-श्लोक, कहते हैं, वाग्देवताके रचे हुए हैं। प्रभातकालका यह वर्णन बहुत ही उत्कृष्ट और हृदयहारी है। उदाहरणार्थ उस प्रसंगके दो श्लोक नीचे उद्धृत किये जाते हैं —

ताम्रोदरेषु पतितं तरुपल्लवेषु
निर्धौतहारगुलिकाविशदं हिमाम्भः।
आभाति लब्धपरभागतयाधरोष्ठे
लीलास्मितं सदशनार्चिरिव त्वदीयम्॥ रघु. ५, ७०.

'आपके अरुणिमामय अधरोंसे दन्तोंकी धवल कान्तिका मिलाप होनेपर और भी ज्यादह सुन्दरताको पानेवाले आपके मन्द मधुर स्मितके समान ये वृक्षोंके लाल कोमल पल्लवोंपर पतित, हारके गोल गोल मोतियोंके समान स्वच्छ हिमकण इस समय बहुत ही शोभायमान हो रहे हैं।'

भवति विरलभक्तिर्म्लानपुष्पोपहारः
स्वकिरणपरिवेषोद्भेदशून्याः प्रदीपाः।
अयमपि च गिरं नस्त्वत्प्रबोधप्रयुक्ता-
मनुवदति शुकस्ते मञ्जुवाक्पञ्जरस्थः॥ रघु. ५, ७४.

'पुष्पमालाकी बनावट रातमें कुम्हला जानेसे विरल हो गई है। आपके शयनागारके दीपक भी किरणमण्डलके न रहनेसे निस्तेज हो रहे हैं। आपको जगानेके लिए हम बन्दीजन जो बिरुदावली गान कर रहे हैं उसीका अनुकरण यह पिंजड़ेमें बैठा हुआ मधुरभाषी शुक कर रहा है।'

इसके बाद अज शय्यासे उठकर नित्य नैमित्तिक कार्य समाप्त कर स्वयंवर-सभामें गया। वहाँ अनेक राजा-महाराजा उपस्थित थे। थोड़ी देरके बाद वन्दिजन राजाओंका गुणगान करने लगे। मयूरोंको नाचनेके लिए उत्साहित करनेवाली शंखध्वनिके होते ही राजकुमारी इन्दुमती पालकीमें बैठकर अपनी सखियोंके साथ वहाँ आकर उपस्थित हुई। अनुपम सुन्दरी इन्दुमतीको देखते ही राजागण विविध प्रकारकी शृंगारचेष्टायें करने लगे। यह वर्णन कालिदासने रसीली भाषामें किया है। इन्दुमतीको उसकी सखी सुनन्दा हरएक राजाके समीप ले जाकर उसका गुण-वर्णन करती है। उक्त अवसरपर भिन्न भिन्न देशोंके नरपतियोंके व्यक्तिगत उत्तम गुण,

संपत्ति और बलपराक्रम तथा पूर्वजोंकी कीर्ति, उनके राज्यान्तर्गत प्राकृतिक सौन्दर्य-सम्पन्न स्थल आदिका वर्णन बहुत ही रमणीय और भौगोलिक दृष्टिसे निर्दोष हुआ है। यह स्थल सहृदयोंको अवश्य पढ़ना चाहिए। उदाहरणार्थ कुछ श्लोक देखिए। अंगराजका परिचय देते समय सुनन्दा कहती है—

अनेन पर्यासयताश्रुबिन्दून् मुक्ताफलस्थूलतमान् स्तनेषु।
प्रत्यर्पिताः शत्रुविलासिनीनामुन्मुच्य सूत्रेण विनैव हाराः॥

रघु. ६, २८.

'इसने अपने शत्रुओंका संहार करके उनकी स्त्रियोंको खूब रुलाया है। इसने उनके वक्षस्थलोंपर बड़े बड़े मोतियोंके समान उनके आँसू क्या गिरवाये मानों पहले तो उनके मुक्ताहार इसने छीन लिये फिर उन्हें सूत्ररहित करके उन्हींको लौटा दिया।'

इन्दुमती जब पाण्ड्यराजके समीप गई तो उसका परिचय सुनन्दाने इस प्रकार दिया —

पाण्ड्योऽयमंसार्पितलम्बहारः क्लृप्ताङ्गरागो हरिचन्दनेन।
आभाति बालातपरक्तसानुः सनिर्झरोद्गार इवाद्रिराजः॥ रघु. ६, ६०

इस श्लोकमें द्राविड़, स्थूलशरीर, कृष्णवर्ण, रक्तचन्दनचर्चितकलेवर, जिसके कण्ठमें मोतियोंका लम्बा हार शोभित हो रहा है ऐसे पाण्ड्य राजाको बालसूर्यकी किरणोंसे रक्तवर्ण विशाल पर्वतकी उपमा दी है जिसके तटकी ओरसे जलनिर्झर बह रहा है। अंग, वंग, कलिंग, मगध, अवन्ती, अनूप, शूरसेन इत्यादि देशोंके राजाओंका सुनन्दाने बहुत सुन्दर वर्णन किया। तथापि उनमेंसे एक भी राजा इन्दुमतीको पसन्द नहीं आया।

अन्तमें इन्दुमती सुनन्दाके साथ अजके निकट पहुँची। उस सर्वांगसुन्दर नौजवान अजकुमारको देखते ही इन्दुमती उसपर मोहित हो गई। यह देखकर सुचतुरा सुनन्दाने उस राजकुमारका सविस्तर वर्णन किया और 'कुल, कान्ति, यौवन, विनय आदि गुणोंमें यही राजकुमार तुम्हारे सर्वथा योग्य है, इसीके गलेमें पुष्पमाला डालकर रत्नकाञ्चनसम्बन्ध होने दो' ऐसी सलाह दी। जब देखा कि राजकुमारीके हृदयमें अजका अनुराग दृढ हो गया है तब परिहासकुशल सुनन्दाने इन्दुमतीकी मीठी चुटकी ली और वहाँसे अन्यत्र चलनेके लिए कहा। किन्तु इन्दुमती तो अपना हृदय अजको दे चुकी थी। सुनन्दाका कहना उसे पसन्द नहीं आया। वह क्रोधसे उसकी ओर देखने लगी। अज-इन्दुमतीके इस अनुरूप सम्बन्धसे पुरवासियोंको अपार आनन्द हुआ।

अज-इन्दुमतीको लेकर विदर्भराजने अपनी राजधानीमें प्रवेश किया । उस समय पुरवासिनी स्त्रियोंके जमावका कालिदासने बहुत अच्छा चित्र खींचा हैं । इसके बाद विवाहकी धूमधाम, इन्दुमतीको लेकर अजका लौटना, मार्गमें प्रतिस्पर्धी राजाओंका अजके ऊपर आक्रमण और गन्धर्व-दत्त सम्मोहनास्त्रद्वारा उनका पराभव तथा इन्दुमतीसहित अयोध्यामें लौट आनेका वर्णन है (सर्ग ७) । रघुने अपने सुयोग्य पुत्र अजको अयोध्याका सिंहासन देकर तपश्चरणके लिए वनमें जानेकी तैयारी की, किन्तु अजको अपने पिताका दुःख असह्य जान पड़ा । तब उसके अत्यन्त आग्रहसे वह नगरके निकट ही रहने लगा । अजके पास ही कई वर्ष बिता कर अन्तमें रघुने योगाभ्यासद्वारा सायुज्य मुक्ति प्राप्त की । कुछ कालके बाद अजको दशरथ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । एक दिन अज अपनी प्रेयसी इन्दुमतीके साथ उपवनमें विहार कर रहा था कि आकाशमार्गसे नारदजी वीणा बजाते हुए गोकर्णस्थ महादेवके दर्शनके लिए निकले। अचानक उनकी वीणासे एक दिव्य पुष्पमाला हवाके झोंकेसे टूटकर इन्दुमतीके हृदयपर आ गिरी । उसके आघातसे इन्दुमतीका तुरन्त प्राणान्त हो गया। इससे राजा अजको असह्य दुःख हुआ । वह इन्दुमतीके शील और विविध गुणोंकी याद कर शोक करने लगा ।

स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम् ।
विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ।। रघु. ८, ४६.

'यदि इस मालामें प्राणापहरण करनेकी शक्ति है तो यह मेरे प्राण क्यों नहीं लेती ? मैं भी तो इसे अपनी छातीपर रखे हूँ ! असली बात तो यह है कि परमात्माकी इच्छासे ही विष अमृत होता है और अमृत विष !'

गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम् ।। ८,६७.

'तू मेरे घरकी स्वामिनी, सच्ची सलाहकार, एकान्तसखी, और संगीत आदि ललितकलाओंमें मेरी प्रिय शिष्या थी । निर्दयी कालने तुझे छीनकर मेरा सब कुछ लूट लिया, कुछ भी बाकी न छोड़ा । '

राजाका शोक किसी प्रकार कम न होते देख कुलगुरु वशिष्ठने अपने शिष्यके द्वारा सन्देश भेजा कि जन्म लेनेवाले सभी प्राणियोंकी मृत्यु एक न एक दिन अवश्य निश्चित है । अगर तू शोकसे देहत्याग करेगा तो भी इन्दुमती तुझे नहीं मिल सकती । किन्तु उस उपदेशसे राजाके चित्तको समाधान न हुआ । राजकुमार दशरथके कम उम्र होनेके कारण उसने ज्यों त्यों करके आठ वर्ष बिताये और जब दशरथ राज-काज सँभालने लायक हो गया तो गंगा और सरयूके पवित्र संगमपर उसने प्रायोपवेशन कर

देहत्याग किया (सर्ग ८)। दशरथने सिंहासनारूढ होकर न्यायसे प्रजाका शासन किया। उसके राज्यमें व्याधियाँ नामशेष ही थीं, फिर शत्रुओंकी कौन कहे। उसे द्यूत, सुरा और परस्त्री, इनमेंसे किसी एकका भी व्यसन नहीं था। उस सदाचारी राजाके राज्यमें प्रजा अत्यन्त सुखी थी। उसकी कौसल्या, कैकेयी, और सुमित्रा नामक तीन रानियाँ थीं। अब तक राजाको एक भी सन्तान न हुई थी। वसन्त ऋतुमें एक दिन राजा मंत्रियोंकी राय लेकर वनमें आखेटके लिए गया। यह वर्णन बहुत ही सुन्दर और विस्तारके साथ किया गया है। इस आखेटका अन्त विषादमय होता है। एक दिन मृगयासक्त राजाको बनमें रात हो गई। इसलिए वह वहीं ठहर गया। विधिका विचित्र विधान! इतनेमें अन्धे और बूढ़े माता-पिताको पानी पिलानेके लिए उनका इकलौता तरुण पुत्र घड़ा लेकर तमसा नदीके तीरपर पानी भरने आया। पास ही में दशरथ खड़े हुए थे। तापस-कुमारने पानीमें घड़ा डुबाया उससे जो आवाज हुई उसे हाथीका शब्द समझकर भूलसे राजाने शब्द-भेदी बाण मारा। तीर मर्मस्थलको भेद कर आरपार हो गया। ऋषि-कुमारने तत्काल प्राण त्याग दिये। इस हृदय-विदारक घटनाका पानीकी आशामें बैठे हुए उनके अन्धे माता-पिताको जब पता लगा तो उन्होंने शोकार्त होकर राजा दशरथको अभिशाप दिया, तुम भी हमारी ही तरह वृद्धावस्थामें पुत्रशोकसे मरोगे। (दिष्टान्तमाप्स्यति भवानपि पुत्रशोकादन्त्ये वयस्यहमिवेति) ऐसा शाप देकर उन दोनोंने स्वयं शरीर छोड़ दिये।

इसके आगे छः सर्गोमें कालिदासने रामचरित वर्णन किया है। यह कथा प्रसिद्ध ही है। अतः उसे विस्तारसे दुहरानेकी आवश्यकता नहीं। दशरथने बहुत दिनों तक राज्य किया। किन्तु पुत्र न होनेसे ऋष्यश्रृङ्ग आदि ऋषियोंके द्वारा उसने पुत्रकामेष्टि नामक यज्ञ आरंभ किया। उसी समय लंकापति रावणके आतंकसे दुखित होकर देवगण विष्णु भगवान् की शरणमें गये। उन्होंने देवताओंको अभयदान देकर आश्वासन दिया कि मैं शीघ्र ही रावणका नाश करनेके लिए अवतार धारण करूँगा। इसके बाद यज्ञका पायस भक्षण करनेसे कौसल्याके राम, सुमित्राके लक्ष्मण और शत्रुघ्न, और कैकेयीके भरत नामक पुत्र हुए। कुमारावस्थामें ही ऋषि विश्वामित्र राम-लक्ष्मणको यज्ञरक्षार्थ ले गये। रास्तेमें ताडका नामक राक्षसीका रामने वध किया। यज्ञ समाप्त होनेपर वे दोनों विश्वामित्रके साथ मिथिलाको गये। वहाँ रामने भगवान् शंकरजीका धनुष तोड़ा। अन्तमें राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्नका रूपशीलवती राजकन्याओंसे विवाह हुआ। अयोध्याको लौटते समय रामने परशुरामका पराभव किया (सर्ग ११)। कैकेयीके वर माँगने पर राम, लक्ष्मण, और सीता वनवासको गये। पंचवटीमें रहते समय रामने खरादि दैत्योंका नाश किया। इसके बाद रावणने सीताका हरण किया।

आगे किष्किधाके राजा सुग्रीवसे मैत्री जोड़कर उसकी सहायतासे समुद्रपर सेतु बाँधकर रामने वानरोंकी सेनाके साथ लंकापर चढ़ाई की और रावणको मार डाला। सीताकी अग्नि-शुद्धिके पश्चात् बिभीषण, सुग्रीव, लक्ष्मण तथा सीताके साथ राम पुष्पक विमानद्वारा आकाशमार्गसे अयोध्या लौटे (स. १२)। इस समय जिन जगहोंमें राम, लक्ष्मण और सीता वनवासकालमें ठहरे थे उन स्थानोंका वर्णन कविने तेरहवें सर्गमें किया है। चौदहवें सर्गमें रामका अयोध्यामें प्रवेश, साध्वी सीताके चारित्र्यपर जनापवाद, रामकी आज्ञासे लक्ष्मणद्वारा गर्भभरालसा सीताका वाल्मीकि-आश्रममें त्याग आदिका वर्णन है। उस समय लक्ष्मणके द्वारा सीताने रामके लिए एक सन्देश भेजा। सीताके इस संदेशमें कालिदासने सीताके कोमल स्वभाव, करुणावस्था और पतिव्रताधर्म-पालनका वर्णन बड़ी ही मार्मिक शैलीमें किया है। निम्नलिखित श्लोकमें सीता कहती है—

साहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टिरूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये।
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः॥

रघु. १४, ६६।

'मैं प्रसवके उपरान्त सूर्यकी ओर दृष्टि लगा कर तप करनेकी चेष्टा करूँगी, जिससे दूसरे जन्ममें आप ही मेरे पति हों और वियोग न हो।'

इस प्रसंगपर कविकंठनिवासिनी भारतीने सीतादेवीकी महानुभावताका और स्वार्थत्यागका जो वर्णन किया है वह अत्यन्त करुण, उत्तेजक, मार्मिक और पवित्र है। गर्भिणी दशामें विना कारण ही अपनेको परित्यक्त करनेवाले पतिके प्रति ऐसे उद्गार एक आर्य स्त्रीके मुखसे ही निकल सकते हैं। १५ वे सर्गमें शम्बूकवध, कुश-लवका राम-सभामें उपस्थित होकर रामचरितगायन, सीताका भूगर्भमें समा जाना तथा राम आदिका स्वधाम प्रस्थान करना इत्यादि बातें बहुत ही अच्छे ढंगसे वर्णित की गई हैं।

परमधामको सिधारनेसे पहले रामने बँटवारा कर अपने और भाईयोंके पुत्रोंको राज्य देनेकी व्यवस्था की। इस व्यवस्थानुसार कुशको दक्षिणका आधिपत्य मिला, जिसकी राजधानी कुशावती थी। रामके पीछे अयोध्याकी हालत बहुत बुरी हो गई। एक दिन कुश अपने शयन-मन्दिरमें सो रहा था कि उसे एक अत्यन्त तेजोमूर्ति स्त्री दिखाई दी। वह अयोध्याकी अधिदेवता थी। उसने श्रीरामचन्द्रके समयकी अपनी समृद्धि और रामके बाद उसकी जो दुर्दशा हुई उसका अत्यन्त हृदयस्पर्शी वर्णन करके कुशको अयोध्यामें जाकर रहनेके लिए आग्रह किया। कुश कुशावती छोड़कर राज-परिवारसहित अयोध्याको लौट आया। एक दिन सरयूमें जल-विहार करते समय

कुशके हाथका दिव्य ककण जो अगस्त्य ऋषिने रामको और रामने कुशको दिया था, सरयूमें गिर पड़ा । बहुत प्रयत्न करनेपर भी वह न मिला । कुशको सन्देह हुआ कि कहीं मेरा कंकण कुमुद नामक सर्प चुराकर तो नहीं ले गया । इसलिए इसने गरुड़ास्त्रका प्रयोग किया, जिसके भयसे त्रस्त होकर कुमुदने कुशके कंकणको लौटा दिया और साथ ही अपनी कन्या कुमुद्वतीका परिणय कुशके साथ कर दिया । कुशको अतिथि नामक पुत्र हुआ । कुशके बाद अतिथि अयोध्याके सिंहासनपर बैठा । उसने दिन रातका विभाग करके अपने कर्तव्यका अच्छी तरह पालन किया । रूप, यौवन, संपत्ति और अधिकारके अनुकूल होनेपर भी राजा अतिथिमें गर्वका लेश भी नहीं था । राजनीतिके अनुसार ही उसका व्यवहार रहा (सर्ग १७)।

१८ वें सर्गमें २० राजाओंका वर्णन है जिनेमेंसे १९ राजाओंका वर्णन करनेमें कविने प्रत्येकके लिए एक या दो श्लोकोंसे काम लिया है। अन्तिम राजा सुदर्शन बाल्यावस्थामें ही राजगद्दीपर बैठा । उसने मंत्रियोंकी सहायतासे राज्यशासनकी जो उत्तम व्यवस्था की उसका वर्णन इस सर्गके अंतमें दिया गया है । अंतिम १९ वें सर्गमें सुदर्शनके पुत्र अग्निवर्णका चरित्रवर्णन किया गया है। उसके पिताने शत्रुओंका समूल नाश कर दिया था और राज्यकी व्यवस्था उत्तम थी, इसलिए अग्निवर्णको कुछ करना नहीं पड़ा । कुछ दिन तक तो उसने राज्यशासनकी ओर ध्यान दिया किन्तु विलासी होनेके कारण राज्यका भार मंत्रियोंको सौंपकर स्वयं पूर्णरूपसे विषयोपभोगमें निमग्न हो गया। वह दिन रात अन्तःपुरमें विहार करता था । उसे प्रजाकी जरा भी चिन्ता न थी । एक दिन मंत्रियोंके अत्यन्त आग्रहसे लम्पट राजाने अन्तःपुरकी खिड़कीसे केवल अपना एक पैर बाहर निकालकर प्रजाको दर्शन दिया । इस विषयासक्त और व्यसनी राजाका वर्णन पढ़कर मनमें घृणा उत्पन्न होती है । फिर भी कविके उस वर्णन-नैपुण्यपर हमें आश्चर्य हुए विना नही रहता । अग्निवर्ण स्वयं बहुत ऊँचे दर्जेका ललितकला-कोविद था। वह नर्तकियोंके नृत्यके समय स्वयं मृदंग बजाता था और उनके नृत्यमें दोष दिखलाकर उन्हें लज्जित कर देता था । अन्तःपुरकी ललनायें उसकी वासनातृप्तिके लिए पर्याप्त नहीं थीं । अतएव उसकी दृष्टिसे सुन्दर दासियाँ और वेश्यायें भी नहीं बचती थीं । अतिप्रसंग और सुरापानसे उसका शरीर दुर्वल, व्याधिग्रस्त हो गया । वैद्योंके उपदेश देनेपर भी वह दुर्व्यसनोंसे निवृत्त न हुआ । क्योंकि 'स्वादुभिस्तु विषयैर्हृतस्ततो दुःखमिन्द्रियगणो निवर्तते।' (रघु. १९, ४९) (यदि इन्द्रियोंको एक बार स्वादु-विषयोपभोगका चसका लग गया तो फिर उससे छुटकारा पाना बहुत कठिन है)। बहुत दिन तक राजाका दर्शन न होनेके कारण प्रजाको उसके विषयमें चिन्ता हुई । तथापि अग्निवर्ण क्षयरोगका शिकार बना, यह बात मंत्रियोंने गुप्त रक्खी । उसकी मृत्यु

होनेपर उन्होंने उसकी गर्भवती रानीको सिंहासनपर बिठाया। रानीने राज्यव्यवस्था सरलतासे चलाई (सर्ग १९)।

'रघुवंश' के उन्नीसवें सर्गका अन्त आकस्मिक हुआ है। कुछ वर्षके पहले एक विद्वाननें धारा नगरीमें 'रघुवंश' के २६ सर्ग होनेकी सूचना दी थी। स्वर्गवासी रायबहादुर शंकर पांडुरंग पण्डितने भी सुना था कि २० से २५ तक 'रघुवंश' के सर्ग उज्जयिनीमें वर्तमान हैं। अब तक इन अवशिष्ट सर्गोंका पता न लगनेसे इस बातपर विश्वास नहीं किया जा सकता कि 'रघुवंश' के २६ सर्ग रहे होंगे। कविने उन्नीस सर्गके आगे रचना नहीं की, इसका कारण उसीकी अस्वस्थता या मृत्यु हो सकती है। कारण कुछ भी क्यों न हो, 'कुमारसंभव' की तरह यह काव्य भी कविने अपूर्ण ही छोड दिया। 'विष्णुपुराण' में राजा अग्निवर्णके पश्चात् और भी आठ राजाओंका वर्णन आया है।

'रघुवंश' कालिदासका अत्यन्त प्रसिद्ध महाकाव्य है। इसकी भाषा इतनी सरल है कि साधारण संस्कृत जाननेवाले आबालवृद्ध इसका रसास्वाद कर सकते हैं। इस एक ही काव्यपर लगभग तेतीस टीकायें उपलब्ध हैं। इसीसे इस काव्यकी लोकप्रियताका अनुमान किया जा सकता है। इसे संस्कृत काव्यसाहित्यका अनमोल रत्न कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। यद्यपि कालिदासने अनेक उत्कृष्ट काव्य तथा नाटक रचे हैं तथापि संस्कृतके अनेक ग्रंथकारों और सुभाषितकारोंने उनका 'रघुकार' के नामसे ही उल्लेख किया है। इससे 'रघुवंश' की सर्वप्रियता और उत्कृष्टताका पता चलता है।

'कुमारसंभव' और 'मेघदूत' ये दो पहलेके काव्य अधिक मर्यादित और सुगठित हैं। 'कुमारसंभव' में सिर्फ भगवान् शंकरके चरित्रकी एक विशिष्ट घटनाका वर्णन किया गया है। उसी प्रकार 'मेघदूत' में केवल एक विरही नायक और उसकी एक नायिका है। दोनों काव्य सुगठित मालूम होते हैं। 'रघुवंश' की रचना अन्य प्रकारकी है। इसमें २८ राजाओंका वर्णन है। इस राजवंशावलीमें वर्णित राजागण सामान्यतया सभी शूर, न्यायी, संयमी, विद्वान् तथा दानशील थे, तो भी उनके चरित्रोंमें जो भिन्न भिन्न प्रसंगोंका वर्णन है, उनमें एकसूत्रता और प्रमाणबद्धता नहीं रह सकी। तथापि कई अन्य दृष्टिकोणोंसे 'रघुवंश' कालिदासके अन्य काव्योंकी अपेक्षा अधिक सरस महाकाव्य है। 'कुमारसंभव' और 'मेघदूत' के नायक अतिमानुष जातिके हैं। उनके विचारों तथा विकारोंमें पाठकोंके मनमें आत्मीयताका भाव उदय नहीं होता है। यद्यपि 'रघुवंश' में कई स्थलोंमें अद्भुतता दिखाई देती है, तो भी इस काव्यके पात्र इसी भूमिके

निवासी थे। उनके चरित्र उदात्त होने परभी अद्भुत और अतिमानुष नहीं हैं। इसलिए पाठकोंको उनके प्रति कुतूहल, आदर और सहानुभूति उत्पन्न होती है। इस काव्यकी रचनामें भी कविकी कल्पनाका विलास दृष्टिगोचर होता है। दिलीपसे लेकर दशरथ तक 'रघुवंश' में वर्णित राजाओंमें हरएक किसी एक गुणमें अद्वितीय था। राजा दिलीप भक्तिमान्, रघु दानवीर और सर्वस्वत्यागी, अज उच्च कोटिका प्रेमी तथा दशरथ राजगुणसंपन्न थे। परन्तु रामके स्वभावमें इन समस्त गुणोंका मधुर मिश्रण हुआ है। रामके चरित्रमें सीताके साथ जो अन्याय हुआ उससे अथवा किसी दूसरे कारणसे रामके बाद रघुवंशका ऐश्वर्य हतप्रभ हो चला था। राज्यव्यवस्था शिथिल हो चली थी। प्रथम एक दो पीढ़ियों तक कुश और अतिथि इन दो राजाओंके समयमें पूर्व पुण्यके प्रभावसे अथवा उन राजाओंके कुछ उत्कृष्ट वैयक्तिक गुणोंके कारण तेजीसे अवनति न हो सकी, फिर भी अवनति प्रतिदिन होती ही गई। राजा अतिथिके पश्चात् इक्कीस राजा हुए। उनके चरित्रमें वर्णनयोग्य एक भी प्रसंग कविको नहीं दिखाई पड़ा। अन्तमें सिंहासनारूढ़ अग्निवर्णने दिन रात विषयभोगोंमें मग्न होकर अपनी पूर्वजोंकी धवल कीर्तिको कलंकित किया। एक तरफ़ तो प्रजाके संरक्षण, पोषण, तथा शिक्षणमें सदा सर्वदा पितासमान सतर्क होकर दत्तचित्त रहनेवाला दिलीप और दूसरी ओर अहर्निश अन्तःपुरमें पड़े रहकर विलासिता और लम्पटतामें आकण्ठ-मग्न और मन्त्रियोंकी प्रेरणासे खिड़कीकी राहसे सिर्फ एक दिन अपना पैर निकाल कर दर्शनोत्सुक प्रजासे 'इसीको देखकर सन्तोष कर लो' कहनेवाला राजा अग्निवर्ण, इन दोनोंके चरित्रमें पाठकोंको आकाश पातालका अन्तर शीघ्र ही ज्ञात हो सकता है। कविने दोनोंका चरित्र समान कौशलसे चित्रित किया है, तो भी वह समाजके आगे कौनसा आदर्श उपस्थित करना चाहता था यह समझ लेना कठिन नहीं।

इस काव्यके प्रथम सर्गके आरम्भमें "पूर्वसूरिकृत ग्रंथोंका अनुसरण कर मैं 'रघुवंश' की रचना करता हूँ" ऐसा कविने कहा है। नवम सर्गसे पन्द्रहवें सर्ग-तक कालिदासने वाल्मीकि-रामायणका सहारा लिया है। किन्तु किन अन्य ग्रन्थोंका कालिदासने आश्रय लिया है यह अभी तक ठीक ठीक नहीं मालूम हो सका है। पुराणोंमें भी इन राजाओंकी नामावली दी गई है। किन्तु उस नामावलि और 'रघुवंश' में दी हुई नामावलिके क्रममें बहुत अन्तर है। उदाहरणार्थ, दिलीप और रघुके बीच वाल्मीकि रामायणमें दो, वायुपुराणमें उन्नीस, विष्णुपुराणमें अठारह राजाओंके नाम दिये हुए हैं। इसके अतिरिक्त इन ग्रंथोंमें

नामनिर्देशके सिवा उन राजाओंके चरित्रपर कोई प्रकाश नहीं डाला गया है।* इससे यह सम्भव प्रतीत नहीं होता है कि कालिदासने अपने पूर्ववर्ती इन ग्रन्थ-कारोंके विषयमें केवल नामनिर्देशके कारण इतने आदरके उद्गार निकाले हों। कालिदासके सामने अन्य ग्रंथकारोंके ग्रन्थ थे, ऐसा मानना पड़ता है। भासके 'प्रतिमा' नाटकमें दिलीपसे लेकर दशरथ तकका क्रम 'रघुवंश' के अनु-सार ही मिलता है। इससे दोनों कवियोंने एक समान ग्रन्थका उपयोग किया होगा, यह स्पष्ट होता है। 'रघुवंश' के १८ वें सर्गमें २० राजाओंकी केवल नामावलि दी हुई है। इससे यह मालूम होता है कि कालिदासके पूर्वकालीन ग्रन्थोंमें इन राजाओंका कुछ विशेष परिचय नहीं दिया गया था। दिलीप, रघु और अजके विषयमें भी बहुत अंशोंमें यही स्थिति रही होगी। इस दशामें इतनी अपूर्ण सामग्रीका उपयोग कर 'रघुवंश' में उदात्त चरित्रोंके उत्तुंग प्रासाद निर्माण करनेवाले कविकी प्रतिभाकी जितनी तारीफ की जाय, कम है।

११ वीं शताब्दीमें उत्पन्न हुए कवि सोड्ढलने अपने 'उदयसुन्दरी' नामक ग्रंथमें भिन्न भिन्न कवियोंकी कुछ विशेषताओंका उल्लेख करते समय कालिदासको 'रसेश्वर' की पदवी दी है। यदि कालिदासके रसवर्णनकी निपुणतापर विचार करें तो यह उपाधि सार्थक प्रतीत होती है। कालिदासकृत अन्य ग्रंथोंमें एक दो रसोंका परिपाक मिलता है किन्तु 'रघुवंश' में तो प्रायः सभी मुख्य मुख्य रसोंका परिपोषण किया गया है। राजा अग्निवर्णके विलासवर्णनमें शृङ्गार, रघु, अज और रामके युद्ध-प्रसंगोंमें वीर, अज-विलापमें करुण, वशिष्ठ और वाल्मीकिके आश्रम तथा सर्वस्वत्यागी रघुके वर्णनमें शान्तरसकी प्रमुखता हुई है। इसके सिवा ताड़का-वधके प्रसंगमें बीभत्सकी किञ्चित् छटा दृष्टिगोचर होती है। कविकी भाषा सर्वत्र मधुर और प्रासादिक है। जहाँ तहाँ उपमा, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तर-न्यास आदि अर्थालङ्कार नगकी तरह जड़ दिये गये हैं। कालिदासने शब्दालङ्कारों-पर प्रायः बहुत जोर कहीं नहीं दिया है। तथापि नवम सर्गमें ग्रीष्म ऋतु और दशरथके आखेटका वर्णन करते समय 'यमवतामवतां च धुरि स्थितः',

---

* पद्मपुराण में दिलीपसे लेकर दशरथ पर्यन्त राजाओंका वर्णन 'रघुवंश' के वर्णनसे अनेक जगहों पर मिलता जुलता है। इससे डा. विण्टर्निट्स और उनके अनुयायियोंने यह अनुमान निकाला कि कालिदासने 'रघुवंश' की रचना करते समय पद्मपुराणका आधार लिया होगा। पर यह बात युक्ति-संगत नहीं मालूम पड़ती। उलट पद्मपुराणकारने 'रघुवंश' की सहायता ली है, यह हमने आगे दिखलाया है।

'रणरेणवो रुरुधिरे रुधिरेण सुरद्विषाम्' इत्यादि स्थानोंमें यमक और अनुप्रासोंका उपयोग करनेकी लालसा कविने पूरी की है। कविने अलंकारों और वर्णनोंका अधिक विस्तार न होने देनेकी ओर अच्छी तरह ध्यान रखा है। सर्वत्र वाच्यार्थकी अपेक्षा व्यंग्यार्थपर ही अधिक जोर दिया है और वृत्तोंका यथोचित उपयोग किया है। रचना सुबोध तथा अतिरमणीय, भावतरंग मधुर, और सृष्टि-वर्णन मनोहर होनेके कारण 'रघुवंश' संस्कृत साहित्यका दैदीप्यमान नक्षत्र और अद्वितीय सर्वांगसुंदर काव्य माना जाता है।

६–कालिदासके नाटक

वासन्तं कुसुमं फलं च युगपद् ग्रीष्मस्य सर्वं च यद्
यच्चान्यन्मनसो रसायनमतः सन्तर्पणं मोहनम्।
एकीभूतमभूतपूर्वमथवा स्वर्लोकभूलोकयो–
रैश्वर्यं यदि वाञ्छसि प्रिय सखे! शाकुन्तलं सेव्यताम्।।

जर्मन कवि गेटे

(वसन्त ऋतुके समस्त पुष्प और फल, तथा ग्रीष्म कालके भी तमाम फल–पुष्प और जो कुछ भी मनको रसायनकी तरह सन्तृप्त और मोहित करनेवाला है तथा स्वर्गलोक और भूलोक दोनोंके अभूतपूर्व एकत्रित ऐश्वर्यको हे प्रिय मित्र! यदि तुम देखना चाहते हो तो 'शाकुन्तल' का सेवन करो।)

'मालविकाग्निमित्र' नामक नाटककी प्रस्तावनामें सूत्रधार कहता है कि इस वसन्तोत्सवमें कविकालिदासकृत 'मालविकाग्निमित्र' नाटकका अभिनय दिखलानेके लिए विद्वत्परिषद्‌की मुझे आज्ञा हुई है। ऐसा कहने पर परिपार्श्वकने पूछा, लब्धप्रतिष्ठ भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि कवियोंके रचे हुए नाटकोंको छोड़ इस आधुनिक नये कवि कालिदासके वनाये हुए नाटकमें विद्वानोंका इतना आदर क्यों होना चाहिए?' इसके उत्तर में सूत्रधार कहता है—

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्‌भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः।। माल. १, २

(जितने प्राचीन काव्य है सब निर्दोष हैं और नये काव्य सब सदोष हैं, ऐसा कोई नियम नहीं। सच्चे समीक्षक परीक्षा करके ही उस प्राचीन नवीनमेंसे अच्छी चीज ग्रहण कर लेते हैं। मूर्ख मनुष्य ही दूसरोंके मतके अनुसार चलते हैं।)

सूत्रधार और परिपार्श्वककी इस बातचीतमें कविने पूर्ववर्ती भास आदि प्रसिद्ध कवियोंके नाटकोंकी अपेक्षा अपने नाटकोंकी गुणोत्कृष्टता ध्वनित की है। इसमें कितनी सत्यता है यह देखनेके लिए कालिदासके पूर्वकालीन कवियोंके नाटच-साहित्यकी संक्षेपमें समीक्षा करनी होगी।

प्रतीत होता है जैसे अन्यान्य शास्त्रों और कलाओंकी उत्पत्ति और वृद्धि प्राचीन कालमें याज्ञिक क्रियाओंके संबंधसे भारतवर्षमें हुई उसी प्रकार नाटच-कलाकी भी उत्पत्ति और वृद्धि हुई। अश्वमेध आदि यज्ञोंके अवसरपर तथा

उनके अन्तर्गत कर्मानुष्ठानोंके बीच बीच अवकाशके समय शुनःशेप आदिके प्राचीन आख्यान कहे जाते थे, ऐसा वैदिक-साहित्यमें उल्लेख आया हैं। ऐसे ही प्रसंगों-पर वैदिक देवताओंके चरित्रविषयक नाटकोंका प्रयोग होता होगा। ये नाटक उसके बादके नाटकोंके समान सर्वांग-परिपूर्ण न रहे होंगे, तो भी उनमें संस्कृत नाट्यकलाके बीज निःसंदेह मिलते हैं। ऋग्वेदादिका अध्ययन शूद्रादिकोंके लिए वर्ज्य होनेसे त्रेतायुगमें सर्व वर्ण जिसका समान रीतिसे अध्ययन करें, ऐसा, इन्द्रादि देवताओंकी प्रार्थनापर, ब्रह्मदेवने नाट्यवेद नामका पाँचवाँ वेद निर्माण किया, ऐसी प्राचीन आख्यायिका भरत मुनिके नाट्य-शास्त्रमें दी हुई है। ऐसा मालूम होता है कि उससे वेदबाह्य वर्णोंको धार्मिक शिक्षण देना भी उस समयकी नाट्यकलाका एक उद्देश था। तैत्तिरीय ब्राह्मणमें पुरुषमेधके प्रसंगपर दी जाने वाली बलियोंकी सूचीमें नटका भी अन्तर्भाव किया है। इससे वैदिक और ब्राह्मण कालमें नटों और नाट्यकलाका अस्तित्व सिद्ध होता है। प्रसिद्ध संस्कृत-व्याकरण के कर्ता पाणिनिका समय बहुमतसे ईसासे लगभग ६०० वर्ष पूर्व माना जाता है। उनकी अष्टाध्यायीमें 'पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः' (४, ३, ११०) और 'कर्मन्दकृशाश्वादिनिः' (४, ३, १११) इन दो सूत्रोंमें शिलालि और कृशाश्व इन दो आचार्योंके बनाए हुए नट-सूत्रोंका उल्लेख आया है। ईसासे लगभग १५० वर्ष पूर्व उत्पन्न पतञ्जलिके महाभाष्यमें तो नाटकोंके रंगभूमिपर प्रयोग होनेके भी कई प्रमाण मिलते हैं। इस ग्रन्थमें 'कंसवध' और 'बलिबंध' ये नाटक दिखलाये जाते थे, ऐसा वर्णन है।

भरतके नाट्यशास्त्रमें 'अमृतमंथन,' 'त्रिपुरदाह' इन नाटकों का तथा हरिवंशमें 'प्रलंबवध' और 'चाणूरमर्दन' इन नाटकोंका उल्लेख आया है। तथापि ये प्राचीन नाटक केवल नामशेष ही रह गए हैं। काव्योंकी तरह नाटकोंमें भी अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ बौद्ध लेखकोंके ही उपलब्ध हैं। बौद्ध धर्मने पहले नाट्यकलाका बहिष्कार किया था। तथापि इस कलाने समाजके मनको आकर्षित किया है, इस कारण इसका भी धर्म-प्रसारके लिए अच्छा उपयोग हो सकता है यह बात ध्यानमें आते ही बौद्ध लेखक नाट्यकलाका आदरपूर्वक उल्लेख करने लगे और स्वयं नाटक लिखने लगे। इस प्रकार तीन नाटकोंके हस्तलिखित ताडपत्रोंके कुछ छोटे बड़े टुकड़े इ. स. १९१० में मध्य एशियामें मिले हैं। उसमें एकका नाम 'शारिपुत्रप्रकरण' अथवा 'शारद्वतीपुत्रप्रकरण' है। यह नाटक अश्वघोषका रचा हुआ था, ऐसा स्पष्ट उल्लेख उस नाटकके अन्तिम पत्रपर किया हुआ मिलता है। इसमें शारिपुत्र और मौद्गलायनके बुद्धका उपदेश ग्रहण कर बौद्धधर्म स्वीकार

करनेका वर्णन आया है । दूसरे दो नाटकोंमेंसे एक 'प्रबोधचन्द्रोद्रय' नाटककी कोटिका है। उसमें बुद्धि, धृति, कीर्ति और वुद्ध नाटकके पात्र हैं। तीसरा नाटक 'मृच्छकटिक' के समान है। इसमें मगधवती नामक वेश्या, कौमुदगन्ध नामक विदूषक, नायक, दुष्ट इत्यादि पात्र मिलते हैं। मिले हुए ताड़पत्रोंके खण्ड़ अत्यन्त छोटे होनेसे इन नाटकोंमें कथानक-रचना, पात्रोंके चरित्र-चित्रण इत्यादि विषयोंमें अश्वघोषने कितनी उन्नति की थी, इसका पता नहीं लग सकता।

कालिदासके पूर्वकालीन नाटककारोंमें अश्वघोषकी तरह भासका भी प्रमुखतासे उल्लेख करना चाहिए। ई. स. १९१० में महामहोपाध्याय पण्डित गणपति-शास्त्री द्वारा मालाबारमें मिले हुए १३ नाटकोंके प्रकाशनके पहले कालिदास, बाण, वाक्पतिराज, राजशेखर, अभिनवगुप्त इत्यादिके ग्रन्थोंमें उल्लेखोंसे ही भासका नाम जाना जाता था। इन १३ नाटकोंमेंसे 'प्रतिमा' और 'अभिषेक' नाटकोंमें रामचरितका वर्णन है और उनका कथानक रामायणसे लिया गया है। इनमेंसे 'प्रतिमा' के छः अंक हैं। उसमें रामके यौवराज्याभिषेकसे लेकर वनवास पूर्ण होनेपर दशमुखवधके अनन्तर सीता, लक्ष्मण आदि सहित अयोध्यामें लौट आने तकका कथाभाग आया है। 'मध्यमव्यायोग', 'पंचरात्र', 'दूतवाक्य', 'दूतघटोत्कच', 'कर्णभार' और 'ऊरुभंग' इन छः नाटकोंके कथानक महाभारतसे लिए गये हैं। इनमें 'पंचरात्र' के तीन अंक हैं। एक यज्ञप्रसंगमें पाण्डवोंकी खबर पाँच दिनमें लगानेपर हम उनको आधा राज्य देंगे ऐसा वचन दुर्योधनने द्रोणाचार्यको दिया था। उत्तरगोग्रहणमें उनके प्रगट होनेपर वचनके अनुसार दुर्योधनने आधा राज्य दिया, यह कथा 'पंचरात्र' में आई है। बाकीके पाँच नाटक एकांकी हैं। 'मध्यमव्यायोग' में भीमने एक ब्राह्मणके लड़केको घंटोत्कचके पंजेसे छुड़ाया है। 'दूतवाक्य' में श्रीकृष्णका सन्देश, 'दूतघटोत्कच' में अभिमन्यु-वधके अनन्तर श्रीकृष्णद्वारा कौरवोंको भेजा हुआ सन्देश, 'कर्णभार' में कर्णका ब्राह्मणवेषधारी इन्द्रको अपने कवच और कुण्डलका दान, 'ऊरुभंग' में भीम-दुर्योधनका युद्ध और दुर्योधनका ऊरुभंग ये विषय वर्णित हैं। 'बालचरित' के पाँच अंक हैं। इसमें कृष्णके जन्मसे लेकर कंसवधपर्यंत कथा आई है। यह कथा हरिवंशसे ली गई है। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' और 'स्वप्नवासवदत्त' के यथाक्रम चार और छः अंक हैं और उनमें उदयनकी कथा वर्णित होनेसे वे पैशाचीभाषाकी बृहत्कथा के आधारपर लिखे गये हैं ऐसा प्रतीत होता है। अवशिष्ट 'अविमारक' और 'चारुदत्त' नाटकोंमें क्रमसे छः और चार अंक हैं। उनका कथानक कविने अपनी कल्पनाशक्तिसे रचा होगा अथवा प्राचीन बृहत्कथासे लिया होगा।

इन तेरह नाटकोंमेंसे एकका 'स्वप्नवासवदत्त' नाम हस्तलिखित प्रतिमें मिलता है। जल्हणकी 'सूक्तिमुक्तावलि' में उद्धृत राजशेखरके श्लोकसे प्रतीत होता है कि भासने 'स्वप्नवासवदत्त' नामक नाटक लिखा था, अतः ये नवीन प्राप्त हुए 'स्वप्नवासवदत्त' और उसीके सदृश दूसरे बारह नाटक भास ही के होंगे, ऐसा पण्डित गणपति शास्त्रीने तर्क किया है और इस मतको बहुतसे यूरोपीय तथा भारतीय विद्वानोंने मान लिया है।

अश्वघोष, भास और कालिदासके नाटकोंके शब्दोंके प्राकृत रूपोंका विचार कर विद्वानोंने निश्चय किया है कि भास अश्वघोषके अनन्तर और कालिदासके पहले हुए होंगे। इसके अतिरिक्त भासके 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' का एक श्लोक 'बुद्धचरित' के (१३, ६०) श्लोकसे मिलता जुलता पाया जाता है। कालिदासके समयमें भास प्राचीन नाटककार माने जाते थे, यह 'मालविकाग्निमित्र' की प्रस्तावनासे मालूम होता है। अतः भासका काल ईसवी सनकी तृतीय शताब्दी मानना पड़ता है।

भासके नाटकोंमें विशेष रचना-कौशल नहीं दीख पड़ता। 'अभिषेक', 'बालचरित', 'दूतवाक्य' इत्यादि नाटकोंमें रामायण और महाभारतके बहुतसे प्रसंग जैसेके वैसे ले लिये गए हैं। 'प्रतिज्ञा', 'प्रतिमा', 'पंचरात्र,' 'स्वप्नवासवदत्त' इत्यादि नाटकोंमें कथानककी सुविधा और वैचित्र्यके लिए मूलकथामें कविने बहुत-सा भेद किया है, ऐसा दीख पड़ता है। तो भी जटिल कथानक लेकर उसके तन्तु आखिरके अंकमें सुलझानेमें भासकी प्रवृत्ति नहीं दीखती। उसके पात्रोंका संवाद चटकदार होनेसे उसमें उनके स्वभावोंका प्रतिबिंब स्पष्ट झलकता है। इन सब नाटकोंकी भाषा सादी, प्रसादयुक्त और अर्थगम्भीर है। उसमें उपमा, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, यथासंख्य सदृश अलंकारोंकी योजना दीखती है। उसमें कहीं भी क्लिष्टता, कृत्रिमता और खींचातानी दृष्टिगोचर नहीं होती। भासने महाभारत, रामायण और बृहत्कथाका अच्छा अभ्यास किया था। इससे उनकी अनेक कल्पनाएँ और शब्द-प्रयोग उसके नाटकोंमें दीखते हैं। इन ग्रन्थोंके अभ्यास करनेसे उसके नाटकोंके पद्योंमें और कहीं कहीं गद्यमें भी 'स्मराम्यवन्त्य.धिपतेः सुतायाः' (स्वप्न.) और 'ज्ञायतां कस्य पुत्रेति' (बालचरित) ऐसी सन्धिकी, 'स्त्रीगतां पृच्छसे कथाम्' (पंचरात्र), 'आपृच्छ पुत्रकृतकान्' (प्रतिमा) ऐसे क्रियापदोंकी, और 'रुदन्तीम्' (दूतवाक्य), 'गृह्य' (दूतघटोत्कच), 'समाश्वसितुम्' (अभिषेक), इस तरह के कृदन्त रूपोंकी अशुद्धियाँ मिलती हैं। इसी प्रकार उपरिनिर्दिष्ट कारणोंसे उसके कथानक क्रियात्मक (full of action) दिखते

हैं। भासकी कल्पनाशक्ति विशाल थी परन्तु विवेचकशक्ति कम दर्जेकी थी। नहीं तो 'पंचरात्र' के प्रथम अंकके विष्कम्भकमें अग्निका विस्तृत वर्णन कथानकमें आवश्यक न होनेसे संक्षेपसे किया गया होता। इसी प्रकार 'द्वावेव दोर्म्यां समरे प्रयातौ हलायुधश्चैव वृकोदरश्च' (पंचरात्र) [हलायुध (बलराम) और वृकोदर दोनों निःशस्त्र होकर रणमें जाते हैं] इस पद्यके अर्थकी तरफ दृष्टि डालनेपर 'हलायुध' नामके प्रयोगका अनौचित्य उसके ध्यानमें आ जाता। इसी प्रकारके अनेक स्थान उसके नाटकोंमें दिखाये जा सकते हैं। शब्दयोजनाकी तरफ भी उसने विशेष ध्यान नहीं दिया। इससे उसके नाटकोंमें नादमाधुर्य कम मिलता है। तो भी उसकी नाट्यकृतिकी विविधता, विशालता और सहजरम्यता ध्यानमें रखते हुए कालिदासके पूर्वकालमें यदि उसका नाम सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया हो, तो कोई आश्चर्य नहीं।

अश्वघोषके काव्यकी तरह भासके नाटकोंका भी कालिदासने मर्मज्ञतासे अभ्यास किया था ऐसा मालूम होता है। इस कारण उसकी कुछ रम्य कल्पनायें कालिदासकी प्रतिभासे और नादमधुर शब्दयोजनासे अति रमणीय हुई हैं। कल्पनासादृश्यके ऐसे २१ स्थल स्वर्गीय शि. म. परांजपेके 'साहित्य-संग्रह'के पहले भागके एक लेखमें निर्दिष्ट किये गये हैं। उनके अतिरिक्त हम भी दो तीन उदाहरण यहाँपर देंगे।

१ भास—अथवा सर्वमलङ्कारो भवति सुरूपाणाम्। प्रतिमा १.
(सुन्दर रूपवालोंको सब कुछ शोभा देता है।)
कालिदास—किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्। शाकुं. १.
[मधुर (सुंदर) आकृतिवालोंको कौनसी वस्तु शोभा नहीं देती?]
२ भास—वाचानुवृत्तिः खलु अतिथिसत्कारः। प्रतिमा ५.
(अच्छे वचन बोलनेहीसे अतिथि-सत्कार हो गया।)
कालिदास—भवतीनां सूनृतयैव गिरा कृतमातिथ्यम्। शाकुं. १.
[आप लोगोंके मधुर भाषणहीसे हमारा आतिथ्य (अतिथि-सत्कार) हो गया।]

३ भास—अल्पं तुल्यशीलानि द्वन्द्वानि सृज्यन्ते। प्रतिमा १.
(ऐसा बहुत कम देखा जाता है कि समान शीलवाले जोड़ोंकी सृष्टि हो।)
कालिदास—समानयंस्तुल्यगुणं वधूवरं
चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः। शाकुं. ५.

(यह वधू-वरका जोड़ा समानगुणवाला बनानेसे प्रजापतिको बहुत कालके बाद अब कोई दोष नहीं देगा।)

ऊपरके इन अत्यन्त समानता रखनेवाले वाक्योंको ध्यानपूर्वक देखनेसे कालिदासकी शब्दयोजनाकी कुशलता प्रगट होती है। उनके प्रथम नाटक 'मालविकाग्निमित्र'में कई प्रसंग 'स्वप्नवासवदत्त' से सूझे हुए मालूम होते हैं। तो भी कलाभिज्ञ तथा सौंदर्यान्विषक होने से कालिदासके ग्रन्थ भासके ग्रन्थोंसे अधिक निर्दोष और रमणीय हुए हैं। अपने नाटकोंमें अनावश्यक प्रसंग, पद्य अथवा वाक्य न लिखनेमें उन्होंने बड़ी सावधानी रक्खी है। इसी तरह देवोंके आयुधोंका मनुष्यरूपमें अवतार होनेके सदृश अद्‌भुत प्रसंग, रंगभूमिपर प्रत्यक्ष युद्धका दृश्य, तथा एकही पद्य के पाद भिन्न भिन्न पात्रोंके द्वारा कहलाकर पूरा करना ऐसीं कृत्रिम दीखनेवाली बातें और पाणिनिके विरुद्ध व्याकरण-प्रयोग कालिदासने खासकर बचाये हैं। इसी प्रकार भासके ग्रन्थोंमेंसे कुछ रमणीय कल्पनाएँ और प्रसंग लेकर और उनके दोष दूर करते हुए कालिदासने अपने नाटक रचे और वे उस समय रसिकोंको भासके नाटकोंकी अपेक्षा बहुत प्रिय लगे, ऐसा मालूम पड़ता है।

'मालविकाग्निमित्र' नाटककी प्रस्तावनामें सौमिल्ल और कविपुत्र इन प्रसिद्ध प्राचीन नाटककारोंका कालिदासने उल्लेख किया है। परन्तु उनके विषयमें निश्चित वृतान्त नहीं मिलता। राजशेखरके एक श्लोकमें रामिल और सोमिलने मिलकर 'शूद्रककथा' लिखी थी, ऐसा वर्णन किया गया है, परन्तु वह सोमिल और कालिदासद्वारा उल्लेख किया हुआ सौमिल्ल एक ही व्यक्ति है यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। 'शूद्रककथा' किस प्रकारकी है यह भी हम नहीं जानते। 'मृच्छकटिक' नाटक इन दोनों कवियोंने मिलकर लिखा और उसे शूद्रकके नामसे प्रसिद्ध किया, ऐसा कई लोगोंका मत है, परन्तु यह बात सम्भव नहीं दीखती। क्योंकि एक तो उनका संविधानक शूद्रकविषयक नहीं है और दूसरे 'मृच्छकटिक' भासके 'चारुदत्त' की संशोधित एवं परिवर्तित आवृत्ति प्रतीत होती है, इस मतको बहुतोंने माना है। भासके नाटकों के लुप्तप्राय होनेपर किसीने यह काम किया होगा। इस प्रकारके नाटक लिखनेवालोंकी कालिदास प्रशंसा करेंगे, ऐसा विश्वास नहीं होता। बाकी बचे तीसरे 'कविपुत्र' नामक नाटककारके विषयमें तो कुछ भी जानकारी नहीं मिलती।

मालविकाग्निमित्र

विदर्भाधिपति वाकाटक सम्राट् की सहायतासे मालवा और काठियावाड़में

राज्य करनेवाले क्षत्रपोंका उच्छेद कर द्वितीय चन्द्रगुप्तने उज्जयिनीको अपनी राजधानी बनाया और शीघ्र ही वाकाटकोंसे स्नेहसंबंध दृढ़ करनेके लिए राजपुत्र द्वितीय रुद्रसेनको अपनी कन्या प्रभावतीगुप्ता दी। यह विवाह उज्जयिनीमें ही बड़े ठाठ से हुआ होगा। ऐसे प्रसङ्गोंपर नाटकका प्रयोग किया जाता था। राजशेखरकी 'विद्धशालभंजिका', बिल्हणकी 'कर्णसुन्दरी' इत्यादि संस्कृत नाटिकायें ऐसे ही प्रसंगमें रंगभूमिपर लाई गई थीं। मालूम होता है इस समय प्रभावतीगुप्ताके विवाह-प्रसंगपर एक अच्छा नाटक खेलनेके लिए चन्द्रगुप्तने विद्वत्परिषद्से कहा होगा। उस समय भासके अनेक नाटक विद्वानोंके सामने थे। विशेष कर उनका 'स्वप्नवासवदत्त' संविधानककी प्रमाणबद्धता, पात्रोंके स्वभावोंका मार्मिक विश्लेषण इत्यादि गुणोंसे प्रसिद्ध था। उसके स्त्री-दाक्षिण्य-युक्त नायक उदयन और पतिका राज्य बढ़े इसलिए राजनीतिज्ञ मंत्रीके आग्रहसे अपनी मृत्युकी झूटी खबर फैलाकर अज्ञातवासमें स्वेच्छासे रहने वाली और प्रत्यक्षतया अपनी सौतसे मात्सर्य न करती हुई उसको अपने कौशलसे अलंकृत करनेवाली नायिका वासवदत्तापर उज्जयिनीके लोगोंको कौतुक और अभिमान रहा ही होगा। उसकी कथा वहाँके लोगोंकी जिह्वापर थी। उदयन जिधरसे वासवदत्ताको भगा ले गया था, वह जगह वे बड़े प्रेमसे दिखाते थे, यह कालिदासके 'मेघदूत' से ज्ञात होता है। प्राचीन भासके 'स्वप्नवासवदत्त' को या उदयोन्मुख-तरुण कवि कालिदासके लिखे हुए 'मालविकाग्निमित्र' को पसन्द करना यह प्रश्न विद्वत्-सभाके आगे उपस्थित था। कालिदासके 'मालविकाग्निमित्र' का संविधानक उस प्रसंगपर लोगोंको प्रिय लगने लायक ही था। चन्द्रगुप्तने जैसे परकीय क्षत्रपोंका पराभव करके उत्तर हिन्दुस्तानमें हिन्दुओंका एकच्छत्र साम्राज्य स्थापित किया और हिन्दूधर्मका पुनरुज्जीवन किया उसी तरह पुष्पमित्र शुङ्गने बौद्ध धर्मका पराभव करके हिन्दू धर्मका पुनरुद्धार किया था और उसके कम उम्रवाले पौत्र वसुमित्रने अश्वमेधके प्रसङ्गपर अश्वका संरक्षण करके बलाढ्य ग्रीक लोगोंकी सेनाका पूरा पराजय किया था। कालिदासके समयमें जैसे मालव और विदर्भके राजघरानोंमें विवाह संबंध जुड़ा था उसी तरह शुंगके समयमें अग्निमित्रने विदर्भराजकन्या मालविकासे विवाह किया था। संविधानक-वैचित्र्य और पात्र-स्वभावके अंकनमें कालिदासका नवीन नाटक 'स्वप्न-वासवदत्ता' से निम्न श्रेणीका न था। बल्कि काव्य-गुण, सृष्टि-वर्णन इत्यादिमें बढ़ा चढ़ा हुआ था। अतः अन्य नाटकोंकी अपेक्षा वह विद्वानोंको पसंद आया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। किन्तु कई लोगोंकी यह चुनाव पसन्द

न आया होगा। इसीलिए कालिदासने अपने नाटककी प्रस्तावनामें 'मेरा नाटक प्राचीन नाटककारोंकी कृतिसे बराबरी करनेमें यदि श्रेष्ठ ठहरे तो स्वीकार करो। केवल नवीन समझ कर उसकी अवहेलना मत करो' ऐसा प्रेक्षकोंसे कहा है।

'मालविकाग्निमित्र' कालिदासका है अथवा दूसरे किसी उत्तरकालीन कविका है, इस विषयमें पहले कई लोगोंको संशय था। परन्तु अनेक प्रमाणोंसे इस संशयका खंडन हो गया है। कालिदासके अन्य नाटकोंकी तरह इसमें भी मंगलश्लोक शिवस्तुतिपर है। इसकी प्रस्तावना भी अन्य नाटकोंकी तरह छोटी है। इसमें कविने अपना नाम स्पष्ट दिया है। कालिदासके मार्मिक निरीक्षण और सृष्टिवर्णनकी रुचि इसमें भी उत्कट रीतिसे दीख पड़ती है। कितने ही स्थलोंमें उसके अन्य ग्रन्थोंकी कल्पना निराले शब्दोंमें व्यक्त की गई दीखती है। इन सब प्रमाणोंसे इस ग्रन्थको कालिदासकृत माननेमें सन्देह नहीं रहता।

'मालविकाग्निमित्र' में पाँच अङ्क हैं। इसका संविधानक बहुत जटिल है। पहले अङ्क में प्रस्तावनाके अनन्तर एक विष्कम्भक आया है। उसमें कौमुदिका और बकुलावली नामकी दासियों और गणदास नामक नाटचाचार्यके सम्भाषणमें रानी धारिणीके लिए बनवाई हुई सर्पमुद्राङ्कित अँगूठीका उल्लेख करके कविने प्रेक्षकोंके लिए नायिकाविषयक थोड़ा निम्नलिखित प्रास्ताविक भी दिया है। धारिणीका हीन-जातीय वीरसेन नामक भाई नर्मदाके किनारे सरहदके किलेपर नियुक्त किया गया था। मालविका शिल्पकलामें अत्यन्त निपुण होकर रानी धारिणीकी उत्तम सेवा करेगी ऐसा समझकर वीरसेनने मालविकाको दासी बनाकर भेजा था। रानीने उसे संगीत सिखानेके लिए गणदासकी नियुक्ति की थी। परन्तु उसकी बुद्धिमत्ता देखकर उसके बड़े कुलके होनेका संशय उसको हुआ। एक दिन जब रानी अपने परिजनसमेत चित्र देख रही थी तो राजा अग्निमित्र वहाँ आ गया और मालविकाके रूपपर मोहित होकर उसने उसके सम्बन्धमें कुछ जानना चाहा। इससे धारिणीको संशय हुआ और वह उसको राजाकी दृष्टिसे बचानेके लिए उसकी विशेष सावधानी रखने लगी। इतना हाल बिलकुल थोड़े शब्दोंमें कहकर कविने पाठकोंका कुतूहल जागृत किया है। इसके अनन्तर मुख्य अंकका प्रारंभ होता है। प्रथम राजा और अमात्य प्रवेश करते हैं। उनके संभाषणसे प्रेक्षकोंको मालूम पड़ता है कि मगधमें राज्यक्रांति हुई है और मौर्य राजाको पदच्युत किया गया है। उसके सचिवको कारागृहमें बन्दकर अग्निमित्रके पिता पुष्यमित्रने गद्दी ले ली है। इसी समय विदर्भके राजसिंहासनके विषयमें दो चचेरे भाइयोंमें कलह उत्पन्न हुआ था। उसमेंसे एक भाई माधवसेन अपनी बहन

मालविका अग्निमित्रको देने और उसकी मदद माँगनेके लिए विदिशा जा रहा था। इधर उसके चचेरे भाई यज्ञसेनने गद्दी छीन ली और अपने सीमान्त अधिकारियोंद्वारा उसको कैद करा लिया। अग्निमित्रने माधवसेन और उसकी बहनको छोड़नेके लिए उसे लिखा। तब उसने उत्तरमें कहा कि "मेरे साले और मौर्य राजाके मन्त्रीको आपने कैद किया है, यदि आप उनको छोड़ देंगे तो मैं भी माधवसेनको छोड़ दूंगा। माधवसेनको पकड़नेकी गड़बड़में उसकी बहन कहीं भटक गई है। उसका भी पता लगानेके लिए यत्न करूंगा।" अग्निमित्रको विदर्भका राज्य पादाक्रांत करना था। इसलिए उसको अनायास यह निमित्त मिल गया। इसके बाद वह विदर्भपर चढ़ाई करनेके लिए अपने सेनापतिको आज्ञा देता है। राजकार्य पूरा होनेपर अमात्य जाता है और विदूषक प्रवेश करता है। उसके और राजाके संभाषणसे राजाको मालविका दिखा देनेकी कोई युक्ति उसे सूझी है ऐसा प्रेक्षकोंको मालूम पड़ता है। इतनेमें गणदास और हरदत्त इन दोनों नाट्याचार्योंमें विदूषककी कलह-प्रियतासे लड़ाई शुरू होती है और वे दोनों उसका निर्णय करानेके लिए राजाके पास आते हैं। गणदासको धारिणीका आश्रय प्राप्त होनेसे हमने कुछ निर्णय दिया तो रानीको क्रोध आवेगा इस कारण राजा यह सुझाता है कि रानीके सामने पंडिता कौशिकी नामक परिव्राजिकाको इसका मध्यस्थ बनाया जाय। उस प्रस्तावको दोनों मान लेते हैं और कंचुकी उसे बुला लाता है। रानीको उनका कलह अच्छा नहीं लगता और जब परिव्राजिका कहती है कि "जो स्वतः अत्यन्त निपुण होकर दूसरोंको सिखानेमें भी निपुण होता है वही श्रेष्ठ शिक्षक है। अतः तुम अपनी अपनी शिष्याओंकी परीक्षा दिलाओ और उनका अंगसौष्ठव स्पष्ट दीखता रहे इसलिए पात्र नेपथ्य-रहित रहें।" तब तो उसका संशय और भी पक्का हो जाता है। इधर इसी निमित्तसे मालविकाको नजरसे भरपूर देख सकनेकी राजाकी कार्यवाही इस कलहके भीतर छिपी है, ऐसा उसको मालूम होता है और वह राजाको टोंचती है कि "राज्यकार्यमें आप इसी प्रकार कौशल दिखावें तो कितना अच्छा हो।" तो भी गणदासके आग्रहसे मृदंग-ध्वनि सुन पड़ने पर नाचकी तैयारी हो गई, ऐसा समझकर सब लोग वहाँ जाते हैं (अंक १)। इस तरह पहले अंकमें कथानकका आरम्भ होता है। उस समयकी राजकीय परिस्थितिका संक्षेपसे वर्णन करके कविने नायिकाके प्रति प्रेक्षकोंके मनमें कुतूहल उत्पन्न किया है। मुख्य अंकमें गणदास और हरदत्तका कलह, मालविका राजाकी दृष्टि में न पड़े इसलिए रानीकी व्याकुलता, उसको देखनेके लिए राजाकी उत्सुकता, धूर्त परि-

व्राजिकाका निष्पक्ष बननेका आडम्बर और विदूषकका गणदासको चिढ़ाना और उसका उपहासपूर्ण विनोद उत्तम रीतिसे अंकित किया गया है। इसमें संक्षेपसे कथानकको मनोरञ्जक बनानेकी कालिदासकी कला उत्तम प्रकारसे दीख पड़ती है। यहाँ सब पात्रोंके भाषण चटकदार हैं। उनमें अनावश्यक भाग कहीं नहीं है। दूसरे अंकका स्थल राजाके महलकी संगीतशाला है। राजा, विदूषक, धारिणी और परिव्राजिकाके सामने छलिक नामक नाट्यप्रयोग होनेवाला है। हरदत्तकी अपेक्षा वयोवृद्ध होनेके कारण गणदासको अपनी शिष्याका शिक्षणनैपुण्य पहले दिखानेके लिए परिव्राजिका आज्ञा देती है तब मालविका प्रवेश करती है। विदूषक और राजाको वह उसके चित्रकी अपेक्षा अधिक सुन्दर दीखती है। राजा उसके सौन्दर्यका वर्णन करता है।

दीर्घाक्षं शरदिन्दुकान्तिवदनं बाहू नतावंसयोः
संक्षिप्तं निबिडोन्नतस्तनमुरः पार्श्वे प्रमृष्टे इव।
मध्यः पाणिमितो नितम्बि जघनं पादावरालांगुली
छन्दो नर्तयितुर्यथैव मनसः श्लिष्टं तथास्या वपुः ।। माल. २, ३.

'इसके नयन विशाल हैं, मुखकी कांति शरच्चन्द्रके सम्मान है, भुज स्कन्धके पास, किंचित झुके हुए दीखते हैं, अशिथिल और उन्नत स्तनोंसे वक्षःस्थल भरा हुआ है, बगलें दबी हुई है, कमर केवल वित्ताभर है, नितम्बभाग मोटा और पैरोंकी उँगलियाँ कुछ टेढ़ीसी हैं। (सारांश) नृत्याचार्यके पसन्दके अनुसार ही इसका शरीर सुघड़ बना है।' इसके अनन्तर मालविका अभिनयके साथ पद गाती है। गान समाप्त होनेपर मालविका चली जानेको ही थी कि राजा उसको स्वस्थतासे भरपूर देख ले इस बहाने विदूषक कहता है, 'थोड़ा ठहरो–इसमें थोड़ासा क्रमभङ्ग हुआ है वह मुझे पूछना है।' धारिणीको मालविकाका वहाँ खड़ा रहना बिलकुल नहीं भाता परन्तु गणदासके आग्रहसे वह चुपचाप बैठी रहती है। 'इसमें तुमको कौनसा दोष दिखाई दिया' यह गणदासके पूछनेपर विदूषक कहता है 'परीक्षकसे पूछो; मैं बादमें बताऊँगा।' परिव्राजिका और राजा उसके अभिनय इत्यादिकी स्तुति करते हैं तब विदूषक कहता है, 'अजी, प्रथम प्रयोग दिखानेके पहले ब्राह्मणोंकी पूजा करनी पड़ती है, यह तुम भूल गये।' विदूषक नृत्यमें कुछ दोष निकालेगा ऐसा सबको अनुमान था, परन्तु उसका यह अनपेक्षित उत्तर सुनकर सब हँसने लगते हैं और मालविका भी मन्दस्मित करती है। उसे देखकर राजाको मालूम पड़ता है कि हमारे नेत्र सफल हुए। वह कहता है—

स्मयमानमायताक्ष्याः किञ्चिदभिव्यक्तदशनशोभि मुखम्।
असमग्रलक्ष्यकेसरमुच्छ्वसदिव पङ्कजं दृष्टम्॥माल. २, १०.

'इस विशालनेत्रका मन्दस्मित करता हुआ मुख थोड़ेसे दीखते हुए दशनोंसे ऐसा शोभित हो रहा है, जैसा कि वह अधखिला कमल जिसकी केशर पूरी न दिखाई देती हो।' इसमें कालिदासने मन्दस्मितसे जिसके दाँत थोड़ेसे दिखते हैं ऐसे मालविकाके मुखको खिलनेवाले कमलकी सुंदर उपमा दी है। विदूषककी ऊपर की हुई टीकापर गणदास कहता है–'रंगभूमिमें नेपथ्यसहित संगीतका प्रयोग होता तो आपके सदृश महान् ब्राह्मणको हम कैसे भूल सकते?' इसके बाद मालविका लौट जाती है। अब हरदत्तकी शिष्या और राजाकी तरुण स्त्री इरावतीके नाट्यकी बारी आती है। परन्तु राजाको इसके लिए बिल्कुल उत्सुकता नहीं है। इतनेमें वैतालिक परदेके भीतर मध्यान्ह-कालका सुंदर वर्णन करता है। उसको सुनकर विदूषक कहता है 'अब तो भोजनका समय हो गया। अगर भोजन-वेला टल गई तो दोष उत्पन्न होता है यह वैद्य लोग कहते हैं।' तब हरदत्तका प्रयोग देखना दूसरे दिनके लिए टालकर सब लोग मध्याह्न-कृत्य करने जाते हैं। (अंक २)इस अंकमें भी मालविकाका नाट्य, वह रंगभूमिमें बहुत समय तक रहे इसलिए विदूषककी युक्ति, उससे रानीका जलना इत्यादि बातें उत्तम रीतिसे अंकित की गई हैं। इरावतीके नाट्यका प्रदर्शन कथानकके लिए आवश्यक नहीं, इसलिए कविने जानबूझकर बड़ी खूबीके साथ टाल दिया है। इससे कविका संयम अच्छी तरह प्रतीत होता है। मालविकाका सौन्दर्य, नाट्य और खडे रहने का ढंग वर्णन करते हुए कालिदास की सूक्ष्म-निरीक्षण-शक्ति और वैतालिक के पद्यमें उसकी सृष्टि-वर्णनकी रुचि स्पष्ट दीख पड़ती है। विदूषकका विनोद केवल हास्योत्पादक ही नहीं किन्तु कथानकका पोषक भी है। द्वितीय अंककी घटना के दो चार दिन बाद तृतीयांकके आदिमें एक छोटे प्रवेश का प्रारम्भ होता है। पंडिता कौशिकीकी पारिचारिका किसी निमित्तसे प्रमदवन नामक उद्यान में जाती है। वहाँ उसे उद्यान-पालिका मिलती है। उनके संभाषण से हमको तीन बातें मिलती हैं। (१) इरावतीके नाट्य-प्रयोग देखने पर परिव्राजिकाने निर्णय किया कि दोनों आचार्य अपनी कलामें बराबर निपुण हैं। परन्तु गणदासको उत्तम शिष्या मिलनेके कारण उसकी जीत हो गई। (२) जिस दिनसे राजाने मालविकाको देखा उस दिनसे उसका मन उसपर आसक्त हो गया। मालविकाकी भी इसी प्रकारकी दशा हो गई और वह पहिनी हुई मालतीमालाकी तरह म्लान हो गई। (३) उद्यानमें वसंत ऋतुका प्रारम्भ हो

गया है तो भी सुवर्ण अशोक वृक्षमें फूल नहीं आये, यह बात धारिणीको जतानेके लिए उद्यान-पालिका राजमहलकी तरह जाती है। इसके अनन्तर मुख्य अंकमें राजा और विदूषकके संभाषणसे मालूम होता है कि इरावती रानीने अपनी सखी निपुणिकाको भेजकर राजासे विनती की है कि वसंत ऋतु शुरू हो गई है। इसलिए आपके साथ झूलेपर बैठकर झूलनेकी मेरी इच्छा है। राजाने पहले ही स्वीकृति दे दी थी। परन्तु पीछे मेरा मन मालविकापर आसक्त हुआ है, यह रानीको मालूम हो जायगा, ऐसा समझकर वह उधर जाना नहीं चाहता। विदूषकके आग्रहसे वे दोनों प्रमदवनकी तरफ जाते हैं। उद्यानमें जानेके बाद राजा वसन्त ऋतुकी शोभाका वर्णन करता है। यह वर्णन बहुत उत्तम हुआ है। इतनेमें मालविका भी वहाँ आ जाती है। उसके स्वगत भाषणसे मालूम होता है कि विदूषककी धूर्तताके कारण धारिणी झूलेसे गिर पड़ी, और उसके पाँवमें चोट आई। अतः सुवर्ण अशोकमें फूल आवें इसलिए आवश्यक पाद-प्रहार करनेके लिए उसने मालविकाको भेजा है और 'पाँच रातके भीतर अगर उसमें फूल आये तो मैं तेरी इच्छा पूरी करूंगी' ऐसा वचन भी दिया है। मालविका एक शिलापर बैठती है। उसको दूरसे देखते ही राजा और विदूषक दोनों चुपकेसे उसके पास आकर खड़े हो जाते हैं। इतनेमें मालविकाके पाँवमें महावर लगाने और नूपुर पहनानेके लिए उसकी सखी बकुलावलिका वहाँ आती है। राजा बगीचेमें गया है, ऐसा जानकर इरावती और उसकी दासी निपुणिका भी जा पहुँचती हैं और उनकी बातचीत सुनती हुई खड़ी रहती हैं। विदूषकने पहलेहीसे राजासे प्रेम करनेके लिए मालविकाको प्रोत्साहन देते हुए बकुलावलिकाको कह रक्खा था। तदनुसार मालविकाके पाँवमें महावर लगाती हुई और नुपूर पहनाती हुई बड़ी चतुराईसे वह अपना काम करती है। मालविकाको धारिणीसे डर लगता है। तब वह कहती है, 'भ्रमरका त्रास सहना पड़ेगा इसलिए क्या कोई वसन्त ऋतुकी सर्वस्व आमकी मंजरीको अलङ्कारके रूपमें कानमें नहीं लगाता?'। पाँव अलंकृत हो जानेपर दोनों आपसमें कहती हैं—

बकुलावलिका —एष उपारूढराग उपभोगक्षमः पुरतस्ते वर्तते।

मालविका (सहर्षम्)—किं भर्ता?

बकुलावलिका (सस्मितम्)—न तावद्भर्ता। एषोऽशोकशाखावलम्बी पल्लवगुच्छः। अवतंसयैनम्।

इसमें राजा और अशोकपल्लव दोनोंके लिए समान रूपसे प्रयुक्त होनेवाले राग और उपभोग इन श्लेष-युक्त शब्दोंका उपयोग कर बकुलावलिकाने बड़ी

चतुराईसे मालविकाके मुखसे प्रेम व्यक्त कराया है। राजा छिपकर यह संवाद सुन ही रहा था। उससे उसे अत्यन्त आनन्द होता है। राजाको प्रगट होनेके लिए कुछ निमित्त चाहिए था। इसलिए विदूषक पहलेहीसे आगे आकर कहता है, 'अजी, हमारे राजाके प्रियवयस्य अशोकको लात मारना क्या अच्छा है?' उसपर 'रानीकी आज्ञासे ऐसा किया है। इसे आप क्षमा कीजिए।' ऐसा कहकर वकुलावलिका मालविकासे राजाको नमस्कार कराती है। फिर 'आनन्दरूपी पुष्प बहुत दिनोंसे मुझे नहीं मिला है इसलिए अपने स्पर्शामृतसे मेरी इस इच्छाको पूरी करो' यह राजाके कहते ही इरावती आगे आकर रङ्गमें भंग कर देती है। 'तुम्हारे आने तक मैं इससे वातचीत कर अपना मनोरंजन कर रहा था' ऐसा वोलकर राजा अपने कृत्यको छिपानेका प्रयत्न करता है। परन्तु उससे इरावतीका समाधान क्यों होगा? वह तुरन्त कमरसे गिरा हुआ कमरपट्टा लेकर राजाको मारनेके लिए दौड़ती है और राजा उसके पैरोंपर गिर जाता है। तो भी इरावती उसकी तरफ ध्यान न देकर अपनी दासीके साथ चली जाती है (अङ्क ३)। चौथे अङ्कके आरम्भमें राजा और विदूषकके भाषणसे हमें मालूम होता है कि इरावतीके शिकायत करनेपर धारिणीने मालविका और बकुलावलिकाको सुरंगमें बन्द कर रक्खा है और मेरी सर्पमुद्राङ्कित मुहरकी अँगूठी देखे बिना उनको मत छोड़ना ऐसी पहरेदारोंको ताकीद कर दी है।

राजाकी बिनतीसे उसको छुड़ानेकी युक्ति सोचकर विदूषक राजाको धारिणी देवीका समाचार लेनेके लिए भेजता है और स्वयं खाली हाथ रानीके पास नहीं जाना चाहिए इसलिए उद्यानसे फूल लानेके मिस पीछे ठहर जाता है। वह प्रतिहारीको भी अपनी इस चालमें शामिल कर लेता है। धारिणी और परिचारिका हवाघरमें जहाँ बातचीत करती हुई बैठी थीं वहीं राजा जाता है। उनकी थोड़ी वातचीत होती है वैसे ही विदूषक यज्ञोपवीतसे अँगूठीको मजबूतीसे बाँधकर घबड़ाया हुआ प्रवेश करता है और कहता है 'रानीसाहबके दर्शनार्थ फूल लेनेके लिए मैं प्रमदवनमें गया था और अशोकके फूल तोड़नेके लिए मैंने दहिना हाथ बढ़ाया कि उसकी खोहसे निकल कर एक साँपने—यह देखो —यहाँ काट खाया।' यह सुन रानीको बहुत दुख होता है। रानी उसको ध्रुवसिद्धि नामक राजवैद्यके पास भेजती है। उस वैद्यके पाससे प्रतिहारी संदेश लाती है कि 'यदि सर्पकी मुद्रा हो तो उसीसे अभिमन्त्रित करनेपर यह विष दूर हो सकता है। ऐसी कोई वस्तु हो तो भेजना।' रानी अपने पासकी सर्पमुद्राङ्कित अँगूठी उस कार्यके लिए देती है और कार्य होनेके बाद वापस करनेके लिए ताकीद करती है। इसके बाद

'राजाको ग्रहकी बाधा है। इसलिए सब कैदियोंको छोड़ देना चाहिए।' ऐसा ज्योतिषियोंके कहनेपर, इरावतीको बुरा न लगे, इसलिए धारिणी राजाके द्वारा मालविका और बकुलावलीकाको मुक्त कराती है। यह उसकी अँगूठी देख', ऐसा कहकर और उस सर्पमुद्राङ्किकत अँगूठीको दिखाकर विदूषक उनको मुक्त कर प्रमदवनमें भेजता है। राजा भी आवश्यक काम देखनेके लिए रानीके पाससे निकलकर गुप्त मार्गसे उधर जाता है। वहीं विदूषक भी उसे मिल जाता है। राजाको मालविकासे मिलाकर विदूषक और बकुलावलिका वहाँसे चले जाते हैं। विदूषक बाहर एक शिलातलके ऊपर बैठ जाता है और वहाँ उसे नींद आ जाती है। इस बातको देखकर इरावतीकी दासी अपनी मालिकिनको खबर देती है। उधर विदूषककी तबीयत अब कैसी है यह देखनेके लिए इरावती दासीसहित वहाँ आ जाती है। उसी समय विदूषक "मालविके, तू इरावतीसे भी बढ़कर हो" ऐसा स्वप्नमें बड़बड़ाता है। यह सुनकर इरावतीको क्रोध आता है। उसे डरानेके लिए उसकी दासी साँपकी तरह टेढ़ी मेढ़ी लकड़ी विदूषककी तरफ फैंकती है और वह घबड़ाकर जोरसे चिल्ला उठता है। यह सुनकर राजा, मालविका और बकुलावलिका वहाँ आ जाते हैं। उनको वहाँ देखकर इरावतीके क्रोधका ठिकाना नहीं रहता है। वह इस बातकी खबर धारिणीको देनेके लिए दासीको भेजती है। अब इस प्रसंगसे अपनेको कैसे छुड़ाऊँ यह राजा सोचता है। उसी समय धारिणीकी छोटी कन्या वसुमती पिंगल रंगके वानरको देखकर घवड़ा गई है ऐसी खबर राजाको दी जाती है। उस समय स्वयं इरावती राजपुत्रीको आश्वासन देनेके लिए राजाको वहाँ भेजती है। यह देखकर विदूषक अपने आप कहता है, 'शाबाश! पिंगलवानर, शाबाश! तू मौकेपर अपने मित्रकी रक्षा करनेके लिए आया।' इतनेमें परदेके भीतर, 'अरे क्या आश्चर्यकी बात है कि पाँच रात्रि होनेके पहले ही सुवर्ण–अशोकमें कली आ गई। यह खबर मुझे रानीको देनी चाहिए।' ये उद्यानपालिकाके शब्द सुन पड़ते हैं। तब तुम्हारे मनोरथको पूर्णकर रानी अपना वचन पालेगी, ऐसा कहकर बकुलावलिका मालविकाको धैर्य धराती है। वे भी उद्यान–पालिकाके साथ साथ रानीकी तरफ जाती हैं।

तीसरे और चौथे अङ्कमें अनेक प्रसङ्ग रखनेसे उनमें कथानककी गति शीघ्र चलती हुई दीखती है। उसमें इरावतीने अचानक आकर राजा और मालविकाको एकान्तमें देख लिया, इस प्रसङ्गकी पुनरुक्ति हुई है। विदूषककी मालविकाको छुड़ानेकी युक्ति अत्यन्त प्रशंसनीय है। सर्पमुद्राङ्कित अँगूठीका आगे ऐसा उपयोग होगा यह समझ कर कालिदासने पहले अंकमें उसका उल्लेख किया है।

उससे उसके रचनाकौशलका पता लगता है। विदूषक शिलातल के ऊपर बैठता है, और वह तुरन्त स्वप्नमें बड़बड़ाता है, यह बात कुछ अस्वाभाविक मालूम पड़ती है। परन्तु 'स्वप्नवासवदत्त' नाटकमें भी भासने इसी प्रकारका एक प्रसङ्ग रक्खा है। अतः केवल क.लिद.स ही इस ब.तमें दोषी नहीं ठहरते। विदूषकके भाषणमें हमेशा भरपूर विनोद है। अपने सामने मालविकाकी स्तुति सुनकर इरावतीका चेहरा देखने लायका हो गया होगा (अंक ४)।

पाँचवें अंकके पहले छोटे प्रवेश में उद्यान–पालिका और धारिणीके सेवक सारसकके भाषणसे प्रतीत होता है कि धारिणीके पुत्र वसुमित्रकी नियुक्ति अश्वमेधके घोड़ेकी रक्षाके लिए हुई थी। उसके दीर्घायुष्यके लिए रानी ब्राह्मणको सुवर्ण–दक्षिणा देती है। रानीके भाई वीरसेनने विदर्भ–नृपतिपर विजय प्राप्त कर माधवसेनको छुड़ाया है। उसने मूल्यवान् रत्न और एक शिल्पकुशल दासी भेटमें भेजी है। इसके बादके मुख्य प्रवेशमें पुष्पित सुवर्णाशोक देखनेके लिए अलंकृत मालविका और परिव्राजिका सहित धारिणी प्रमदवनकी तरफ जाती है और राजाको भी वहाँ बुलाती है। उन सबके वहाँ इकट्ठे होने पर कन्चुकी माधवसेनकी तरफसे आई हुई दो संगीत–निपुण दासियोंको ले आता है। वे वहाँ आते ही मालविकाको अपने स्वामीकी बहनके रूपमें पहचान लेती हैं। माधवसेनके पकड़े जानेके अनन्तर उसका सुमति नाम मन्त्री उसको गुप्त रीतिसे वहाँसे हटा ले गया था, ऐसा वे कहती हैं। इसके बादका हाल परिव्राजिका इस तरह सुनाती है—"आर्य सुमति मेरा बड़ा भाई है। मालविकाको लेकर वह एक व्यापारीके संघमें जा मिला। जंगलमें जाते हुए उन पर चोरोंने हमला किया, उस समय उनसे लड़कर मेरे भाईने देहपात किया। यह देखकर मुझे मूर्च्छा आ गई। जब मुझे सुध आई और देखा तो मालविका वहाँ नहीं थी। इधर मैं अपने भाईका देहसंस्कार करके इस देशमें आई और गेरुए वस्त्र धारण कर लिये। वीरसेनने मालविकाको छुड़ाया और दासीके तौर पर धारिणी देवीके पास भेज दिया। इसके पिताके जीवनकालमें एक भविष्य जाननेवाले साधुने कहा था कि इसको एक वर्ष दासी बनकर रहना पड़ेगा। ठीक वैसी ही घटना घट रही है, यह देखकर मैं इस विषयमें किसीसे नहीं बोली।" मालविका दासी नहीं, राजकन्या है, उसके साथ मैंने वृथा बुरी तरहसे व्यवहार किया, इसके लिए रानीको पश्चात्ताप होता है। और यह उसका विवाह राजासे कर देनेका निश्चय करती है। अमात्यपरिषद्की सम्मतिसे राजा विदर्भका राज्य यज्ञसेन और माधवसेन दोनोंमें बाँट देता है और वर्धा नदीको उनके राज्यकी सीमा ठहराता है। इतनेमें

पाटलिपुत्रसे सेनापति पुष्यमित्र नीचे लिखे हुए समाचार भेजता है। 'यज्ञके घोड़ेको सिंधु नदीके दक्षिण तीरपर यवनोंने पकड़ लिया था। परन्तु कुमार वसुमित्रने उनको हराकर उसे छुड़ाया। इसलिए क्रोधको छोड़कर सब रानियोंके साथ तुम यज्ञसमारम्भके लिए यहां आ जाओ।' अपने पुत्रका पराक्रम सुनकर धारिणीको अत्यन्त आनन्द होता है और वह इरावतीकी सम्मतिसे मालविका राजाको सौंप देती है। राजा मालविकाको स्वीकार करनेमें लज्जित होता है। तब रानी थोड़ासा हँसकर पूछती है 'तो क्या मेरी अवज्ञा करते हो?' इसपर विदूषक कहता है 'रानी साहिवा, यह लोकाचार है। विवाहके समय हर एक वर लज्जित होता है।' इसके बाद परिव्राजिका माधवसेनके पास जानेकी आज्ञा माँगती है परन्तु राजा और रानी उससे अपने पास ही रहनेके लिए आग्रह करते हैं। अन्तमें भरतवाक्यसे नाटक समाप्त होता है (अंक ५)। इस अंकमें एकके पीछे एक ऐसी घटना होती जाती है कि वहाँ राजाका मालविकाके साथ विवाह कर देनेके सिवा धारिणीके लिए और दूसरा मार्ग नहीं रह जाता है। पूर्वनिश्चित अवधिमें अपने प्रिय सुवर्ण अशोकमें कलियाँ आ जानेसे रानीको अपना वचन अवश्य पालना पड़ता है और मालविका भी हीन कुलकी न होकर राजकन्या है और हमने उसे अनाथ समझ कर दुर्व्यवहार किया और उसको सुरंगमें बंद करके बड़ा भारी अन्याय किया है, यह धारिणीके मनमें खटकता है। इतनेमें ही उसके कम उम्रवाले लड़केने बड़े बड़े योद्धाओं को जिसका अभिमान हो सकता है, ऐसा पराक्रम दिखाया, इस बातको सुनकर वह आनन्दमें स्त्री–स्वभावसुलभ मात्सर्य भूलकर राजाको मालविका देनेके लिए तैयार हो जाती है।

'मालविकाग्निमित्र' का संविधानक यद्यपि जटिल है तो भी उसमें वैचित्र्यपूर्ण प्रसंगोंकी कमी नहीं। विदूषकका मालविकाको राजाकी नजरमें लाना और बादमें उसके कैद होने पर उसे छुड़ानेके लिए की गई युक्तियाँ भी उल्लेखनीय हैं। इस नाटकमें उसका विनोद केवल खाने पीनेकी चीजोंमें सीमित न होकर कथानकसे संबद्ध और मनोहर हुआ है। कालिदासने इस नाटकका संविधानक कहाँसे लिया है यह मालूम नहीं होता। तो भी पुष्यमित्रका अश्वमेध, वसुमित्रका यवनोंको पराजित करना और विदर्भाधिपतिका पराभव, उसके राज्यका बँटवारा और उसके घरानेकी राजकन्याका अग्निमित्रके साथ विवाह ये बातें ऐतिहासिक दीखती हैं। पुष्यमित्रकी सेनापतिकी पदवी और उसका किया हुआ अश्वमेध–इनके ऐतिहासिक होनेमें तो कोई संदेह रहता ही नहीं, क्योंकि इनका उल्लेख अयोध्याके शुंग–कालीन शिलालेखमें स्पष्ट रूपसे आया है। (देखिए पृ. ४१) कालिदासके

समय अग्निमित्रकी विलास–प्रियता परंपरागत वार्ताओंसे लोगोंको मालूम रही होगी। इस नाटकके संविधानक रचनेमें उसको कदाचित् गुणाढचकी 'बृहत्कथा' से सहायता मिली होगी। यह 'बृहत्कथा' पैशाची भाषामें लिखी गई थी। वह आजकल मिलती नहीं, परन्तु उसके सारांश रूपमें दो ग्रन्थ, सोमदेवका 'कथासरित्सागर' और क्षेमेन्द्रकी 'बृहत्कथामंजरी' आज भी उपलब्ध हैं। उसमें निम्नलिखित कथा आई है।

उज्जयिनीके राजा महासेनने वासवदत्ता नामक अपनी कन्याका विवाह वत्सदेशके राजा उदयनसे किया था। वासवदत्ताके भाई पालकने स्वयं जीतकर लाई हुई एक बंधुमती नामकी राजकन्याको अपनी बहनके पास भेंटके रूपमें भेजा। वह रूपवती थी। उसको वासवदत्ताने मंजुलिका नाम देकर गुप्तरूपसे रक्खा। एक दिन उद्यान–लतागृहमें वसंतक नामके अपने प्रियमित्र विदूषकको साथ ले घूमते हुए उदयनने उसे देखा और उससे गान्धर्व–विवाह किया। यह क्रिया छिपी हुई वासवदत्ताने देखी और इससे उसको क्रोध आया और वह वसन्तकको बाँधकर ले गई। तब राजा उसकी माँके घरकी सांकृत्यायनी नामकी परिव्राजिका मैत्रिणीके शरणमें गया और उसकी सहायतासे वह वसन्तकको छुड़ाकर लाया। रानीकी अनुमतिसे परिव्राजिकाने बन्धुमतीको राजाको अर्पण किया। (कथासरित्सागर, पृ. ५६)

'मालविकाग्निमित्र' के सविधानकमें और ऊपरके कथानकमें जो साम्य है वह पाठकोंके ध्यानमें आ गया होगा। दोनोंमें भी नायिकाका पहिले गुप्तरूपमें होना, विदूषककी सहायतासे उद्यानलतागृहमें मिलना, तदनन्तर बन्दीवास और अंतमें परिव्राजिकाकी सहायतासे नायिकाका राजाके साथ विवाह, ये बातें समान हैं। दोनों कथानकोंमें भेद भी है। तो भी कथानक कहींसे लेकर उसमें आवश्यक भेद करनेकी कालिदासकी प्रवृत्ति ध्यानमें रखने से 'मालविकाग्निमित्र' के संविधानकका 'बृहत्कथा' से लिया जाना असम्भव नहीं प्रतीत होता है। पाँच रात्रियोंमें अशोकका फूलना, इस शर्तकी कल्पना भासके 'पंचरात्र' नाटकसे कविको सूझी होगी। पहले और दूसरे अंकमें नाट्याचार्योंका कलह और मालविकाका नाट्यप्रयोग, मालविकाको छुड़ानेके लिए विदूषककी युक्ति इत्यादि बातें कविकी कल्पना–शक्तिकी उपज प्रतीत होती है।

इस नाटकका कथानक आठ–दस दिनमें ही पूरा हो जाता है। कालिदासके दूसरे नाटकोंके कथानकोंकी तरह इसमें स्वभाव–विकासके लिए अवकाश नहीं है। इसमें सब पात्र प्रारम्भसे लेकर अन्तपर्यन्त एक ही प्रकारके रहते हैं। और

इसी तरह कविकी यह पहली नाटचकृति होनेसे इसमें पात्रोंको मनोविकारोंका आविष्कार करनेमें उसका प्रयत्न नहीं दीखता। इस नाटकमें अग्निमित्र और विदूषक ये पुरुषपात्र और मालविका, धारिणी, इरावती और परिव्राजिका ये स्त्री-पात्र मुख्य हैं। हरदत्त, गणदास, बकुलावलिका, निपुणिका इत्यादि गौण-पात्र हैं। कालिदासके सब नायकोंमें अग्निमित्र हीन दर्जेका है। संस्कृत अलंकार-कर्ताओंके भेदके अनुसार वह धीरललित नायक है। 'रघुवंश' में अग्निवर्णकी तरह वह राजकाजसे बिलकुल बेपरवाह नहीं है, यह बात ठीक है। परन्तु उसमें शौर्य, धैर्य इत्यादि उदात्तगुण बिल्कुल नहीं दीखते। इस नाटकमें उसका उद्देश्य किसी प्रकारसे मालविकाको काबू करना है। उसके बोलनेमें बहुत मिठास है। स्त्री-दाक्षिण्य उसके रोम रोममें भरा है। मालविकाके साथ एकान्तमें पकड़े जानेपर इरावतीके सदृश चण्डीको प्रसन्न करनेके लिए वह उसके पाँव भी पड़ता है। अपनी प्रेमाभिलाषा पूर्ण करनेमें वह सदैव विदूषकका आश्रय लेता है। मालविका दृष्टिगोचर हो, यह युक्ति विदूषकने बताई। आगे एकान्तमें पकड़े जानेपर वहाँसे कैसे छूटना, यह भी विदूषकने ही सुझाया है। मालविकाके सुरंगमें बन्द किये जानेपर उसको वहाँसे छुड़ाकर राजासे प्रमदवनमें उसकी विदूषकने ही भेंट कराई। हर समय काममें आनेवाला यह 'कामतन्त्रसचिव' यदि राजाके पास न होता तो उसकी अवस्था बहुत कठीन हो जाती, इसमें कोई सन्देह नहीं है। अग्निमित्र उस कालकी राजनीतिका और कालिदासकी दृष्टिसे भी आदर्श राजा था, ऐसा डॉ. केतकरने कहा है। परन्तु यह मत सप्रमाण मालूम नहीं होता। कर्मशील जवान लड़केका यह पिता अन्तःपुरमें अनेक स्त्रियोंके होते हुए भी तरुणी दासीपर अनुरक्त होकर उससे चोरीसे अनुराग करता है, तथा पकड़ा जानेपर अपनी स्त्रीके पैर पड़ता है, परन्तु अपनी आसक्ति नहीं छोड़ता। उसके पिता पुष्यमित्रने अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया है और दिग्विजय के लिए घोड़ा छोड़ा है। ऐसे समय स्वयं न जाकर उसकी रक्षा करनेका भार अपने कम उम्रवाले कुमारपर डाल देता है। विदर्भ देशपर स्वयं चढ़ाई नहीं करता, प्रत्युत उस समय भी अन्तःपुरकी प्रेमलीलामें मस्त रहता है—ऐसे विलासी और कर्तव्यशून्य राजाको अपने अन्य ग्रन्थोंमें दिलीप, रघु, राम इत्यादि राजर्षियोंके उदात्त चरित्र रसाल वाणीमें वर्णन करनेवाला कालिदास आदर्श मानेगा यह ठीक नहीं जँचता। इस नाटकमें कविने अपने समयके सामान्य राजालोगोंके अन्तःपुरके कृत्योंका वर्णन किया है, ऐसा प्रतीत होता है।

कालिदासके सब नायकोंमें अग्निमित्र हीन और सब विदूषकोंमें 'मालविकाग्निमित्र' का गौतम नामक विदूषक अत्यन्त होशियार है। अन्य विदूषकोंकी भाँति

यह खाने पीनेका शौकीन और निद्रालु तो है ही, परन्तु वह उनकी तरह भुलक्कड़ और मन्दबुद्धि नहीं, किन्तु युक्ति निकालनेमें अत्यन्त निपुण है। जबाब और उपहास करनेमें चतुर है। राजासे उसकी दोस्ती है। राजाको मालविका मिले इसके लिए वह नाना प्रकारकी युक्तियाँ लड़ाता है। दो नाट्याचार्योंमें कलह करवाता है। मालविकाको प्रमद-वनमें भेजनेके लिए षड्यन्त्र रचकर रानीके पैरमें दर्द पैदा करता है। अन्तमें रानीके पास से अँगूठी लेनेके लिए विष-बाधाका बहाना करता है। चालाकीका जाल बुननेमें वह जैसा होशियार है वैसा ही अभिनय कलामें भी निपुण है। इरावती उसकी कुशलता देख उसे 'कामतन्त्रसचिव' की पदवी देती है। उस समय वह कहता है—"कामनीतिका एक अक्षर भी अगर मुझे आता हो तो मुझे गायत्री मन्त्रकी शपथ।" ऐसे बुद्धिमान् मनुष्यको कालिदासने परम्पराके अनुसार पेटू और निद्रालु दिखाया है। तो भी उसकी विसंगति शीघ्र ही उनके ध्यानमें आ गई होगी। इतना चतुर विदूषक मित्र दिखानेसे नायक बिलकुल निकम्मा हो जाता है। इस कारण कालिदासने अपने दूसरे नाटकोंमें विदूषकको प्राचीन परम्पराके अनुसार ही चित्रित किया है।

मालविका विदर्भ-राजकन्या है परन्तु दैवदुर्गतिसे उसे दासी होकर रहना पड़ता है। वह अत्यन्त रूपवती और नाटचकलामें निपुण दिखाई गई है। अपना विवाह अग्निमित्रसे होगा ऐसा उसे मालूम था, तो भी दैववशात् दास्य प्राप्त होनेपर वह उच्चपद मिलना अशक्य है इस बातको वह जानती है। राजाका मन उस पर रीझ गया है और वह उसके लिए आतुर है ऐसा मालूम होनेपर आगे पीछेका विचार न करके आनाकानी किये बिना वह राजी हो जाती है, इसीलिए वह कालिदासकी दूसरी नायिका पार्वती और शकुन्तलाके समान धीरप्रकृतिकी नहीं दीख पड़ती, तथा अज्ञातवासके कष्ट भोगते हुए उसे अपने पूर्व वैभवकी स्मृति हो आई हो ऐसा उसके भाषण से नहीं जान पड़ता। एक तरहसे यह कुछ अस्वाभाविक है। धारिणी और इरावतीके स्वभावोंका विरोध कालिदासने अच्छी तरह दर्शाया है। धारिणी मध्यम अवस्थाकी पटरानी है। अन्तःपुरमें सब लोग उसकी धाक मानते हैं। अपने पतिका भ्रमरवृत्तिसे नित्य नई नई स्त्रियोंपर आसक्त होना उसको बिल्कुल नहीं जँचता। मालविका-सदृश एक साधारण दासीने राजाका ध्यान अपनी तरफ खींचा है, यह समझते ही वह सावधान होकर राजाकी दृष्टिमें मालविका न आने पावे, ऐसा प्रयत्न करती है। तथापि उसकी प्राप्तिके बिना पतिको सुख नहीं होता है, यह ध्यानमें आनेपर उसको सौंपनेकी उदारता भी दिखाती है। अपने पुत्रको दीर्घायुष्य मिले और विजय प्राप्त

हो इसलिए वह प्रतिदिन दान करती है। अपनी भेंटके लिए फूल तोड़ते समय विदूषकको सर्प-दंश हुआ यह मालूम पड़ते ही उसे बहुत दुःख होता है। ऐसे प्रसंगसे उसके स्वभावमें कोमलताकी छटा कविने प्रदर्शित की है। इसके विपरीत इरावती तरुणी है और नृत्य-गायन आदि कलाओंमें प्रवीण है। राजाका मन अपने ऊपरसे हट न जाय इसलिए बड़ी रान से कहकर वह मालविका को बन्दी-खानेमें डाल देती है। इसके अतिरिक्त वह ईर्यालु और मानिनी स्त्री मालूम होती है। इन दोनों रानियोंकी अवस्था और स्वभावमें भेद दिखानेके लिए कालिदासने मद्यमत्त इरावतीको रंगभूमिपर दिखाया है। जिनका तारुण्य चला गया है वे स्त्रियाँ मद्य-पान करती थीं ऐसा कहीं भी उल्लेख नहीं। यहाँ यह कहना आवश्यक है कि कालिदासको अपने समयकी रानीपर टीका करनी थी, यह डॉ. केतकरका मत ग्राह्य नहीं दीखता।

पण्डिता कौशिकी माधवसेनके सचिवकी बहन थी, किन्तु उसपर अकाल-वैधव्यका प्रसंग आया था। आगे अपने भाईकी मृत्यु हो जानेसे उसका रहा सहा आधार भी टूट गया। तब वह विषण्ण होकर संन्यास आश्रमको स्वीकार करती है। तत्कालीन परिस्थितिमें राजकुलमें प्रवेश करनेके लिए उसको बहुत प्रयास नहीं करना पड़ा होगा। तथा मालविकाको देखते ही पहले संकल्पके अनुसार और एक सिद्धके द्वारा बताई हुई भविष्यकी घटनासे उसका राजासे विवाह हो सकता है यह उसको मालूम होता है और उसके लिए वह विदूषककी सहायता करती है। परन्तु सम्पूर्ण नाटकमें मालविका उसको नहीं पहचान सकी, यह आश्चर्यकी बात है। कालिदासने गौण पात्रोंका थोड़ेमें चित्रण किया है। हरदत्त और गणदास इन नाट्याचार्योंका अपनी कलामें अभिमान और एक दूसरेसे स्पर्धा, बकुलावलिकाका अपनी सखीपर निष्कपट प्रेम और उसके लिए संकट सहनेकी दृढता, निपुणिकाका मालविका आदिके अधूरे और परोक्षमें सुने हुए संभाषणसे अनुमान निकालनेमें नैपुण्य, ये सब बातें कालिदासने अच्छी तरह स्पष्ट की हैं। 'मालविकाग्निमित्र' की भाषा प्रसाद-पूर्ण और मनोहर है। उसमें कहीं भी क्लिष्टता और कृत्रिमता नहीं है। इस नाटकमें कालिदासने अलंकारोंकी भरमार न होनेकी सावधानी रक्खी है। कविका यह पहला ही नाटक होनेसे उसने उसमें 'मायूरी मदयति मार्जना मनांसि' इत्यादि स्थलोंमें तरुण कविको विशेष अच्छे लगनेवाले अनुप्रासादि शब्दालंकारोंका उपयोग किया है। दो तीन प्रसंगोंमें श्लेषका भी बड़ी खूबीके साथ प्रयोग किया है। तो भी और ग्रंथोंकी तरह इसमें उपमादि अर्थालंकारोंकी अधिकता है। इस नाटकसे कालिदासका नाम

निश्चय ही सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया होगा और उसको चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यका स्थायी आश्रय मिला होगा। पीछेके प्रकरणमें जैसा कहा गया है, चन्द्रगुप्तके कुमारगुप्त नामक पुत्र उत्पन्न होनेके अवसरपर कालिदासने 'कुमारसंभव' नामका काव्य रचा। उसके बाद राजकुमारका राज्याभिषेक हुआ। उस समय उसका दूसरा नाटक 'विक्रमोर्वशीय' खेला गया होगा। क्योंकि इस नाटकके अन्तमें पुरूरवाके आयु नामक पुत्रके यौवराज्याभिषेकका प्रसंग वर्णित है। अब हम उस नाटककी ओर ध्यान देंगे।

विक्रमोर्वशीय

इस नाटक में पाँच अंक हैं। नांदी द्वारा कालिदासने अपने अन्य नाटकोंकी तरह शंकरजीकी स्तुति की है। अनन्तर सूत्रधार प्रवेश करता है और प्रेक्षकोंसे कहता है, "हमारी प्रार्थना माननेके लिए अथवा नाटकके उदात्त नायकका गौरव रखनेके लिए कालिदासकी इस कृतिको आप ध्यानपूर्वक सुनें।" इस समय कविकी प्रसिद्धि हो गई थी। इसलिए उसको इस नाटकके गुण-वर्णनके लिए कुछ भी नहीं कहना पड़ा होगा, ऐसा प्रतीत होता है। इसके बाद आगामी पात्रोंके प्रवेशकी सूचना देकर सूत्रधार चला जाता है और मुख्य अंकका प्रारम्भ होता है। पहले रंभा, मेनका इत्यादि अप्सरायें प्रवेश करती हैं। और सहायताके लिए पुकारती हैं। यह सुनकर सूर्यपूजा करके लौटता हुआ राजा पुरूरवा उनके पास जाकर पूछताछ करता है और उसको यह विदित होता है कि कुबेरभवनसे लौटते समय उर्वशी नामक सुन्दर अप्सरा और उसकी सखी चित्रलेखाको केशी नामक दैत्यने पकड़ लिया है। यह सुनते ही राजा उनसे हेमकूट शिखरपर ठहरनेके लिए कहकर उन दोनोंको बचानेके लिए जाता है और थोड़े ही कालमें चित्रलेखा द्वारा सहारा दी हुई मूर्च्छित उर्वशीको लेकर लौट आता है। इसके अनन्तर उर्वशी होशमें आती है। उस समय उसका सौन्दर्य देखकर राजा मोहित हो जाता है और कहता है—

अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तप्रभः
शृंगारैकरसः स्वयं मदनो मासो नु पुष्पाकरः।
वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः॥ विक्र. १, ९.

'इस सुन्दरीका निर्माण करनेवाला विधाता रमणीय कान्तिका चन्द्र, शृंगार-रस-मय मदन अथवा वसंत ऋतु रहा होगा। क्योंकि वेदाभ्याससे जड़

और उपभोग्य विषयोंसे निरुत्सुक बूढ़ा मुनि ब्रह्मा इतना मनोहर रूप कैसे निर्माण कर सकता है?' उर्वशीका भी मन राजाके शौर्यसे और मधुर भाषणसे उसकी ओर आकृष्ट होता है। अनन्तर वे सब एक जगह एकत्र होकर बातचीत करते हैं। इतनेमें चित्ररथ गंधर्व वहाँ आता है और राजासे कहता है 'महाराज, नारद ऋषिके द्वारा उर्वशी-हरणकी बात मालूम होते ही इन्द्रने उसको वापिस लानेके लिए गंधर्व-सेनाको आज्ञा दी थी। परन्तु मार्गमें भाटोंके द्वारा किया हुआ आपके विजयका वर्णन सुनकर मैं यहाँ आया हूँ। आप उर्वशीको लेकर इन्द्रके पास चलें। आपने इन्द्रका बडाभारी उपकार किया है।' 'इन्द्रके प्रभावसे ही उनके पक्षके लोग मेरी तरह विजयी होते हैं' यह राजाके वचन सुनकर चित्ररथ उत्तर देता है—'अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः' (गर्वका न होना ही पराक्रमकी शोभा है।) इस भाषणमें कालिदासने अपने आश्रयदाता (चन्द्रगुप्त) विक्रमादित्यका गर्वरहित होना श्लेषसे सूचित किया है। प्रेक्षकोंमें बैठे हुए विक्रमादित्यको यह स्तुति अवश्य अच्छी लगी होगी। बादमें अप्सरायें और गन्धर्व आकाशमार्गसे जाते हैं। परन्तु लतामें लटकी हुई मोतियोंकी माला छुड़ानेके मिस राजाको फिर एक बार देखनेके लिए उर्वशी पीछे रह जाती है। उधर राजा भी अपनी नगरीको लौट जाता है (अंक १)। इसके बाद लगभग पन्द्रह दिनकी घटना दूसरे अंकमें आती हैं। आरम्भमें एक छोटा-सा प्रवेशक है, उससे मालूम होता है कि राजाने उर्वशीपर अपनी आसक्तिकी बात विदूषकको बताई और उसको उसे गुप्त रखनेके लिए चेतावनी भी दी। परन्तु रानी औशीनरीको यह संशय है कि राजाका मन किसी दूसरी स्त्रीपर आसक्त है, इसलिए उसने अपनी निपुणिका नामकी दासीको राजाके पास भेजा। वह बड़ी युक्तिसे उस रहस्यको विदूषकसे जान लेती है। उसके बाद राजकार्य देखकर, राजा विदूषकके साथ प्रवेश करता है। मनोविनोदके लिए कहाँ चलें, यह राजाके पूछने पर विदूषक उत्तर देता है—'चलो हम रसोईघरमें चलें, वहाँ पंचपक्वान्न तैयार करनेके लिए इकट्ठी सामग्री देखकर मन बहलायें।' राजाको यह सुझाव पसंद नहीं आया। अतः वे प्रमदवनमें जाते हैं। उधर वसंत ऋतुके आगमनसे विकसित आम्रमंजरीको देखकर राजाका मन और भी ज्यादा अस्वस्थ होता है। वहाँ राजाके कथनानुसार उर्वशीके समागमका कोई उपाय ढूंढ़ निकालनेके लिए विदूषक बैठकर सोचने लगता है। राजाको भावी समागमके सूचक शुभ-शकुन होते हैं। उसके कारण वह भी आशासे राह देखता हुआ बैठ जाता हैं। इतनेमें विमानमें बैठकर उर्वशी और चित्रलेखा वहाँ आती है। विदूषक और राजाको विचार-मग्न

देख, ये क्या बात कर रहे हैं, यह सुननेके लिए वे तिरस्करिणी (गुप्त होनेकी) विद्यासे अदृश्य होकर पास ही खड़ी रहती हैं। उधर विदूषक कहता है, 'राजा, मुझे उपाय मिल गया! स्वप्नमें समागम करानेवाली निद्राका सेवन करो अथवा उर्वशीका चित्र निकाल कर उसे देखते रहो।' राजा कहता है, 'ये दोनों उपाय नहीं सध सकते। मेरा हृदय मदनके बाणोंसे विंधा हुआ है। इसलिए प्रियासे समागम कनेवाली निद्राका मिलन संभव नहीं और यदि उसका चित्र खींचा जाय तो उसके पूर्ण होनेके पहले मेरे नेत्रोंमें आँसू आये विना न रहेंगे। मेरे इस दारुण मदन-संतापको उर्वशी नहीं जानती, ऐसा मालूम पड़ता है।' यह सुनते ही उर्वशी अपनी मदन-बाधाका वर्णन करती हुई दो श्लोकोंको रचकर एक भोजपत्र लिखती है और राजाके आगे फेंक देती है। राजा पढ़कर प्रत्यक्ष उर्वशीसे मिलनेका सा आनन्द प्राप्त करता है। उसकी अँगुलियोंमें पसीना आ जाता है। उसके अक्षर खराव न हो जायें इसलिए वह भोज-पत्र विदूषकको दे देता है। इसके बाद उर्वशी और चित्रलेखा प्रगट होती है। उनका थोड़ा वार्तालाप होता है। इसी समय 'इन्द्र अप्सराओंको सिखाए हुए भरतके अष्टरसयुक्त नाटकका प्रयोग देखना चाहता है और उसने उर्वशीको लेकर आनेकी मुझे आज्ञा दी है,' यह कहता हुआ देवदूत आता है। तव राजासे आज्ञा लेकर उर्वशी सखेद वापस जाती है। इसके बाद मनोविनोद करनेके लिए राजा विदूषकसे वह भोजपत्र माँगता है, किन्तु वह तो उसके हाथसे दूसरी तरफ़ उड़ गया था। तव वह कहता है "यहाँ तो वह कहीं भी नहीं दीखता। मालूम होता है कि उर्वशीके साथ ही चला गया है।" इस लापरवाहीके कारण राजा उसके कान ऐंठता है। वे दोनों-ही उसकी तलाश करने लगते हैं। इतनेमें दासी निपुणिका के साथ रानी औशी-नरी उधर आती है। उसके नूपुरमें वह भोज-पत्र जाकर अटक जाता है। निपुणिका उसे रानीको बाँचकर सुनाती है और यह उर्वशीका प्रेम-लेख है, ऐसा अनुमान करती है। राजाके आगे आकर रानी कहती है 'महाराज, आप जिसे ढूंढ़ रहे हैं वह भोज-पत्र लीजिए।' 'मैं कुछ दूसरी ही चीज़ ढूंढ़ रहा था,' ऐसा राजा बहाना करता है। परन्तु रानी असली बात ताड़ जाती है, इसलिए उसे प्रसन्न करनेके लिए राजा उसके पैरों पड़ता है। परन्तु उसकी ओर ध्यान न देकर रानी दासीके साथ चली जाती है। तब विदूषक कहता है 'अच्छा हुआ जो यह चली गई। जिसकी आँख आ जाती है वह मनुष्य सामने जलते हुए दीएकी ज्योति नहीं सह सकता।' इसपर राजा जवाब देता है, 'मित्र, ऐसी बात नहीं है। उर्वशीके ऊपर मेरा प्रेम है तो भी रानीके लिए मेरे मनमें पहलेकी तरह अब भी आदर

है।' इसके बाद मध्याह्न हो जाने पर दोनों भी स्नान भोजन करनेके लिए चले जाते हैं। (अंक २)। तीसरे अंकके आरम्भमें एक छोटासा प्रवेश है। उसमें पल्लव और गालव नामके भरतमुनिके दो शिष्योंके संवादमें मालूम पड़ता है कि उर्वशीके स्वर्गमें लौट जाने पर इन्द्रसभामें सरस्वतीके बनाए हुए 'लक्ष्मी-स्वयंवर' नामक नाटकका प्रयोग हुआ था। उसमें मेनकाने वारुणीका और उर्वशीने लक्ष्मीका वेश धारण किया था। स्वयंवरके समय वारुणीने लक्ष्मीसे पूछा 'हे सखी! विष्णुके साथ यह सब लोकपाल यहाँ आये हैं। इनमेंसे किससे तुम्हारा मन लगा है?' उर्वशीको 'पुरुषोत्तमके ऊपर' ऐसा उत्तर देना था, परन्तु 'बुद्धिः कर्मानुसारिणी' इस न्यायके अनुसार लक्ष्मीवेषधारी उर्वशीके मुँहसे 'पुरूरवा'का नाम भूलसे निकल जाता है। बस, मामला बिगड़ जाता है। तब भरतमुनि क्रोधसे शाप देते हैं कि 'तेरा स्वर्गका स्थान नष्ट हो जाय।' पर इन्द्रने नाटकप्रयोग पूरा होने पर सिर नीचा करके बैठी हुई उर्वशीसे कहा 'पुरूरवा राजाने मेरी युद्धमें सहायता की है, इसलिए उसकी इच्छा मुझे पूर्ण करनी ही चाहिए। इसलिए तू उसके पास जा, और तेरे पुत्रके मुखका दर्शन जब तक राजा न करे तब तक तू उसके पास रह।' दिनके तीसरे प्रहर तक पिछले अंककी उक्त घटना घटी होगी। उस दिनके बाद राजाका वृत्तांत मुख्य प्रवेशमें वर्णित है। पहले कंचुकी प्रवेश करता है और नीचे लिखे प्रकारसे सायंकालका वर्णन करता है।

उत्कीर्णा इव वासयष्टिषु निशानिद्रालसा बर्हिणो
धूपैर्जालविनिःसृतैर्वलभयः संदिग्धपारावताः।
आचारप्रयतः सपुष्पबलिषु स्थानेषु च र्चिष्मतीः
सन्ध्यामंगलदीपिका विभजते शुद्धान्तवृद्धाजनः॥

'रातकी निद्रासे आलस्ययुक्त मयूर वासयष्टिपर ऐसे मालूम पड़ते हैं जैसे वे चित्रमें खींचे हुए हों। जालीदार खिड़कियोंसे निकले हुए धूपगंधसे छत ऐसी मालूम होती हैं जैसे उनपर कबूतर बैठे हों। रीतिरिवाजका अनुकरण करनेवाली अन्तः-पुरकी वृद्ध स्त्रियाँ पुष्प-बलियोंके साथ जलती हुई सन्ध्या समयकी मंगल दीपिकायें जगह जगह रख रही हैं।'

इस श्लोकमें संध्याका सुंदर वर्णन है। इसके बाद राजा और विदूषक प्रवेश करते हैं। उधर रानी कंचुकीके हाथ संदेश भेजती है कि 'मणिहर्म्यकी छतसे आज रातको चन्द्रमा अच्छा दीखेगा, इसलिए उसका रोहिणीके साथ संयोग होने तक मैं भी महाराजके साथ बैठना चाहती हूँ।' वे सब छतपर चले जाते हैं।

उधर उदय होते हुए चन्द्रकी किरणोंसे अन्धकार दूर हो जाता है, यह देखकर राजा उस दृश्यका निम्न-लिखित वर्णन करता है।

उदयगूढशशांकमरीचिभिस्तमसि दूरमितः प्रतिसारिते।
अलकसंयमनादिव लोचने हरति मे हरिवाहनदिङ्मुखम्॥
विक्र. ३, ६.

'उदयपर्वतकी आड़में छिपे हुए चन्द्रकी किरणोंने अन्धकार दूर कर दिया है, मानो बाल गुँथे जानेके कारण पूर्व दिशाका मुख हमारे नेत्रोंको आनन्ददायक हो गया है।' इस वर्णनमें समासोक्ति और उत्प्रेक्षा अर्थालंकारोंका मधुर संयोग हुआ है। चन्द्र पूर्वदिशाका पति है। वह क्षितिजपर आया नहीं था। अतः जैसे विरहिणी स्त्रीके केश, तैलादिसे वासित न होनेपर उसके मुखपर फैले रहते हैं, उसी प्रकार अंधकार पूर्व दिशाको व्याप्त कर रहा था। परन्तु उदयोन्मुख चन्द्रकी किरणोंसे अन्धकार दूर होनेके कारण पूर्व दिशाका मुख, बाल सँभालकर पतिके आगमनकी प्रतीक्षा करनेवाली स्त्रीके मुखके समान दृष्टिको आनन्द देता है, ऐसा राजाका आशय है। इतनेमें चन्द्रका उदय देखकर विदूषक कहता है 'यह देखो, लड्डूके खंडके समान चन्द्र उदित हुआ है।' विदूषक बड़ा खब्बू है, इसलिए उसकी उपमायें खाद्य, पेय पदार्थोंसे ही ली गई हैं। वे इस तरह बातचीत कर रहे थे कि अभिसारिकाका वेष धारणकर उर्वशी, अपनी सखी चित्रलेखाके साथ विमानसे उतरती है। विरहसे दुर्बल राजाका भाषण सुनकर उर्वशी प्रकट होनेवाली थी कि उपहारका सामान लिए हुए दासीके साथ औशीनरी रानी वहाँ आ जाती है। वह शुभ्रवस्त्र धारण कर सौभाग्यदर्शक अलंकार पहने हुए थी और व्रतपालनके कारण उसने अभिमानका त्याग कर दिया था। उसे देख उर्वशीके हृदयमें आदरका भाव उत्पन्न होता है। राजा उसको देवी शब्दसे संबोधन करता है। यह देखकर वह कहती है, 'सचमुच इसको देवीकी पदवी बहुत अच्छी लगती है। तेजस्वितामें इन्द्राणीसे यह किसी प्रकार कम नहीं है।' इसके बाद गंध-पुष्पादिकोंके द्वारा चन्द्रकिरणोंका पूजन कर और विदूषकको स्वस्तिदक्षिणा देकर रानी राजाकी पूजा करती है और हाथ जोड़कर कहती है—'इस रोहिणी-चन्द्रकी जोड़ीको साक्षी रखकर मैं कहती हूँ जिसके ऊपर आपका प्रेम है और आपसे समागमके लिए जो उत्सुक है उसके साथ आजसे मैं प्रेमका बर्ताव करूँगी।' उसपर विदूषक अपने मनमें कहता है, "हाथसे मछली निकल जानेके बाद धीवर कहता है, 'बहुत अच्छा हुआ, मुझे पुण्य मिलेगा'।"

इधर रानी चली जाती है और उर्वशी तथा चित्रलेखा प्रकट होती हैं। पहले स्वागत कुशलप्रश्न इत्यादि हो जाने पर चित्रलेखा राजासे बिनती करती है कि वसंत ऋतु पूर्ण होनेपर गर्मी में मुझे सूर्यकी सेवा करनी है। इस लिए मेरी सखीको स्वर्गका स्मरण न हो ऐसा यत्न कीजिए। उसपर विदूषक कहता है 'अजी, तुम्हारे स्वर्गमें न खाना है न पीना। केवल मछलीकी तरह आँख खोले रहना पड़ता है।' अनन्तर चित्रलेखाके जानेपर रात बहुत बीत गई समझकर सब भीतर जाते हैं। (अंक ३)। इसके बाद चौदह पंद्रह वर्षमें गुजरी हुई बातें चौथे अंकमें वर्णन की गई हैं। बीचका वृत्तांत चित्रलेखा और सहजन्या नामक अप्सराओंकी बातचीतसे हमको मालूम पड़ता है। पिछले अंकके वर्णनानुसार उर्वशीका समागम हो जानेपर कुछ कालके लिए राज्यका कार्यभार अपने मंत्रीको सौंपकर राजा उर्वशीके साथ गंधमादन पर्वतपर विहार करने चला जाता है। एक समय मंदाकिनीके तटपर रेतके ढूहे बनाकर खेलती हुई विद्याधर-कुमारीकी तरफ राजा देखने लगा। इसपर उर्वशीको क्रोध आया। वह उस स्थानको छोड़कर चली गई और कार्त्तिकस्वामी के बनमें घुस गई। कार्त्तिकस्वामी आजन्म ब्रह्मचारी और स्त्रीदर्शनको अनिष्ट माननेवाले हैं। उन्होंने ऐसा नियम बनाया था कि जो स्त्री इस जंगलमें घुसेगी वह लता हो जावेगी। तदनुसार उर्वशी भी लता हो गई। इधर उर्वशीके विरहको न सह-कर राजा जंगलमें भटकने लगा। अब वर्षाऋतुमें मेघको देखकर उसकी दशा और भी कठिन हो गई। इसके अनन्तर मुख्य प्रवेशमें उर्वशीके वियोगसे राजा पागलसा हो गया और मेघ, लता, वृक्ष, पशु, पक्षी इत्यादिसे अपनी स्त्रीकी खबर पूछता फिरने लगा। आकाशसे जलवृष्टि करनेवाले मेघको अपनी प्रियाका हरण करनेवाला राक्षस समझकर राजा कहता है, 'अरे दुरात्मा, ठहर! मेरी प्रियतमाको कहाँ ले जा रहा है? अरे, यह पर्वत-शिखरसे आकाशमें उड़कर हमपर बाणोंकी वृष्टि कर रहा है।' थोड़ा विचार करनेपर, यह राक्षस नहीं मेघ है, ऐसा राजाको ज्ञान होता है।

नवजलधरः संनद्धोऽयं न दृप्तनिशाचरः
सुरधनुरिदं दूराकृष्टं न नाम शरासनम्।
अयमपि पटुर्धारासारो न बाणपरम्परा
कनकनिकषस्निग्धा विद्युत्प्रिया न ममोर्वशी॥ विक्र. ४, १.

'अरे, यह तो नया मेघ ऊपर उठ रहा है, घमंडी निशाचर नहीं, और यह दूर तक खींचा हुआ इन्द्रधनुष्य है न कि राक्षस-धनुष, और यह धारावृष्टि हो

रही है बाणोंकी वर्षा नहीं, कसौटीपर सोनेके तुल्य विजली है, मेरी प्रिया उर्वशी नहीं।' आगे जाने पर ओष्ठ-रागसे रंजित अश्रु-बिन्दुसे अंकित उर्वशीका पृथ्वी-पर पड़ा हुआ हरा स्तनांशुकसा राजाको दिखाई देता है। परन्तु ध्यानसे देखने पर इन्द्रगोप नामके लाल कीड़े जिसपर बिखर रहे हैं ऐसी नई हरित तृणभूमि प्रतीत होती है। इस तरह फिरते फिरते उसे एक रक्तवर्ण मणि मिलती है। वेणीमें पहिननेके लिए इसे जिसको देना था वह मेरी प्रिया अब दुर्लभ हो गई, मैं इसे लेकर क्या करूँगा, ऐसा राजाको प्रतीत होता हैं परन्तु इतने ही में "पार्वतीके चरणके महावरसे उत्पन्न हुई यह मणि शीघ्र ही प्रियजनका संगम करा सकती है; अतः तू इसको अवश्य ले जा" एक ऋषिका ऐसा वाक्य सुन राजा उसको उठा लेता है और जैसे ही पासमें पुष्परहित होते हुए भी मनोहर दीखनेवाली लतासे आलिंगन करता है वैसे ही उर्वशी प्रगट हो जाती है। इसके बाद 'आपको राज्य छोड़े बहुत समय बीत गया है। प्रजा मुझे दोष देती होगी।' ऐसा कहकर उर्वशी राजासे लौट चलनेकी प्रार्थना करती है। अनन्तर वे दोनों राजधानीको लौट जाते हैं (अंक ४)। इसके बाद शीघ्र ही पाँचवे अंककी घटनायें घटती हैं। एक दिन गंगा यमुनाके संगममें रानीके साथ स्नान करके राजा वस्त्रालंकार धारण कर ही रहा था कि एक गृध्र उस संगमनीय मणिको मांस-खंड समझकर उठा ले जाता है। राजा वैसे ही बाहर आता है और उसे मारनेके लिए धनु य वाण माँगता है। किन्तु इसके पहले ही वह गृध्र आकाशमें अदृश्य हो जाता है। तब राजा कंचुकीसे कहता है कि नगर कोतवालसे जाकर कहो कि वह गृध्र जब किस वृक्षपर बसेरा करे तो ध्यान रखे। इसके अनन्तर विदूषकके साथ राजा उस सम्बन्धमें बात कर ही रहा था कि कंचुकी उस मणि और एक बाणको लेकर वापस आता है? बाणके ऊपर खुदे हुए अक्षरोंको बाँचते ही वह बाण उर्वशीसे उत्पन्न आयु नामक मेरे कुमारका है ऐसा राजाको मालूम पड़ता है। यह जानकर राजाको बड़ा आश्चर्य होता है। वह कहता है 'मेरा और उर्व-शीका सिर्फ नैमिषेय सत्रके समय वियोग हुआ था। उस समय भी वह गर्भवती थी यह मुझे मालूम न था। तब यह उर्वशीका पुत्र कैसे?' उसपर विदूषक जवाब देता है 'अरे उर्वशी तो दिव्यांगना है। दिव्य स्त्रियाँ मनुष्यस्त्रियोंके समान सब विषयमें एकसी होती हैं, ऐसा मत समझो।' इस प्रकार वे दोनों बातचीत कर ही रहे थे कि कंचुकी आता है और च्यवनाश्रमसे एक तापसी एक कुमारको लेकर आई है, ऐसी सूचना राजाको देता है। कुमारको देखते ही उसका और राजाका सादृश्य विदूषकके ध्यानमें आता है। राजाका भी वात्सल्य प्रेम उमड

पड़ता है। वह कहता है—

बाष्पायते निपतिता मम दृष्टिरस्मिन्
वात्सल्यबन्धि हृदयं मनसः प्रसादः।
सञ्जातवेपथुभिरुज्झितधैर्यवृत्ति-
रिच्छामि चैनमदयं परिरब्धुमङ्गैः।। विक्र. ५, ९.

'इसको देखते ही मेरे नेत्रोंमें आँसू भर आए हैं। हृदय वात्सल्यपूर्ण और मन प्रसन्न हो गया है। अपना धीर स्वभाव छोड़कर कम्पित अंगोंसे इसको खूब गाढ़ आलिंगन करूँ, ऐसी मेरी इच्छा होती है।' कुमारको भी उसीके सदृश प्रेमका अनुभव होता है। बादमें तापसी कहती है—'जन्मते ही इस कुमारको उर्वशीने मेरे अधीन कर दिया था। भगवान् च्यवनने इसके जातकर्मादि संस्कार करके इसको धनुर्विद्या सिखाई है। आज पुष्प, समिधा इत्यादि लानेके लिए जब यह ऋषिकुमारोंके साथ बाहर गया और इसने मांस-खंडको चोंचमें दबाए और झाड़पर बैठे हुए एक गृध्रको मारा, तब च्यवन ऋषिने मुझको बुलाकर इसे आपको लौटा देनेके लिए कहा है।' इसके अनन्तर कुमार राजाको नमस्कार करता है। तब राजा कहता है 'वह तुम्हारे पिताका प्रिय मित्र ब्राह्मण बैठा है, उसे निःशंक होकर वंदन करो।' इसपर विदूषक उत्तर देता है 'इसे डर क्यों लगना चाहिए? आश्रममें वास करते हुए इसने बन्दर तो देखे ही होंगे।' इसके बाद उर्वशी प्रवेश करती है और कुमारको देखते ही उसके हृदयमें अपत्य-प्रेम उमड़ आता है। परन्तु पतिको अपने पुत्रका दर्शन हो गया है, इसलिए इन्द्रकी आज्ञा-नुसार अब मेरा और राजाका वियोग होनेवाला है, ऐसा विचार मनमें आते ही उसकी आँखोंसे आँसू बहने लगते हैं। राजा उर्वशीके रोनेका कारण जानकर कुमारका राज्याभिषेक करके वनमें जानेका निश्चय करता है। परन्तु इतनेमें ऋषि नारद वहाँ आते हैं और इन्द्रका यह सन्देश राजाको सुनाते हैं —"राजन्, त्रिकालदर्शी मुनियोंने कहा है कि आगे सुरासुरोंका संग्राम होनेवाला है उसमें तुम हमारे सहायक बनना। अभी शस्त्र-संन्यास मत करो। यह उर्वशी जन्म-भर तुम्हारी सहधर्मचारिणी होकर रहेगी।" इसके बाद इन्द्रके भेजे हुए जलसे अप्सरायें आयुका यौवराज्याभिषेक करती हैं। नारदको कुमार नमस्कार करता है और रानी औशीनरीको नमस्कार करानेके लिए सब लोग उसे ले जाते हैं और भरतवाक्यसे नाटक समाप्त होता है (अंक ५।

कालिदासके 'मालविकाग्निमित्र' और 'अभिज्ञानशाकुंतल' नाटकोंके नामकी तरह प्रस्तुत नाटकका 'विक्रमोर्वशीय' नाम अन्वर्थक नहीं मालूम होता। पुरू-

रवाका नाम विक्रम था, ऐसा कहीं भी उल्लेख नहीं आया है। तब 'विक्रम यानी पराक्रमसे प्राप्त की है उर्वशी जिस नाटक में' इस अर्थमें इस नाटकका नाम कविने रक्खा होगा ऐसी योजना करनी पड़ती है। शायद अपने आश्रयदाताका नाम इस नाटकसे जोड़ देनेकी कामना कालिदासकी रही होगी। उसी निमित्तसे उसने 'विक्रम' शब्दका नाटकमें दो जगह प्रयोग किया है, यह हम पहले बता चुके हैं। *

कालिदासने इस नाटकका कथानक कहाँसे लिया है, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। पुरूरवा और उर्वशीकी प्रेम-कथा अत्यन्त प्राचीन है। ऋग्वेद १०, सूक्त ६५ में पुरूरवा और उर्वशीका संवाद दिया गया है। सूक्तकी भाषा कहीं कहींपर दुर्बोध है। तो भी उसका सामान्य रीतिसे अर्थ समझनेमें बहुत अडचन नहीं पड़ती। इसके अतिरिक्त उक्त सूक्तका संदर्भ और कुछ ऋचा-ओंका स्पष्टीकरण शतपथ ब्राह्मणमें भी (५, १–२) मिलता है। वह कहानी इस प्रकार है।

उर्वशी नामकी अप्सराका पुरूरवासे प्रेम हो गया। वह उसके सहवासमें कुछ काल तक रही। पहले ही से उसने राजासे दो शर्तें कर लीं। पहली यह कि मेरे दोनों मेढ़े हरदम मेरे शयनागारमें बँधे रहें। दूसरी यह कि तुम नग्ना-वस्थामें कभी मेरे सामने न आओ। राजाने दोनों शर्तें स्वीकार कर लीं। कुछ काल के बाद उर्वशी गर्भवती हुई। उधर उर्वशीके चले जानेसे स्वर्ग सूना लगने लगा। इसलिए उसको वापस लानेके लिए गन्धर्वोंने एक युक्ति सोची। उन्होंने एक रातको मेढोंको ले जाकर मारना शुरू किया। उनकी चिल्लाहट सुनकर उर्वशी बोली, 'मेरे इन लाड़ले बच्चोंका रक्षण करनेके लिए इधर कोई नहीं है क्या?' तब राजा वैसे ही नग्नावस्थामें जल्दी ही उनकी रक्षाके लिए दौड़ पड़ा। राजा उर्वशीकी नज़रमें पड़ जाय इसलिए गन्धर्वोंने बिजलीका खूब प्रकाश कर दिया। यह देख अपनी शर्तके अनुसार उर्वशी उसको छोड़कर चलने लगी। उस समय राजाने उसकी खूब अनुनय-विनय की और कहा कि मैं तुम्हारे प्रेममें पागल होकर भटककर प्राण-त्याग कर दूंगा और अपना शरीर सियार और कुत्तोंको खिला दूंगा। इसपर उर्वशीने उत्तर दिया—'पुरूरवा! अपना सर्वनाश न कर और प्राण भी मत खो। तेरे शरीरको सियार, कुत्ते कुछ भी हानि न पहुँचावेंगे, तू लौट जा। स्त्रियोंका प्रेम स्थिर नहीं होता। उनके हृदय सियारके सदृश होते

* राजशेखरने अपने 'प्रचंडपांडव' नाटक और आर्य क्षेमीश्वरने 'चंडकौशिक' नाटकके नाममें अपने आश्रयदाता राजाओंके नामोंका श्लेष-गर्भित उल्लेख किया है, यह हमने अन्यत्र दिखलाया है।

हैं।' अन्तमें दयावश होकर वह वर्षके अंतमें एक रातभर उसके साथ रहनेकी प्रतिज्ञा करती हैं। पीछे पुरूरवाने गन्धर्वोंको संतुष्ट कर उनके कहनेके अनुसार मनुष्यलोकमें स्वर्गीय अग्नि लाकर यज्ञ किया तथा गन्धर्वरूप प्राप्त कर लिया।

शतपथ ब्राह्मणकी यह कथा थोड़े भेदसे विष्णुपुराण और भागवतपुराणमें भी आई है कि उर्वशीको मित्रावरुणोंका शाप होनेसे मनुष्यलोकमें रहना पड़ा। इसके सिवा इस कथाका एक निराला ही स्वरूप 'कथासरित्सागर' में दीख पड़ता है। मालूम होता है स्वकालीन 'बृहत्कथा'से कालिदास उससे अवश्य परिचित रहे होंगे। 'कथासरित्सागर' से **यह** ज्ञात होता है कि पुरूरवा विष्णुभक्त था। विष्णुने उर्वशीको देनेके लिए इन्द्रको आज्ञा दी थी। एक दिन राजा इन्द्रके साथ सभामें बैठा था कि रम्भाने नृत्यमें कुछ गलती की। इसपर राजाको हँसी आ गई। यह देख नृत्याचार्य तुम्बरुको क्रोध आया और उसने राजाको उर्वशीसे वियोगका शाप दिया। तब तपश्चर्यासे विष्णुको सन्तुष्ट कर राजाने उर्वशीको पुनः प्राप्त किया।

पुरूरवा और उर्वशीकी प्रेमकथाके ऊपर बताए हुए कालिदासकालीन स्वरूपको ध्यानमें रखनेसे कविकी कल्पनाशक्ति इस नाटकमें उत्तम रीतिसे दीख पड़ेगी। उर्वशीको शाप लगनेपर थोड़े दिनों तक मर्त्यलोकमें वास करना पड़ा और उसकी शर्तोंका राजाने पालन न किया, इसलिए वह स्वर्गको वापिस चली गई। यह वर्णन शतपथ ब्राह्मण और पुराणोंमें आया है। 'बृहत्कथा' में तो तुम्बरुके शापसे राजाका और उसका वियोग हुआ, ऐसा बताया गया है। अपना संविधानक रचते समय इन सब घटनाओंका कालिदासने मार्मिकतासे उपयोग किया है। पहले अंकमें उर्वशीके प्रथम दर्शनका रम्य प्रसंग कविकी प्रतिभासे उत्पन्न हुआ दीखता है। तीसरे अंकमें उल्लेख किया हुआ भरतमुनिका शाप 'बृहत्कथा' के तुम्बरुके शापसे कविको सूझा होगा। शतपथ ब्राह्मण और पुराणोंमें वर्णन की हुई उर्वशीकी शर्तें कलाकी दृष्टिसे रमणीय न होनेसे उनकी जगहपर कविने पुत्रदर्शनकी शर्त लगाई है। चौथे अंकमें कार्त्तिकस्वामीका नियम, उसके कारण उर्वशीका रूप-परिवर्तन, पुरूरवाका शोक इत्यादि प्रसंग और पूरा पाँचवाँ अंक ये कालिदासकी कल्पनाशक्तिके फल हैं। यदि कुमारके दर्शन होते ही उर्वशीको स्वर्गमें लौट जाना पड़ता तथा राजाको तपश्चर्याके लिए आश्रममें जाना पड़ता तो नाटक दुःखान्त हो जाता। नाटककार संस्कृत नाटकशास्त्रोंके नियमोंके अनुसार ऐसा नहीं कर सकते। इसलिए अन्तिम अंकमें नारदके द्वारा इन्द्रका सन्देसा राजाको सुनाकर कालिदासने नाटकको सुखान्त बनाया है। कई विद्वानोंने कहा है कि

इस नाटकके पहले तीन अंकोंके संविधानकके सदृश मत्स्यपुराणमें कथा मिलती है, अतः कालिदासने उसे वहाँसे लिया होगा। परन्तु पुराणोंकी वर्तमानकालीन प्रतियाँ विश्वसनीय नहीं हैं। उनमें समय समयपर नई नई कथायें जोड़ी गई हैं। इसलिए मत्स्यपुराणमें पुरूरवा और उर्वशीकी प्रेमकथाके—दूसरे पुराणोंमें दीखते हुए—नीरस स्वरूपको छोड़कर उसके स्थानमें 'विक्रमोर्वशीय' का रम्य कथानक संक्षिप्त रूपसे दिया है, ऐसा कह सकते हैं। ✫

'विक्रमोर्वशीय' नाटकका संविधानक कालिदासके पहले नाटकके समान जटिल नहीं है। साँपकी चालकी तरह टेढ़े मेढ़े कथानकमें प्रेक्षकोंका चित्त उलझानेकी अपेक्षा स्वभाव-चित्रणके रम्य दर्शनसे दर्शकोंको आकृष्ट करना अच्छा है। कोई भी कारण हो 'मालविकाग्निमित्र'की तुलनामें इसमें संविधानक-चातुर्य वहुत कम दीखता है। दूसरे तीसरे अंकोंकी कुछ घटनायें कथानककी प्रगतिके लिए आवश्यक नहीं दीखती हैं। उदाहरणार्थ, उस अंकमें रानी औशीनरीके प्रवेश एवं विरोधदर्शनसे उर्वशीके स्वभावको ज्यादा उत्थान मिलेगा इसलिए ही रक्खे गये हैं। इसकी भाषा पहले नाटककी भाषाके समान प्रसादगुणपूर्ण, सौष्ठवयुक्त और अलंकृत है। इसमें संभोग और विप्रलम्भ इन दोनों शृंगारोंका उत्तम परिपोष हुआ है। तथापि चौथे अंकमें आरम्भसे लेकर अन्ततक राजा करीव एक ही प्रकारसे शोक करता हुआ दिखाया गया है। शोक-रसका उत्थान करनेके लिए दूसरे रसकी योजना नहीं की गई, इसलिए वह अंक फीकासा हो जाता है।

'मालविकाग्निमित्र' के मानसे इस नाटककी पात्र-संख्या यद्यपि कम है, तथापि उनका चित्रण बड़ी मार्मिकताके साथ किया गया है। उसमें पुरूरवा और विदूषक ये पुरुष-पात्र तथा उर्वशी और औशीनरी स्त्रीपात्र प्रमुख हैं। पुरूरवा धीरोदत्त नायक है। वह अत्यन्त शूर, प्रेमी और दाक्षिण्यसम्पन्न दिखलाया गया है। नाटकके आरम्भमें केशी नामक दैत्यपर उसका विजय पाना, उर्वशीकी तरह

✫ मत्स्यपुराणकी कथामें 'बृहत्कथा' और 'विक्रमोर्वशीय' का वर्णन मिला हुआ दीखता है। उसमें लिखा है कि लक्ष्मी-स्वयंवरके प्रसंगपर मेनका और रंभाके साथ साथ लक्ष्मीरूपधारिणी उर्वशी नाचती है और भरतके सिखाये हुए अभिनयको भूल जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयंवरके प्रसंगपर वधूको नाच करानेमें प्रतीत होनेवाला प्रत्यक्ष अनौचित्य इस कथाको मत्स्यपुराणमें जोड़नेवालेके ध्यानमें नहीं आया।

प्रेक्षकोंके भी मनको आकृष्ट कर लेता है। उसके शौर्यके कारण साक्षात् इन्द्रको भी उसकी मददकी जरूरत पड़ती है। विनयसे उसका शौर्य ज्यादा चमक उठता है। उर्वशीपर राजाका निस्सीम प्रेम उसे पागल बना देता है और वह लता-वृक्ष और पशु-पक्षियोंसे उसका हाल पूछता हुआ भटकता फिरता है। कालिदासके अन्य नाटकोंके नायकोंकी तरह यह भी बहु-पत्नीक है। तो भी यहाँ रा ाके मनमें अपनी वड़ी रानीके गुणोंके प्रति आदर-भाव है। दूसरी स्त्रीसे उसका प्रेम हुआ है यह जब औशीनरीको मालूम होगा तो उसे बुरा लगेगा, इसलिए जहाँतक हो सका राजाने यह बात उससे छिपा रखनेकी सोची। अग्निमित्रके स्वभावसे इसका स्वभाव अच्छा बताया गया है। परन्तु दुष्यन्तके प्रजावात्सल्य आदि गुण इसमें नहीं पाये जाते। इसलिए एक तरहसे यह उससे नीचा भी है। इस नाटकका माणवक नामका विदूषक 'मालविकाग्निमित्र' नाटकके विदूषक गौतमकी तरह खाद्यलोलुप है। परन्तु वुद्धिमें उसकी अपेक्षा बहुत कम दर्जेका है। राजाको मालविकाका प्रथम दर्शन और उससे समागम करानेके लिए गौतम नाना प्रकारकी युक्तियाँ सोचता है। परन्तु माणवक राजाके उर्वशीसे प्रेमकी गुप्त वातको औशीनरीकी चतुर दासीसे नहीं छिपा सका। उसकी मूर्खतासे ही रानी औशीनरी को प्रवेशका अवसर मिला। खाद्य-पेयादि पदार्थोंमेंसे ली हुई उपमा आदि अलंकारोंसे और अपनी कुरूपतासे दूसरे पात्रों और प्रेक्षकोंका मनोरंजन करना ही इसका काम है। कथानकको प्रगति देनेमें इसका वहुत उपयोग नहीं है। तीसरा पुरुष-पात्र राजकुमार आयु है। 'मालविकाग्निमित्र'का कुमार वसुमित्र रंगभूमिपर नहीं आता। उसके शौर्यके विषयका वर्णन सुनकर प्रेक्षकोंको उसे देखनेकी इच्छा होती है परन्तु वह पूरी नहीं होती। कालिदास इस नाटकमें सर्वप्रथम एक अल्पवयस्क कुमारको रंगभूमिपर लाते हैं। वह वसुमित्रकी अपेक्षा आयुमें कम है। तो भी उसका स्वभाव-परिपोष अच्छा हुआ है। उसकी धनुर्विद्यामें निपुणता, अपने पिताकी प्रति सहज-प्रेम और च्यवना-श्रमके प्राणियोंपर उसकी ममता ये थोड़ेहीमें उत्तम रीतिसे दिखला दिये गये हैं। स्त्री-पात्रोंमें उर्वशी प्रमुख है। यह अप्सरा होनेके कारण स्वरूपमें अप्रतिम है। संस्कृत नाट्यशास्त्रकारोंके वर्गीकरणके अनुसार यह 'साधारणा' और 'प्रगल्भा' है। उसका पुरूरवापर निस्सीम प्रेम है। अपनी उपभोग-लालसा तृप्त हो जानेपर पतिके विषयमें लापरवाही दिखानेवाली और उसके अनुनयविनयपर 'स्त्रियोंकी मित्रता स्थायी नहीं होती, उनके हृदय सियारकी तरह होते हैं' ऐसी निर्लज्ज-तासे उत्तर देनेवाली अत्यन्त स्वार्थपूर्ण स्त्रीका स्वरूप ऋग्वेद आदि प्राचीन ग्रन्थोंकी उर्वशी-कथामें दीखता है। परन्तु कालिदासकी प्रतिभासे निखर उठनेपर

उसका स्वभाव वहुत बदला हुआ दीखता है। पुत्र-दर्शन होनेपर इन्द्रकी शर्तके अनुसार उर्वशीसे वियोग होनेवाला है, इस कल्पनासे राजाको अत्यन्त दुःख होता है। तो भी उर्वशीका स्वार्थीपन पूर्णतः नष्ट नहीं हुआ, ऐसा प्रतीत होता है। अपने उपभोगके लिए, अपने पेटके वालकको जन्मदिवससे लेकर दूसरेके अधीन छोड़नेगें उसे जरा भी दुःख नहीं होता। उसके स्वभावमें स्त्रीजनसुलभ मात्सर्य है। तथापि रानी औशीनरी की गम्भीराकृति देखते ही उसके प्रति उर्वशीके हृदयमें आदरका भाव उत्पन्न हो जाता है। पुत्रका यौवराज्याभिषेक हो जाने पर वह उसको ज्येष्ठ माता रानी ओशीनरी को नमस्कार करानेके लिए ले जाती है, इससे रानीके विषयमें उसका आदर व्यक्त होता है। कालिदासके समयमें धनी और रसिक लोक विदुषी और विविधकलाभिज्ञ वेश्याओंकी संगतिमें कैसे रहते थे, इसका उत्तम चित्र वात्स्यायनके कामसूत्रमें मिलता है। ऐसे नागरकोंकी पत्नियाँ अपने पतिमें बाहरकी स्त्रियोंपर आसक्त होनेके लक्षण देखकर भी उनसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करती थीं, गृह-व्यवस्था देखती थीं, और सदैव विविध कर्तव्योंमें निमग्न रहती थीं, यह उस ग्रन्थसे प्रतीत होता है। ऐसी ही प्रेमसे भरी हुई मानिनी और गम्भीर स्वभावकी गृहिणीका चित्र कालिदासने रानी औशीनरी के रूपमें रँगा है। उर्वशीसे प्रेम होनेपर भी पुरूरवा रानी ओशीनरी के साथ आदर ही से पेश आता है। इसीको देखकर चित्रलेखा कहती है।'अन्यसंक्रान्तप्रेमाणो नागरका अधिकं दक्षिणा भवन्ति' अर्थात् दूसरी स्त्रीपर प्रेम करनेवाले नागरकोंका व्यवहार अधिक सौजन्ययुक्त होता है, ऐसा कहकर उर्वशीको समझाती है। अतः इस नाटकको लिखते हुए कविके मनमें अपने समयके नागरकोंका और उनकी सुशील और सद्‌गुणी स्त्रियोंका चित्र घूम रहा होगा। औशीनरीको राजाकी कामुकता अच्छी नहीं लगती और वह पहले तो उसके दिखावटी प्रेम परन्तु निस्सार भाषणको तुच्छ समझकर चली जाती है। बादमें उसे पश्चात्ताप होता है और वह 'प्रियानुप्रसादन' व्रतके मिस राजाको बुलाती है और तुम्हारी प्रिय स्त्रीके साथ मैं प्रेम-व्यवहार करनेको तैयार हूँ, ऐसा स्पष्ट कहकर उसका रास्ता निष्कंटक कर देती है। कितना बड़ा स्वार्थत्याग है! 'मालविकाग्निमित्र'की रानी धारिणी भी स्वार्थत्यागी और उदार है, परन्तु वह अपने वचनमें बद्ध होनेसे और पुत्र-विजयके महोत्सवके कारण! उसकी अपेक्षा रानी औशीनरी का त्याग ज्यादा निरपेक्ष और इसलिए प्रशंसनीय है। उर्वशी और औशीनरी दोनोंका राजापर निस्सीम प्रेम है। परन्तु उर्वशीका प्रेम भोग-मूलक और औशीनरीका त्यागमूलक है। दोनोंके प्रेम का यह महत्त्वपूर्ण भेद कविने सूचित किया है।

सांसारिक कष्टों और प्रिय-जनोंकी उपेक्षासे जो प्रेम कम नहीं होता और जिसका परिणाम अन्तमें आत्मविसर्जन होता है, वही सच्चा प्रेम है, अपना यह मत, अन्य ग्रन्थोंकी तरह, इस नाटकमें भी कविने रानी औशीनरीके चरित्र-चित्रणद्वारा व्यक्त किया है।

शाकुन्तल

कालिदासने 'मालविकाग्निमित्र' और 'विक्रमोर्वशीय' ये दो नाटक लिखे हैं। परन्तु नाटककारके रूपमें उनकी कीर्ति उनके अन्तिम, सर्वांगसुंदर और निर्दोष 'अभिज्ञानशाकुंतल' से ही स्थिर हो सकी है। संविधानक-चातुर्य, चरित्र-चित्रण, रस-परिपोष, भाषा-सौष्ठव आदिकी दृष्टिसे उसके गुणोंपर लुब्ध होकर प्राचीन रसिकोंने 'शाकुन्तल'को सब संस्कृत नाटकोंमें श्रेष्ठ माना है। ई. स. १७८६ में सर विलियम जोन्सने एक संस्कृत पण्डितकी सहायतासे उसका अंग्रेज़ीमें अनुवाद किया। उसके बहुतसे स्थलोंमें दोष थे तो भी उसने यूरोपीय विद्वानोंको मुग्ध कर दिया। उस समय उसके कई यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद हो गये और इस समय पृथ्वीकी ऐसी एक भी प्रमुख भाषा नहीं है जिसमें 'शाकुंतल'का अनुवाद न मिले। इस नाटकके अंतिम अंकमें छोटे बालकका अकृत्रिम हास्य और तोतली बोलीका मनोहर वर्णन पढ़कर शेजी नामके फ्रेंच विद्वानको ऐसा आनन्द हुआ कि वह नाचने लगा। जगप्रसिद्ध जर्मन कवि गेटेने तो इस नाटकका अनुवाद पढ़कर कहा,—"अगर तुम वसन्तके फूल चाहते हो और शीत ऋतुके फल चाहते हो, और आत्माको मोहन करनेवाला, प्रसन्न करनेवाला और उसी तरहसे पुष्ट करनेवाला रसायन तथा पृथ्वी और स्वर्ग, ये सब बातें एक जगह देखना चाहते हों, तो 'शाकुंतल' का अध्ययन करो और वहाँ तुमको ये सब बातें मिल जावेंगी।" कालिदासके सब ग्रंथोंमें उत्कृष्ट होनेसे 'कालिदासस्य सर्वस्वं अभिज्ञानशकुन्तलम्' यह उक्ति सर्वमान्य हो गई है। प्राचीन कालसे 'शाकुन्तल'के लोकप्रिय हो जानेपर उसकी हस्तलिखित प्रतियाँ हिन्दुस्तानके सब प्रांतोंमें मिलती हैं। परन्तु उनमें बहुत भेद हैं। उन सबका विचार करके काश्मीरी, बंगाली, देवनागरी और मद्रासी ऐसी चार पाठ-परंपरायें निश्चित की गई हैं। इन सबकी सूक्ष्म परीक्षा करके कालिदासके सर्वोत्कृष्ट नाटकका मूल-स्वरूप ठहराना अत्यन्त आवश्यक है। तो भी नागरी पाठ सर्वोत्तम प्रतीत होनेके कारण हमने विवेचनाके लिए उसीका सहारा लिया है।

इस नाटकके आरम्भमें भी कविने शिवस्तुतिपर नान्दी लिखी है और उसमें

श्रीशंकरके प्रत्यक्ष दीखनेवाले अष्टविध स्वरूपका वर्णन किया है। अनन्तर सूत्रधार नटीको बुलाता है और 'विद्वत्परिषद्के सामने कालिदासके अभिज्ञानशाकुन्तल नामक नवीन नाटकका प्रयोग करना है, इसलिए प्रत्येक पात्रके कामपर सावधानी रखनी चाहिए' ऐसी सूचना देता है। 'आपने नाटकका खेल अच्छा जमाया है अतः उसमें कमी न रहेगी' नटीके ऐसा कहने पर वह कहता है—

आ पारितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः ।। शाकु. १, २.

'जब तक विद्वानोंको संतोष न हो तब तक प्रयोगकी उत्तमतामें मेरा विश्वास नहीं है। कितनी ही शिक्षा क्यों न मिली हो किन्तु अपनी योग्यताके विषयमें चित्त संदिग्ध ही रहता है।' इस श्लोकमें सूत्रधारके मुखसे स्वयं नाटक-रचनामें कुशल होते हुए भी अपनी कृतिसे जब तक विद्वज्जनोंको सन्तोष न हो तब तक अपना समाधान नहीं होता, यह कालिदास बहुत विनयसे सूचित करते हैं। इसके अनन्तर नटी ग्रीष्म-समयवर्णनपर एक गीत गाती है। उसकी स्तुतिके मिससे दुष्यन्तके प्रवेशकी सूचना देकर सूत्रधार नटीके साथ बाहर निकल जाता है और मुख्य अंकका आरंभ होता है, जहाँ रथमें बैठकर हरिणका पीछा करता हुआ राजा दुष्यन्त और सारथी दिखाई देते हैं। निशाना ताककर राजा उसको बाण मारनेवाला ही था कि 'राजन्, यह आश्रमका मृग है, इसे मत मारो' ऐसा चिल्लाता हुआ एक वैखानस (तपस्वी) दो शिष्योंके साथ उसके सामने आ जाता है। उसकी विनतीको मानकर राजा अपना बाण लौटा लेता है। उसे ऐसा करते देख सन्तुष्ट वैखानस राजाको आशीर्वाद देता है, 'तेरा चक्रवर्ती पुत्र हो' और पासहीमें मालिनी नदीके तीरपर बने हुए आश्रममें जाकर वहाँका अतिथि-सत्कार स्वीकार करनेके लिए राजासे प्रार्थना करता है। 'यहाँके कुलपति कण्व ऋषि शकुन्तला नामकी अपनी कन्यापर अतिथि-सत्कारका भार सौंपकर उसके प्रतिकूल दैवकी शान्ति करनेके लिए सोमतीर्थ पर गये हुए हैं।' यह भी तपस्वी राजाको बता देता है। शिष्योंके साथ तपस्वीके चले जानेपर राजा तपोवनकी तरफ रथ हाँकनेके लिए सारथिसे कहता है। तपोवनके पास पहुँचनेपर वहाँके लोगोंको कष्ट न हो इसलिए वह स्वयं रथसे उतर पड़ता है और अपना धनुष और अलंकार सारथिको सौंप विनीत वेशसे तपोवनमें प्रवेश करता है। उस समय उसके दक्षिण बाहुके फड़कनेसे शुभ शकुन होता है। जैसे ही दुष्यंत आगे बढ़ता है वैसे ही उसे सुनाई पड़ता है कि पासकी झाड़ीमें कुछ लोग बोल रहे हैं। वह कलश लेकर पानी डालनेके लिए अपनी ही

ओर आती हुई तीन तापस-कन्याओंको देखता है और एक पेड़के नीचे छायामें बैठकर उनकी राह देखने लगता है। उनके संभाषणसे उसे ज्ञात होता है कि एक कण्वकी लड़की शकुन्तला और बाकी दो अनसूया और प्रियवंदा नामकी उसकी सखियाँ हैं। वल्कल पहिने हुए शकुन्तलाको देखकर वह अपने मनमें कहता है, 'यह ठीक है, कि इसका सुन्दर शरीर वल्कलके योग्य नहीं, परंतु वल्कलसे इसकी शोभा बढ़ ही गई है। क्योंकि सहज सुंदरोंको क्या अच्छा नहीं लगता?' इधर शकुंतला और उसकी सखियोंके बीच मज़ाक चल रहा है। कोमल पल्लव-वाले आम्रवृक्ष पर वनज्योत्स्ना नामक फैली हुई वेला की लताको देखकर शकुन्तला खड़ी रहती है। इसपर प्रियवंदा कहती है 'अनसूये, शकुन्तला वनज्योत्स्नाको इतने ध्यानसे देख रही है, इसका कारण तेरे ध्यानमें आया? वनज्योत्स्ना का योग्य वृक्षसे जिस प्रकार संयोग हुआ है वैसा योग्य पति क्या मुझे भी मिलेगा! यह प्रश्न उसके मनमें है'। इस पर शकुन्तला उत्तर देती है 'यह इच्छा तो तुम्हारे मनकी है!' इस बातसे शकुन्तला अविवाहित है, यह राजाको मालूम हो जाता है। वह सोचता है 'यह कण्व मुनिकी असवर्ण स्त्रीसे उत्पन्न हुई कन्या है क्या? क्योंकि मेरा मन इसपर आसक्त हुआ है इसलिए अवश्य इसे मेरे सदृश क्षत्रियसे विवाह करने लायक होना ही चाहिए'। क्योंकि प्रतिलोम विवाह निषिद्ध माना जाता था। इतनेमें वेलामें पानी डालनेसे बिचककर उड़ा हुआ भ्रमर शकुन्तलाके मुखके सामने चक्कर लगाता है। उसको देखकर राजा उसको शाबाशी देता है। वह कहता है—

चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः।
करं व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं
वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती।। शाकुं. १, २३.

'अरे भ्रमर, तू उसके कटाक्षयुक्त (कम्पित) नेत्रको बार बार छूता है और उसके कानके पास जाकर मीठा मीठा शब्द करता है, मानो कुछ रहस्य कह रहा है। यद्यपि वह हाथसे तुझको हटाती है तो भी तू उसके रतिके सर्वस्व-भूत अधरका पान करता ही है। हम तो तत्त्वकी खोजमें मारे गये और तू बड़ा भाग्यशाली है।' इसमें राजाने भ्रमरका कामुकरूपसे वर्णन किया है और अन्तमें 'हम तो तत्त्वान्वेषणमें मग्न होनेसे फँस गए। किन्तु तू कृतार्थ हो गया' ऐसे उद्गार निकाले हैं। इस श्लोकमें समासोक्ति और व्यतिरेक अलंकारका मधुर संयोग हुआ है। भ्रमर उसको बहुत कष्ट दे रहा था इसलिए शकुंतला

अपनी सखियोंको मददके लिए पुकारती है तब वे हँसीमें कहती हैं 'हम तुम्हारी क्या रक्षा कर सकती हैं ? दुष्यंतको पुकारो। तपोवनका रक्षण राजाको ही करना चाहिए।' यह समय प्रगट होने के लिए बहुत अच्छा है ऐसा जानकर राजा आगे आ जाता है और कहता है 'दुष्टोंका शासन करनेवाले पौरव राजाका पृथ्वीपर राज्य है तब ऐसी भोली भाली तपस्वी कन्याओंको कौन सता रहा है?' अचानक परपुरुषके उपस्थित होनेपर पहले तो वे सब घबड़ा-सी जाती है, किन्तु वादमें उसका स्वागत करती हैं। राजाको देखकर शकुंतलाके मनमें प्रेम-विकार उत्पन्न होता है। मैं राजा हूँ यदि यह मालूम हो गया तो ये खुले दिलसे मुझसे बातचीत नहीं करेंगी, यह सोचकर दुष्यंत उनसे कहता है कि 'पौरव राजाने धर्म-विभागका मुझे अधिकारी नियत किया है। इस तपोवनमें धर्म-कृत्य निर्विघ्नतासे हो रहे हैं या नहीं, यह देखनेके लिए मैं यहाँ आया हूँ।' उनके द्वारा शकुंतलाका यह हाल उसे मालूम होता है कि 'विश्वामित्रकी उग्र तपश्चर्यासे डरकर देवताओंने उनको मोहमें डालनेके लिए मेनका नामक अप्सरा भेजी थी। उससे यह शकुंतला नामक कन्या उत्पन्न हुई। माताने जब इसको वनमें डाल दिया तब कण्व ऋषीने इसका पालन किया, इसलिए कण्व इसके पिता हैं। योग्य वर मिलनेपर इसका विवाह कर देनेका विचार है।' अपने विवाह विषयकी चर्चा सुनकर शकुंतला क्रोधसे गौतमी—अपनी फूफी— के पास शिकायत करनेके लिए जाना चाहती है। उसे लौटानेके लिए प्रियवंदा कहती है 'मैंने तेरी ओरसे दो झाड़ोंको पानी दिया है, तू मेरा ऋण पहले चुका दे फिर तू चाहे जहाँ चली जाना।' 'वृक्ष-सेचनसे यह अत्यन्त थक गई है, इसलिए मैं ही इसको ऋणमुक्त करता हूँ' ऐसा कहकर राजा प्रियवंदाको अपनी अँगूठी देता है। उसपर उसके नामके अक्षर बाँचते ही वे आश्चर्यचकित हो जाती है। यह देखकर राजा कहता है, "मैं कोई दूसरा हूँ ऐसा न समझिए। यह मुझे राजाने दी है" इसपर प्रियवंदा कहती है "तो इसे आप अपनी ही अंगुलीमें रहने दीजिए। आपके वचनसे ही यह ऋणमुक्त हो गई है।" इस तरह उनकी बातचीत हो रही थी कि 'मृगयाविहारी दुष्यन्त राजा तपोवनमें आया है। उसके रथसे डरकर एक हाथी हरिणोंको चौंकाता हुआ तपोवनमें प्रवेश कर रहा है। इसलिए यहाँके प्राणियोंकी रक्षा करो।' ये शब्द उसके कानमें पड़ते हैं। तब राजाकी आज्ञासे ऋषिकन्यायें अपनी पर्ण-कुटीकी तरफ जाती हैं। जाते समय शकुंतला अपने पावोंमें चुमते हुए दर्भांकुर निकालने और करौन्देके पेड़में अटके हुए अपने वल्कलको छुड़ाने के बहानेसे थोड़ी देर पीछे रहकर राजाकी तरफ फिर एक बार देखती है और सखियोंके साथ

चली जाती है। (अंक १)। इसके बाद दूसरे दिनकी घटनायें दूसरे अंकमें वर्णित हैं। तपोवन के पास ही राजाने अपने सैनिकोंके साथ डेरा डाला था। वही इस अंकका स्थल है। पहले विदूपक प्रवेश करके कहता है, "इस मृगया-शील राजाकी संगतिसे मुझे वहुत कष्ट हो रहा है। कहीं हरिण, कहीं वराह, कहीं बाघोंके लिए चिल्लाते हुए इस ग्रीष्म ऋतुमें घोर जंगलमें फिरना पड़ता है। समय कुसमय सलाईपर भूंजे हुए माँसको खाना पड़ता है। इस तरह हमारे दिन गुजरते हैं। रातमें सुखकी नींद भी पूरी होने नहीं पाती। कल मेरे दूर्भाग्यसे राजाको तापस-कन्या शकुंतला दीख पड़ी। अब तो वे घर लौटनेकी चर्चा ही नहीं करते।" इस तरह विदूषक अपने आप बक झक कर रहा था कि राजा वहाँ आ पहुँचता है। शकुंतलापर मन आसक्त होनेसे राजाके मनमें मृगयाका उत्साह नहीं रहा था। अतः उसको वंद कर देनेके लिए विदूषककी विनती को मान लेता है और उसीके अनुसार सेनापति को आज्ञा देता है। अनन्तर एक पेड़की छायामें बैठकर विदूषकके पूछनेपर राजा उसको शकुंतलाके जन्मका हाल बताता है। इसके बाद किस वहानेसे फिर आश्रममें जाऊँ, इस विचारमें राजा पड़ा ही हुआ था कि दो ऋषिकुमार प्रवेश करते हैं और 'यहाँ कण्व मुनिके न रहनेसे राक्षस यज्ञकर्ममें विघ्न करते हैं, अतः आप कुछ दिन आश्रममें रहें।' ऐसी आश्रमवासी लोगोंकी प्रार्थना राजाको वतलाते हैं। राजा उसको आनन्दपूर्वक स्वीकार कर लेता है। उनके जाने पर राजा विदूषकको पूछता है, 'तुझे शकुंतला देखनेकी उत्सुकता है क्या?' इस पर वह उत्तर देता है, "पहले तो मेरी उत्सुकता अधिक थी, परंतु अव राक्षसोंके वृत्तांतसे वह जरा भी नहीं रही!" इतनेमें राजधानीसे एक दूत आता है और राजमाताका सन्देशा सूचित करता है कि "आजसे चौथे दिन पुत्रपिंडपालन नामक व्रतकी पारणा है। उस समय चिरंजीवको जरूर लौट आना चाहिए।" अब क्या करना चाहिए, राजा सोचता है। अंतमें राजा विदूषक से कहता है, "मेरी माताने तुझे भी तो पुत्रवत् माना है, इसलिए तू लौटकर जा, और मैं तपस्वियोंके कार्यमें लगा हुआ हूँ, यह माताजीसे कहकर उनके पुत्रकृत्यको पूरा कर।" घर जाने पर यह कदाचित् शकुन्तलाकी बात, अन्तःपुरकी स्त्रियोंसे कहेगा, यह समझ कर राजा विदूषकसे कहता है, "ऋषिके शब्दोंको सन्मान देनेके लिए मैं आश्रममें रहता हूँ। उस तापस-कन्याके प्रति मेरी अभिलाषा नहीं है। मैंने हँसीमें जो कुछ कहा उसे सच्चा मत समझना।" (अंक २) इसके अनन्तर महीने पंद्रह दिनमें तीसरे अंकके वृतांतकी घटना घटती है। पहले एक छोटासा विष्कंभक है।

उसमें शिष्यके भाषणसे हमें मालूम पड़ता है कि राजाके पास रहनेसे यज्ञ-कर्म निर्विघ्नतासे समाप्त हो गए हैं। इसके बाद राजा प्रवेश करता है और मदन और चन्द्रसे अपनी काम-पीड़ाका वर्णन करता है। फिर मध्याह्नके समय मालिनीके तीरपर सखियोंके साथ शकुन्तला बैठी होगी, ऐसा समझ कर वह जाता है और वहाँ उसे एक लतागृहके पास उसके पैरके चिह्न दीखते हैं। आगे जाकर देखता है तो पुष्पोंसे आच्छादित शिलातलपर बैठकर, सखियोंके साथ बात करती हुई शकुन्तला दीखती है। उस समय उसका विश्रम्भालाप सुननेके लिए वह वहाँ वृक्षकी आड़में छिप जाता है। दुष्यन्तको जिस दिन देखा उसी दिनसे शकुन्तला दुबली होती जाती थी। इसलिए उसका विकार प्रेम-मूलक होना चाहिए, ऐसा समझ कर अनसूया उससे पूछती है, "शकुन्तला, हम तो प्रीतकी रीत नहीं जानते, तो भी इतिहासके ग्रन्थोंमें कामार्त्त जनोंकी जैसी अवस्था वर्णन की गई है वैसी ही तेरी दीख रही है। तू बता, तुझे किस कारणसे यह ताप हो रहा है? रोगका निदान जानेबिना उपाय करना ठीक नहीं है।" लज्जासे शकुन्तला कुछ बोलती नहीं। प्रियंवदा भी मनका हाल बतानेके लिए उससे आग्रह करती है, तब शकुन्तला कहती है "सखियों, वह तपोवनका रक्षण करनेवाला जबसे मुझे दीखा है तबसे उसपर आसक्ति हो जानेके कारण मेरी ऐसी अवस्था हुई है। तुम्हारी सम्मति हो तो जिससे उसको मुझपर दया आवे वैसा करो। नहीं तो मुझे तिलोदक देनेके लिए तैयार हो जाओ।" पौरवश्रेष्ठ राजर्षि-पर उसका प्रेम हुआ है, यह समझ कर सखियोंको आनन्द होता है। राजाकी भी प्रेमसे उसीके सदृश अवस्था हुई है, यह प्रियवंदाने देखा था। इसलिए वह शकुन्तलासे कहती है, "तू इस कमलपत्रपर एक मदन-लेख रचकर नखोंसे खोदकर लिख। यह देवताका प्रसाद है, इस मिससे फूलोंमें छिपाकर इसे मैं उसके पास पहुँचा दूँगी।" अनन्तर शकुन्तला अपना मदन-ताप व्यक्त करनेवाली एक प्राकृत गाथा रचकर अपनी सखियोंको सुनाती है। उसको सुनकर राजा आगे आकर कहता है कि "मदनने मेरी स्थिति और भी ज्यादा खराब कर दी है।" इसके बाद प्रियवंदा उससे शकुन्त-लाको स्वीकार करनेके लिए बिनती करती है। उसपर शकुन्तला कहती है, "प्रियवंदे, अन्तःपुरकी स्त्रियोंके विरहसे उत्कण्ठित हुए राजर्षिको तू क्यों रोकती है?" अनसूया भी कहती है, "राजालोगोंके अनेक स्त्रियाँ होती हैं, अतः जिससे हमारी प्रियसखीके बन्धुवर्गोंको दुःख न हो, उस रीतिसे आप इसके साथ व्यवहार करें।" इसपर राजा उत्तर देता है, "मेरी अनेक स्त्रियाँ हैं तो भी समुद्रवलयांकित पृथ्वी और यह तुम्हारी सखी इन दोनोंपर ही मेरे कुलकी प्रतिष्ठा अवलम्बित रहेगी।" इस आश्वासनसे उन दोनोंके चित्तको सन्तोष होता है और हरिण-शिशुको उसकी माताके पास पहुँचानेके

मिससे वे वहाँसे चली जाती हैं । उनके पीछे शकुन्तला भी जाने लगती है, परन्तु राजा उसको रोकता है और "गान्धर्व-विधिसे बहुतसी क्षत्रिय-कन्याओंके विवाह हुए हैं, इस लिए तुझे भी अपने गुरुजनोंका भय माननेकी कुछ आवश्यकता नहीं है" ऐसा कहकर उसके मनको समझाता है । इतनेमें 'हे चक्रवाकवधू ! अपने सहचरसे बिदा माँग, रात पास आ गई है,' ये शब्द सुनाई देते हैं । तब शकुन्तला राजासे कहती है कि "गौतमी मेरा समाचार लेनेके लिए इधर आ रही है, इसलिए आप वृक्षकी ओटमें हो जाँय ।" अनन्तर प्रियंवदा और अनसूयाके साथ गौतमी प्रवेश करती है, शकुन्तलाके स्वास्थ्यकी पूछताछ करती है और उसके मस्तकपर दर्भोदक सींचती है । उस समय सायंकाल हो जानेसे वह शकुन्तलाको अपने साथ ले जाती है । जाते समय शकुन्तला 'हे संतापहारक लताकुंज ! फिर भी मैं तेरा उपभोग करूँ इसलिए मैं तुझसे आज्ञा माँगती हूँ' ऐसा कहकर दुष्यन्तको फिर भेंट करनेके लिए सूचना देती है । इतनेमें 'सायंकालके यज्ञकर्मोंके समय वेदीके चारों तरफ़ आकाशस्थ राक्षसोंकी भयंकर छाया दीखती है' ये शब्द राजाको सुन पड़ते हैं । यज्ञके रक्षण करनेके लिए वह जाता है (अंक ३) । चौथे अंकके आरम्भमें एक विष्कंभक है । उसमें शकुन्तलाके सौभाग्य-देवताकी पूजा करनेके लिए अनसूया और प्रियंवदा फूल चुनती हुई दीखती हैं । उनके भाषणसे मालूम पड़ता है कि यज्ञ समाप्त होनेपर ऋषियोंकी आज्ञासे राजा अपनी राजधानीको लौट गया है । वे इस तरह संभाषण कर रही थीं कि आश्रमके पास 'यहाँ कोई है ?' ये गम्भीर शब्द सुनाई पड़ते हैं । शकुन्तला आश्रममें है तो भी उसका चित्त शून्य है इसलिए अतिथिका सत्कार करनेके लिए वे जाने लगती हैं और इसी बीचमें दुर्वासाका भयंकर शाप सुनती हैं, 'जिसके विषयमें तू एकाग्रतासे विचार कर रही है और मेरे सदृश तपोधनका तुझे ध्यान नहीं है, वह तेरा प्रिय याद दिलानेपर भी तुझे नहीं पहचानेगा ।' आगे जाकर वे देखती हैं कि अतिक्रोधी दुर्वासा जा रहे हैं । तब ऋषिको प्रसन्न करनेके लिए प्रियंवदा आगे बढ़कर प्रार्थना करती है । इसपर दुर्वासा कहते हैं, 'मेरा शाप बदल तो नहीं सकता । परन्तु कोई याद दिलानेवाली वस्तु दिखानेपर शापकी निवृत्ति हो सकेगी ।' प्रियंवदाको कुछ सन्तोष होता है । क्योंकि शकुन्तलाके पास दुष्यन्तकी अँगूठी थी, इस कारण शापकी बाधा नहीं होगी, ऐसा वह सोचती है । शकुन्तला स्वभावसे ही कोमल मनकी है और इस शापके वृत्तान्तसे उसके मनको बड़ा भारी धक्का पहुँचेगा, ऐसा समझकर वे उस विषयमें उससे कुछ भी नहीं कहतीं । इसके बाद कुछ महीने बीत जानेपर मुख्य अंकका प्रसंग आता है । 'मेरी अँगूठीका एक अक्षर प्रतिदिन तू गिनती जा । सब अक्षर पूरे होने तक तुझको ले जानेके लिए मैं सेवकोंको भेजूंगा' राजाने यह वचन शकुन्तलाको दिया था । परन्तु कई महीने बीत

गये तो भी आज तक उसने कोई समाचार नहीं भेजा, इसलिए क्या करना चाहिए इस चिन्तामें अनसूया पड़ी है । प्रियंवदा उससे आकर कहती है, "प्रवाससे लौटे हुए कण्व बाबाको, अग्निगृहमें जाते ही आकाशवाणीने 'शकुन्तलाको दुष्यन्तसे गर्भ रह गया है' ऐसी सूचना दी । तब 'हे वत्से, सच्छिष्यको दी हुई विद्याके समान तेरे विषयमें मुझे अब कोई चिन्ता नहीं रही' यह शकुन्तलासे कहकर कण्वने अपना आनंद व्यक्त किया । वे आज ही ऋषियोंके साथ उसको पति के घर भेजनेवाले हैं, इसलिए उसकी बिदाईकी तैयारी करने चलो ।" इसके बाद वे दोनों उस जगह जाती हैं जहाँ तापसियाँ शकुन्तलाको आशीर्वाद दे रही हैं और बकुलमाला जैसे आश्रममें मिलनेवाले सादे अलंकार उसे पहनाती हैं । उन्हें यह बात अखरती है कि उसके सौन्दर्यके अनुरूप वे वस्तुएँ नहीं हैं । इधर तपोवनकी वनदेवीके दिये हुए रेशमी वस्त्र, लाक्षाराग और अनेक प्रकारके भूषण दो ऋषिकुमार उनको लाकर देते हैं और सखियाँ उन्हें पहना देती हैं । इतनेमें ही स्नान करके महर्षि कण्व वहाँ आते हैं । शकुन्तला आज पतिगृह जानेवाली है, यह सोचकर ऋषि कहते हैं :–

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम् ।
वैक्लव्यं मत तावदीदृशमहो स्नेहादरण्यौकसः
पीडयन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ।।

शाकुं. ४, ६.

'आज शकुन्तला जानेवाली है इस विचारसे मेरा हृदय दुःखसे भर गया है, कंठ गद्गद हो रहा है, चिन्तासे दृष्टि जड़ हो गई है, मैं अरण्यवासी होकर भी, कन्याके प्रेमसे इतना व्याकुल हो जाता हूँ, तो कन्याके विवाहमें गृहस्थ लोगोंकी क्या दशा होती होगी ?' शकुन्तला ऋषिके पाँव पड़ती है, उस समय ऋषि उसे आशीर्वाद देते हैं कि 'तू अपने भर्त्ताको अत्यन्त प्रिय हो और तेरा चक्रवर्ती पुत्र हो ।' अग्निकी प्रदक्षिणा करनेके बाद वे सब चलने लगते हैं । तब तपोवनतरुओंसे कण्व ऋषि कहते हैं—

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ।।

शाकुं. ४, ९.

'जो तुमको पानी बिना पिलाए स्वयं पानी नहीं पीती थी, भूषणोंकी रुचि

होने पर भी जो प्रेमके कारण तुम्हारे पल्लवोंको तोड़ती नहीं थी, तुम्हारे पहले फूल निकलते हुए देखकर जिसको अत्यानंद होता था, वह शकुन्तला आज पतिगृह जा रही है । आप सब उसे अनुज्ञा दें ।' उस समय तपोवनदेवता उसको आशीर्वाद देती है । वह जा रही है इसलिए सारा तपोवन दुःखसे व्याकुल है । हरिणोंके मुखसे दर्भ-कवल गिर पड़ते हैं । मोर अपना नाचना बंद कर देते हैं । लताएँ सूखे पत्तोंके मिस आँसू ढाल रही हैं, ऐसा प्रतीत होता है । शकुन्तला अपनी वनज्योत्स्ना नामक लतारूपी भगिनीसे भेंट करती है । 'गर्भिणी मृगी जब बच्चा जने तब मुझे खबर देना' यह प्रार्थना वह कण्व ऋषिसे करती है । अपने वस्त्रसे लिपटनेवाले और स्वहस्तसंवर्धित मातृहीन हिरणके बच्चेको समझाती है । इसके अनन्तर वे सब क्षीरवृक्षकी छायामें जाते हैं । तब कण्व ऋषि अपना यह संदेश देते हैं—

अस्मान्साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मनः
त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम् ।
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया
भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद्वाच्यं वधूबन्धुभिः ।।
शाकु. ४, १७.

'हम संयमधन हैं, तुम्हारा कुल ऊँचा है और बान्धवोंके प्रोत्साहन विना ही इसने अपना हृदय तुमको स्वयं अर्पण किया है, इस बातका ध्यान रखकर अन्य स्त्रियोंकी तरह इसके साथ व्यवहार करना । इससे अधिकको बात इसके भाग्यपर अवलंबित है जो वधूके बान्धवोंको नहीं कहनी चाहिए ।' इसके अनन्तर कण्व शकुन्तलाको भी एक श्लोकमें उपदेश देते हैं । वह श्लोक पहले प्रकरणमें दिया गया है । 'कदाचित् तुम्हारे पति तुम्हें पहिचान न सकें तो इस अँगूठीको दिखाना' यह उसकी सखी कहती है । यह सुनकर शकुन्तलाके हृदयको धक्का लगता है । 'डरनेका कोई कारण नहीं हैं, अत्यन्त स्नेहसे अनिष्टकी शंका होती हैं', यह कहकर वे उसकी चिन्ताको दूर करती हैं । सूर्य ऊपर चढ़ गया है । इसलिए कण्व ऋषिको लौट चलनेके लिए गौतमी सूचना देती है । शकुन्तला पितृवियोगसे दुःखी होकर पूछती है, 'बाबा, फिर कब मुझे तपोवन देखनेको मिलेगा ?' इसपर कण्व ऋषि कहते हैं—

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी
दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य ।
भर्त्रा तदर्पितकुटुम्बभरेण सार्धं
शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन् ।। शाकु. ४, २०.

'बहुत काल पर्यन्त समुद्रवलयवेष्टित पृथ्वीकी सपत्नी बनकर, जिसका कोई प्रतिस्पर्धी नहीं ऐसे अपने लड़केको सिंहासनपर बैठा कर और उसपर कुटु-म्बका भार सौंप कर फिर तू अपने पतिके साथ इस शान्त आश्रममें आवेगी।' तब शकुन्तला कहती है—'बाबा, तपश्चर्यासे तुम्हारा शरीर कृश हो गया है, इसलिए मेरे लिए कष्ट मत उठाना।' शकुन्तला और गौतमी शिष्योंके साथ चली जाती हैं। तब कण्व ऋषि कहते हैं —

अर्थो हि कन्या परकीय एवं तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा ।।

शाकु. ४, २२.

'कन्या दूसरेका धन है। इसलिए उसको पतिके पास पहुँचाकर मेरा मन ऐसा स्वस्थ हुआ है जैसे किसीकी धरोहर उसके मालिकको लौटा दी हो।' (अंक ४)। कन्याको पतिके घर पहुँचानेमें कण्वका शोक, शकुन्तलाको दिया हुआ वहुमूल्य उपदेश, उसके भावी ऐश्वर्यका रम्य चित्र और उसके जानेके बाद कण्वके चित्तकी निश्चिन्तता, यह सब जिन श्लोकोंमें वर्णन किया गया है वे ऊपर उद्धृत किए हुए चार श्लोक संपूर्ण 'शाकुन्तल' नाटकमें उत्कृष्ट गिने जाते हैं। पाँचवें अंकका स्थल दुष्यन्तका राजमहल है। राजा और विदूषक बातचीत करते हुए बैठे हैं। उस समय हंसपदिका नीचे लिखे हुए आशयका एक गीत गाती है। 'हे भ्रमर, तू नवीन नवीन मधुका लोभी है। आम्र-मंजरीका चुम्बन करके अब केवल कमलवाससे सन्तुष्ट होनेवाला तू उसे क्यों बिलकुल भूल गया है?' राजा सोचता है 'मैंने हंसपदिकासे एक समय प्रेम किया था इसलिए अब वसुमती रानीका उल्लेख करके वह ताना मार रही है।' 'यह ताना अच्छा है' ऐसा जतानेके लिए राजा विदूषकको उसके पास भेजता है। उस गीतके अर्थका विचार करते हुए राजाके मनमें एक तरहकी चिन्ता उत्पन्न हो जाती है। परन्तु उसका कारण उसे मालूम नहीं होता। इसी तरह वह चिन्तामें बैठा था कि कंचुकी कण्व ऋषिका सन्देश लेकर कुछ तपस्वियोंके आनेकी खबर देता है। राजा उनका सत्कार करके अग्निगृहमें लानेके लिए कहता है और वह स्वयं उधर जाकर उनकी राह देखता है। ऋषियोंके साथ आई हुई, घूंघट काढ़े शकुन्तलाकी रमणीय आकृतिसे राजाकी दृष्टि आकृष्ट होती है। तथापि परस्त्रीकी तरफ देखना योग्य नहीं, ऐसा सोचकर वह मनका संयम करता है। राजाके नमस्कार करनेके बाद शार्ङ्गरव उसे आशीर्वाद देता है और कण्वका सन्देश सुनाता है कि 'एकान्तमें तुमने मेरी लड़कीका पाणि-ग्रहण किया है, उसपर मैंने सम्मति दी है, उससे मुझे आनन्द भी हुआ है, क्योंकि तुम दोनों परस्पर योग्य हो। अब अपनी गर्भवती पत्नीको स्वीकार करो।' राजाका मन दुर्वासाके शापसे ग्रस्त हो

गया था, इसलिए उसको शकुन्तलाकी याद बिल्कुल नहीं रहती । वह कहता है, 'क्यों? इसका मैंने कब पाणिग्रहण किया था ?' उसपर शार्ङ्गरव सक्रोध कहता है कि 'किये हुए कर्मका पश्चात्ताप होनेसे तू धर्मकी अवहेलना करता है ? बहुधा ऐश्वर्यसे उन्मत्त हुए लोगोंमें इस तरहके विकार देख पड़ते हैं ।' गौतमी भी उसको याद दिलानेके लिए शकुन्तलाका अवगुण्ठन दूर करती है । शकुन्तलाका सौन्दर्य देखकर राजा चकित हो जाता है । तो भी अधर्मके डरसे वह उसको स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं होता । तब शार्ङगरव गुस्सेमें आकर बोलता है, 'जैसे किसी चोरको उसके चुराए हुए धनकी बख्शीश दी जाय, उसी तरह तेरे द्वारा विवाहित अपनी कन्याको मुनि तुझे अर्पण करते हैं । उनका तू इस तरह अपकार न कर ।' तो भी राजा मंजूर नहीं करता । तब उसको पूर्ण विश्वास दिलानेके लिए अँगूठी दिखाना चाहिए, यह सोचकर शकुन्तला अँगूठी देखने लगती है । परन्तु वह अँगुलीमें दिखाई नहीं देती । तब सहज ही गौतमी बोलती है, 'शक्रघाटपर शचीतीर्थको नमस्कार करते हुए तेरी अँगुलीसे अँगूठी निकलकर गिर गई होगी ।' इतना सुनकर राजा तानेके साथ कहता है, 'यही स्त्रियोंका प्रत्युत्पन्नमतित्व या हाज़िरजबाबी है ।' इसके अनन्तर आश्रममें बीती हुई बातें सुननेसे राजाको विश्वास होगा, ऐसा विचार कर शकुन्तला पुरानी बातें याद दिलाती है । किन्तु राजाको यह सब स्त्री-चरित्र प्रतीत होता है । तब गौतमी कहती है, "तपोवनमें पाली गई इस शकुन्तलाको, छल क्या चीज़ है यह बिल्कुल ही नहीं मालूम ।" राजा कहता है, 'तापसवृद्धे,

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु
संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः ।
प्रागन्तरिक्षगमनात्स्वमपत्यजात-
मन्यैर्द्विजैः परभृतः खलु पोषयन्ति ।। शाकु. ५, २२.

'मनुष्यसे इतर प्राणियोंकी स्त्रियोंमें भी नैसर्गिक धूर्तता दीखती है । फिर जिनको ज्ञान है ऐसी मानवी स्त्रियोंकी तो बात ही क्या ? आकाशमें उड़नेके पहले कोकिला दूसरे पक्षियोंसे अपने बच्चेका पोषण करा लेती है ।' राजाने कोकिलाका दृष्टान्त अपने पक्षको पुष्ट करनेवाला समझ कर दिया था । परन्तु उसके श्लोकमें, अन्तरिक्ष-गमन, द्विज और परभृत ये शब्द द्व्यर्थक होनेसे परोपजीवी अप्सरा अपनी सन्तान दूसरे ब्राह्मणोंके द्वारा पोषण करा लेती है, ऐसा भी ध्वनि उसमेंसे निकलता था । राजा इस प्रकारसे मेरी माताकी निन्दा करता है, यह जानकर शकुन्तलाके क्रोधका आवेग ज्यादा हो जाता है । वह खूब रोषमें भरके कहती है-'अनार्य ! तू अपनी तरह दूसरोंको भी समझता है । तू तृणसे आच्छादित कुएके समान धर्मका आवरण

ले रहा है, तेरी बराबरी कौन करेगा ?' उसका अकृत्रिम कोप देखकर राजाके मनमें संदेह उत्पन्न होता है, परन्तु विश्वास नहीं होता । इसके बाद 'यह तुम्हारी पत्नी है । इसको स्वीकार करो या छोड़ दो, हम तो चले' ऐसा कहकर वे तापसकुमार जाने लगते हैं । तब शकुन्तला भी उनके साथ जाने लगती है । उस समय शार्ङ्गरव उससे चिल्लाकर कहता है, 'हे धृष्ट लड़की ! तू मनचाहा वर्ताव करती है ।' शकुन्तला भयसे काँप उठती है । तब पुरोहित एक युक्ति सुझाता है । वह कहता है, 'महाराज, आपको चक्रवर्ती पुत्र होगा ऐसा साधु पुरुषोंने पहले ही आशीर्वाद दिया है । तब इसको प्रसूतिपर्यंत हमारे यहाँ रहने दीजिए । इसका लड़का यदि चक्रवर्तीके चिह्नसे युक्त हुआ तो आदरपूर्वक इसको स्वीकार करना, नहीं तो इसे पिताके यहाँ भेज देना ।' राजा यह बात स्वीकार करता है । इसके बाद वे सब चले जाते हैं । थोड़े समयके बाद पुरोहित प्रवेश कर कहता है, 'महाराज, कण्वशिष्योंके चले जानेपर वह अपने दैवको दोष देती हुई रोने लगी । इतनेमें अप्सरतीर्थके पास एक स्त्रीरूपी तेजस्वी मूर्ति आई और उसको लेकर अदृश्य हो गई ।' 'पहले ही हमने जिस वस्तुका त्याग कर दिया है उसके लिए व्यर्थ सोच क्यों करें ?' ऐसा सोचकर राजा विश्रान्तिगृहमें चला जाता है (अंक ५) । इसके बाद थोड़े ही दिनोंकी गुजरी हुई वातें छठे अंकमें दिखलाई हैं । आरम्भके प्रवेशक में नगरका अधिकारी राजाका साला और दो सिपाही एक धीवरको राजाकी अँगूठी चुरानेके आरोपमें हाथ बाँधकर ले जाते हैं । राजाके सालेने पूछा— बता, यह अँगूठी तुझे कहाँ मिली ?

धीवर——मैं शक्रघाटके पास रहनेवाला धीवर हूँ ।

सिपाही——अरे चोर ! मैंने क्या तेरी जाति पूछी है ?

राजाका साला——सूचक ! इसको सब बातें क्रमसे कहने दे । बीचमें छेड़छाड़ मत कर ।

दोनों सिपाही——जो आज्ञा ।

धीवर——जाल बंसी वगैरह डालकर मैं मछली पकड़ता हूँ और जीविका चलाता हूँ ।

राजाका साला——बहुत अच्छा धंधा है !

धीवर——महाराज ! ऐसा मत कहिए । निंद्यको भी जातिका कर्म छोड़ना नहीं चाहिए । ब्राह्मण स्वभावसे दयार्द्र है, तो भी यज्ञ-कर्ममें पशुहिंसा करनेके लिए निष्ठुर बन जाता है ।

इसके बाद "मैंने एक दिन पकड़े हुए लाल मत्स्यको चीरा तो भीतर यह अँगूठी मिली । उसे बेचनेके लिए मैंने लोगोंको दिखाया तो आपने मुझे पकड़ लिया ।"

ऐसा धीवरके कहनेपर कोतवाल उस अँगूठीको लेकर राजाके पास जाता है । उसे देख राजाको शकुन्तलाकी याद आने लगती है । इसलिए वह उस अँगूठीका मूल्य उस धीवरको देनेके लिए आज्ञा देता है । एक घड़ी पहले उस धीवरको वध-स्तम्भके पास ले जानेकी तैयारी करनेवाले सिपाही उसे बख्शिश मिली हुई देखकर उसके परम मित्र बन जाते हैं और अपनी मैत्री मद्य-पानसे दृढ करनेके लिए मद्यशालाकी ओर जाते हैं । इसके बाद मेनकाकी सखी सानुमती नामक अप्सरा राजमहलके प्रमदवनमें प्रवेश करती है । यद्यपि वसंत ऋतुका प्रारम्भ हो गया है तो भी उसे राजमहलमें कहीं उत्सवके चिह्न नहीं दीखते । यह देखकर उसे आश्चर्य होता है । इतनेमें दो उद्यान-पालिकाएँ प्रवेश करती हैं और नई आई हुई आमकी मंजरी तोड़कर कामदेवको अर्पण करती है । त्यों ही कंचुकी प्रवेश करके आम्रमंजरी तोड़नेपर गुस्सा करता है । 'हम लोग दूसरे गाँवसे अभी आई हैं । इसलिए मालूम नहीं कि महाराजने वसन्तोत्सवकी मनाई कर दी है । परन्तु इसका कारण क्या है ?' ऐसा पूछनेपर कंचुकी उत्तर देता है कि अँगूठी देखते ही शकुन्तलासे पहले विवाह करनेकी बात महाराजको याद आ गई है । उन्होंने भूलसे उसका त्याग किया था, इस कारण उनको पश्चात्ताप हो रहा है । उस समयसे लेकर कोई रम्य वस्तु उन्हें नहीं भाती और रातभर आँख भी नहीं लगती । मानसिक अस्वस्थतासे उन्होंने वसन्तोत्सव वन्द कर दिया है ।' इतना सुनकर वे अपने कामपर चली जाती हैं और राजा विदूषकके साथ प्रवेश कर प्रतीहारीको आज्ञा देता है कि मन्त्रीसे जाकर कहो कि पिछली रात बहुत जागनेके कारण आज न्यायासनपर बैठकर न्याय देनेकी मेरी इच्छा नहीं है । इसलिए पौरजनोंका जो कुछ काम तुमने देखा हो वह लिखकर भेज देना । उसके बाद वह विदूषकके साथ मनोरंजनके लिए माधवी-मण्डपमें चला जाता है । दुष्यन्त कहता है कि 'अब मुझे शकुन्तलाके विषयमें सब बातें स्मरण हो आई हैं । जिस दिन वह आई थी उस दिन तू मेरे पास न था । परन्तु पहले कभी तूने उसके बारेमें एक शब्द तक नहीं कहा, यह क्यों? मेरी तरह तू भी भूल गया क्या?' विदूषक बोला, "मुझे सब स्मरण था, परन्तु तब आप कह चुके थे कि यह सब हँसी ही है, इसमें कुछ भी तथ्य नहीं। मैं भी मन्दबुद्धि हूँ। आपका कहना मुझे सच्चा लगा। अथवा भवितव्यता चूकती नहीं, यह बात सच है।" राजा सोचता है, 'शायद शकुन्तलाको उसकी माता मेनकाकी सखी उड़ा ले गई होगी। हाँ, अँगूठीको शकुन्तलाकी अँगुलीमें रहनेका सौभाग्य हुआ था, तो भी वह गिर गई। इसमें उसकी भी पुण्याई पूरी हो गई होगी।' इतनेमें शकुन्तलाका चित्र लेकर एक दासी आती है। राजाके चित्रकला-नैपुण्यको देखकर पास ही अदृश्य रूपसे खड़ी हुई सानुमती आश्चर्य-

चकित हो जाती है। राजाने उस चित्रमें तीन स्त्रियोंके रूप खींचे थे। 'उनमेंसे शकुन्तला कौन है?' यह पूछते ही विदूषक उत्तर देता है, "मुझे मालू म पड़ता है थोड़ी थकी हुई यह शकुंतला है। जलसिंचनके कारण जिसके कोमल पल्लव लहलहाते दीखते हैं, ऐसे आम्रवृक्षके पास स्थित, वेणीकी गाँठ छूट जानेसे जिसके बालोंसे फूल गिर गये हैं, जिसके मुखपर पसीनेकी बूंदें दीखती हैं, जिसकी भुजा विशेष कर शिथिल मालूम पड़ती है, और दूसरी उसकी सखियाँ हैं।" उस चित्रमें शकुंतलाके मुखके सामने चक्कर लगाता हुआ भ्रमर उसे डरा रहा है ऐसा दिखाया गया था। वह सच्चा ही भ्रमर है, ऐसा जानकर राजा उससे बात-चीत करने लगता है। विदूषक कहता है, 'महाराज! यह चित्र है!' तब सानु-मती सोचती है, 'क्या सचमुच यह चित्र है ? फिर चित्रित किए हुए प्रसंगको जिसने स्वयं अनुभव किया हो उसकी दशाका क्या वर्णन करना ?' इतनेमें दासी प्रवेश करके कहती है, "मैं रंगकी पेटी ला रही थी त्यों ही रास्तेमें रानी वसुमती ने मुझे देखकर मेरे हाथसे पेटी छीन ली और 'मैं स्वयं इसको ले जाऊँगी' यह कहा है। वे इधर आ रही हैं।" यह सुनते ही राजा विदूषकको चित्र देकर उसको मेघप्रतिच्छन्द महलमें भेजता है। इतनेमें प्रतीहारी अमात्यके पाससे कागज पत्र लेकर आता है जिसमें लिखा है कि 'जलमार्गसे व्यापार करनेवाला धनमित्र नामक व्यापारी जहाज टूट जानेसे डूब कर मर गया। वह पुत्रहीन था, इसलिए उसकी सब संपत्ति सरकारी कोशमें जमा होनी चाहिए।' इसपर राजा आज्ञा देता है कि 'देखो उसकी कोई स्त्री गर्भवती तो नहीं है ?' और प्रतीहारीसे यह जानकर कि उसकी स्त्री गर्भवती है, उसे सब संपत्ति दी जावे, ऐसी आज्ञा देता है। इसके अतिरिक्त यदि 'प्रजामें किसीका कोई भी सम्बन्धी मरे तो उसकी जगह पापकर्मको छोड़कर दूसरे विषयोंमें दुष्यन्तको सम्बन्धी मानना चाहिए' ऐसा ढिंढोरा पीटनेकी आज्ञा देता है। 'मैं स्वयं निपूता हूँ; मेरी मृत्युके अनन्तर पितरोंको पिंड मिलेगा या नहीं।' इस बातसे उसे अत्यन्त शोक होता है। इत-नेमें मेघच्छन्द प्रासादकी छत परसे विदूषकका स्वर सुनाई देता है। किसी राक्ष-सने उसको पकड़ा होगा, ऐसा समझकर राजा बाण मारनेवाला ही थी कि इन्द्रका सारथी मातलि आकर प्रार्थना करता है कि 'महाराज! मुझे इन्द्रने असुर-युद्धमें सहायता माँगनेके लिए आपके पास भेजा है। मैं इधर आया तब आपको शोक-मग्न देखा। इसलिए आपका क्रोध उकसानेके लिए मैंने विदूषकको पीटा है। इसके अनन्तर अमात्यको राज्यका भार सौंपकर राजा मातलिके साथ स्वर्गको चला जाता है। (अंक ६)। सातवें अंक के आरंभमें रथमें बैठे हुए राजा

और मातलि स्वर्गसे नीचे उतर रहे हैं, ऐसा दृश्य दिखाया गया है। राजा कहता है "स्वर्गसे लौटनेके लिए मुझे अनुमति देते समय इन्द्रने मेरा अत्यन्त सम्मान किया।" मातलिने कहा, 'पहले नरसिंहके नखोंसे और इस समय आपके बाणोंके सुखोपभोगमें मस्त रहनेवाले इन्द्रके सर्व शत्रु नष्ट हो गए हैं। अतः आप इन्द्र के किस सम्मानके पात्र नहीं हैं?' मातलिके द्वारा पर्वत-पर सुर-असुरोंके पिता मारीच ऋषिके पास आ गया हूँ, यह जान कर उनको नमस्कार करने के लिए राजा वहाँ उतरता है। फिर राजाके आनेका समाचार सुनानेके लिए मातलि ऋषिके पास जाता है और राजा वहीं वृक्षके नीचे बैठ जाता है। वहाँ उसे दक्षिण बाहु फड़कनेका शुभ शकुन होता है। इतनेमें अपनी माँका दूध पीनेवाले सिंहके बच्चेको खेलनेके लिए जबरदस्ती खींचनेवाला एक बालक और उसे रोकनेवाली दो तापसियाँ उसके सामने आती हैं। उनके भाष-णसे राजाको ज्ञात होता है कि ऋषिने उसका सर्वदमन अन्वर्थ नाम रक्खा है। बालकको देखते ही राजाके मनमें पुत्रस्नेह उत्पन्न होता है। वह सिंहके बच्चेको छोड़ दे इसलिए तापसी उसको दूसरा खिलौना देना चाहती है। "लाओ, कहाँ है वह?" ऐसा कहकर वह हाथ फैलाता है। तब उसकी हथेलीपर चक्रवर्तीके चिह्न राजाको दिख जाते हैं। विशेषतः उसका चंचल स्वभाव देखकर राजाकी इच्छा होती है कि उसे गोदमें ले लें। वह कहता है—

आलक्ष्य दन्तमुकुलाननिमित्तहासै—
रव्यक्तवर्णरमणीयवचःप्रवृत्तीन्।
अङ्काश्रयप्रणयिनस्तनयान्वहन्तो
धन्यास्तदङ्गरजसा मलिनीभवन्ति ।।

शाकु. ७, १७.

"बिना कारण हँसते हुए जिनके दाँत कलीकी तरह थोड़े थोड़े देख पड़ते हैं, जिनकी तोतली बोली चित्ताकर्षक लगती है, पिताकी गोदमें बैठनेके लिए जो अत्यन्त उत्सुक हैं, ऐसे धूलसे भरे हुए अपने बालकोंको लेकर जिनके अंक मलिन हो जाते हैं वे धन्य हैं।" सर्वदमन किसीकी नहीं सुनता, यह देख तापसी दुष्यन्तकी मदद माँगती है। राजाके बुलानेपर सर्वदमन उसके पास जाता है। उन दोनोंके चेहरेकी विलक्षण समता देखकर तापसीको आश्चर्य होता है। उसके द्वारा राजाको मालूम होता है कि यह बालक पुरुवंशमें उत्पन्न हुआ है और उसकी माताका अप्सरासे रिश्ता होनेके कारण इस आश्रममें ही यह हुआ था। इतनेमें दूसरी तापसी, जो रँगा हुआ मिट्टीका मोर लानेके लिए गई थी, लौटकर आती है और

कहती है–'सर्वंदमन, इस शकुन्तलावण्यको देख।' सर्वदमन अक्षरोंकी सदृशतासे, 'शकुन्तलाको देख' ऐसा अर्थ समझता है। तव वह कहता है, 'कहाँ है मेरी माँ?' राजाको मालूम पड़ता है कि उसकी माताका नाम भी शकुन्तला है। तो भी एक ही नाम बहुतोंके होते हैं, और दूसरी तरह की सदृशता हुई तो भी कदाचित् अन्तमें वह सब मृगजलके समान मिथ्या न निकले, ऐसी राजाको शंका होती है। इतनेमें तापसी कहती है। 'इसकी कलाई पर रक्षाका तावीज कहीं नहीं दीखता।' 'यह सिंहके साथ धींगामस्ती कर रहा था उस समय उसका वह तावीज गिर गया होगा, देखो' यह कहकर तापसीके रोकनेपर भी दुष्यन्त तावीज उठा लेता है। दुष्यन्तने जब निषेधका कारण पूछा, तब वह वोली कि 'भगवान् मारीच ऋषिने इस बालकके जातकर्मके समय अपराजिता नामक औषधि रखकर इस तावीजको कलाईपर बाँधा था और कहा था कि 'इसके माता पिता या स्वयं मुझे छोड़कर दूसरा कोई भी व्यक्ति जमीनपर गिरे हुए तावीजको हाथ न लगाए। नहीं तो वह सर्प होकर उसको डस लेगा। इसका परिचय हम लोगोंको कई वार हुआ है।' इस प्रसंगसे दुष्यन्तका संशय पूरी तौरसे दूर हो जाता है। इस घटनाको तापसी शकुंतलासे कहनेके लिए दौड़ जाती है। उसके साथ साथ बालक भी जाने लगता है। तब दुष्यन्त कहता है, 'वेटा, ठहरो। हमारे साथ माताके पास चलना।' उसपर 'मेरे पिता दुष्यन्त हैं, तुम नहीं' सर्वदमनका यह उत्तर सुनकर राजाका विश्वास अधिक दृढ़ हो जाता है। इतनेमें मलिन वस्त्र पहने हुए, एक ही वेणी धारण किए शकुंतला प्रवेश करती है। पश्चात्ताप से पीले पड़ गये राजा को वह एकदम नहीं पहिचान पाती। परन्तु शीघ्र ही उसको विश्वास हो जाता है और वह राजाको प्रणाम करती है। फिर सर्वदमनने पूछा 'यह कौन है?' तव 'पुत्र, अपने दैवसे पूछो' यह कहती हुई वह रोने लगती है। 'प्रिये, मैंने तुम्हारा त्याग किया है, ऐसा तुमको बिलकुल मनमें नहीं लाना चाहिए। क्योंकि उस समय मेरे मनको न मालूम क्या हो गया था।' यह कहकर राजा उसके पाँव पड़ता है। शकुंतला उसको उठाती है और वे सब मारीच मुनिके दर्शनके लिए जाते हैं। मारीच ऋषि और उनकी पत्नी आदिति उन दोनोंको आशीर्वाद देती है। मारीच ऋषिसे दुर्वासा के शापका वृत्तांत सुनकर दुष्यन्तको 'मैं दोषमुक्त हो गया' यह जानकर आनन्द होता है। शकुन्तलाको भी मुझे पतिने बिना कारण नहीं छोड़ा था, यह जाननेपर संतोष होता है। इसके अनन्तर राजाके कहनेसे, मारीच ऋषि कण्व मुनिको यह सब वृत्तांत सुनानेके लिए एक ऋषि-

कुमारको भेजते हैं और दुष्यन्तको पत्नी और पुत्र सहित राजधानी जानेकी आज्ञा देते हैं। इसके बाद भरतवाक्यसे नाटक समाप्त होता है।

कालिदासने इस नाटकका कथानक कहाँसे लिया, इस विषयमें सौभाग्यसे वादविवाद के लिए अवकाश नहीं। अनन्त कथारत्नोंके सागर प्राचीन महाभारतके आदिपर्वमें करीब ३०० श्लोकोंमे शकुन्तलाकी कहानी आई है। उसकी 'शाकुन्तल'से तुलना करनेपर कालिदासका अनुपम रचनाकौशल और कलाभिज्ञत्व ध्यानमें आ जायगा। इसलिए महाभारतकी कहानी संक्षेप से यहाँ दी जाती है* ।

एक दिन पुरुकुलोत्पन्न दुष्यन्त राजा अपने साथ बड़ी सेना, अमात्य और पुरोहित इत्यादिको लेकर शिकारको गया। बहुत देर तक शिकार करनेके बाद एक पासके आश्रममें पहुँचा। तपोवनके बाहर सेना छोड़कर और राजचिह्न शरीरसे उतारकर उसने पुरोहित और अमात्यके साथ आश्रममें प्रवेश किया। थोड़ा आगे जानेपर अमात्यादिकोंको एक जगह छोड़ वह अकेला कण्वकी पर्णकुटीकी तरफ गया। उस समय कण्व ऋषि फूल लानेके लिए बाहर गये थे। तथापि उनकी सुंदर कन्या शकुंतला पर्णकुटीमें थी। उसने उनका स्वागत किया। उसको देखते ही राजाके मनमें कामविकार उत्पन्न हुआ। पूछनेपर शकुंतलाने अपना जन्म-वृत्तान्त विस्तारसे कह सुनाया। उस समय नाना प्रकारके वस्त्रालंकारोंका लालच देकर उसने शकुन्तलासे अपनी पत्नी होनेकी बिनती की। शकुन्तलाने उत्तर किया, 'मेरे बाबा फल लानेके लिए बाहर गये हैं। वे एक घड़ी भरमें आवेंगे और फिर वे मुझे आपको अर्पण कर देंगे।' परंतु राजाने कहा, 'गांधर्व विवाह क्षत्रियके लिए विहित है। तू अपना दान स्वतः करनेके लिए, समर्थ है।' और उसका मन अपनी ओर आकृष्ट किया। परन्तु अपनी सम्मति देनेके पहले "मेरे लड़केको तुम्हारे पीछे गद्दी मिलनी चाहिए" ऐसी शकुन्तलाने शर्त की और राजाने उसे मान लिया। इसके अनन्तर राजाने उससे गांधर्व विवाह किया और कुछ देर तक उसके साथ रहा। शकुन्तलाको अपनी राजधानीमें ले जानेके लिए बड़ी भारी सेना भेजनेका वचन देकर कण्व ऋषिके शापके डरसे वह वहाँसे चल दिया। ऋषिके लौटनेपर शकुंतला लज्जासे उनके सामने नहीं आई। तब उन्होंने अन्तर्ज्ञानसे सब हाल जानकर उसका अभिनंदन किया और उसको माँगा हुआ वर दिया। इधर वचनके अनुसार दुष्यन्तने न

---

* इस कथासारांशमें भाण्डारकर ओरिएण्टल इन्स्टिटयूट द्वारा प्रकाशित महाभारत (आदिपर्व) के नवीन संस्करणका उपयोग किया गया है।

तो सेना भेजी न उसके विषयमें कोई पूछताछ ही की। कालान्तरमें शकुन्तलाको आश्रममें बच्चा हुआ। इस लड़केके जातकर्मादि संस्कार कण्वने किये। छः वर्षका भी नहीं हुआ था कि वह व्याघ्र, सिंहादि क्रूर पशुओंको पकड़कर ले आता और उनसे खेलता था। इसलिए आश्रमके सब लोगोंने उसका नाम 'सर्व-दमन' रक्खा। बल और पराक्रमयुक्त होनेसे वह युवराज होने योग्य हुआ, यह देखकर कण्वने शकुन्तला और सर्वदमनको हस्तिनापुर भेजनेके लिए शिष्योंको आज्ञा दी। राजदरबारमें पहुँचनेके अनन्तर शकुन्तलाने पिछले प्रसंगकी याद राजाको दिलाई और पुत्रको स्वीकार करनेके लिए बिनती की। राजाने उत्तर दिया, 'तुम्हारे साथ विवाह करनेकी तो मुझे याद नहीं है। तुम्हारी इच्छा हो तो रहो अथवा चली जाओ।' तब शकुन्तलाको अत्यन्त सन्ताप हुआ और वह वोली, 'राजा, किसी क्षुद्र मनुष्यकी तरह तू क्यों झूठ वोलता है ? मैं जो बात करती हूँ वह सच्ची है या झूठ यह तेरे मनको मालूम है। पाप करते समय मुझे कोई नहीं देखता है, ऐसा पापी मनुष्य सोचता है, परन्तु ईश्वर और पाप करनेवालोंकी अन्तरात्मा यह सब देखते रहते हैं। भार्याको पुरुषकी अर्धांगिनी कहते है। उसमें पुत्ररूपसे उसके पतिका फिर जन्म होता है। पुत्रकी अपेक्षा अधिक आनन्द देने-वाली ऐसी कौनसी वस्तु जगत्‌में है?' इत्यादि कहकर उसका मन अपनी तरफ खींचनेके लिए उसने यत्न करके देखा। परन्तु राजाने एक न सुनी। 'तूने इसको स्वीकार नहीं किया, तो भी मेरा लड़का अखिल पृथ्वीको पादाक्रांत करेगा।' ऐसा कहकर वह पुत्रके साथ जाने लगी। उसी समय आकाशवाणी हुई, 'दुष्यन्त, यह तेरा ही लड़का है। इसको स्वीकार कर।' तब राजा आनन्दित होकर पुरोहित, अमात्य आदिसे बोला, 'सुनो, यह देवदूतकी वाणी है। यदि मैंने इस लड़केको पहलेसे स्वीकार कर लिया होता तो यह जन्मसे शुद्ध है या नहीं, इसका तुमको संशय रहता।' इसके अनन्तर वह शकुन्तलासे बोला, "अगर मैंने ऐसा न किया होता तो लोग कहने लगते कि 'कामुकतासे मैंने तुमको स्वीकार किया है।' क्रोधसे तुमने जो अपशब्द मुझसे कहे, उनके लिए मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ।" अनन्तर उसने शकुन्तलाको अपनी पटरानी बनाया और भरतको युवराजपद दिया।

'महाभारत' की ऊपर लिखी हुई सादी और वैचित्र्य-रहित कहानी बाँचने पर यदि किसीसे कहा जाय कि उसमेंसे संसारके एक अत्यन्त उत्कृष्ट नाटककी उत्पत्ति हुई तो उसको यह सत्य नहीं प्रतीत होगा। खानमेंसे निकला हुआ टेढ़ा मेढ़ा पत्थर देखते ही उसमेंसे एक अत्यन्त रम्य मूर्तिका निर्माण हो सकता

है ऐसी कल्पना कर सकना कठिन है। परन्तु सामान्य लोगोंके चर्मचक्षुको जो नहीं दीखता वह कलाभिज्ञकी प्रतिभारूपी दिव्य दृष्टिके सामने प्रकट हो जाता है। व्यासकी सादी साधन-सामग्रीमें अपनी प्रतिमासे बनाया हुआ वैचित्र्य-पूर्ण प्रसंग रखनेसे उत्कृष्ट रस-परिपाक हो सकता है, यह कालिदासको मालूम पड़ा होगा। * दूसरी बात यह है कि महाभारतके कथानककी घटना बहुत प्राचीन कालमें हुई थी। समाजकी उस प्राथमिक अवस्थामें उसके प्रसंग और विचार असंभाव्य और अनुचित नहीं लगते, तो भी शायद कालिदासके समयके सुसंस्कृत समाजको वे न भाते। इसके सिवा व्यासकी पुराणकथामें नायक दुष्यन्त और नायिका शकुन्तला ये केवल स्वार्थसे प्रेरित दीखते हैं। नाटकमें उनके चित्र रम्य और आकर्षक बनानेके लिए उनके स्वभावमें तरह तरहकी छटाके रंगोंका उचित प्रमाणमें मिलाना जरूरी था। इस कारण कालिदासने मूल कहानीमें बहुतसे परिवर्तन किये हैं। यह स्पष्ट है कि 'शकुन्तलोपाख्यान' और 'शाकुन्तल' इनके कथानककी तुलना की जाये तो दुर्वासा ऋषिका शाप और उसकी निवृत्ति होनेके लिए आवश्यक मुद्रिका ये दो महत्त्वकी बातें कविने स्वयं प्रसूत की हैं। इनमेंसे पहलीका उपयोग दो प्रकारसे किया है। 'महाभारत' का दुष्यन्त विषयासक्त, डरपोक और स्वार्थी दीखता है। कण्वका घण्टे दो घण्टेमें लौट आना सम्भव था। तथापि उसकी राह न देखकर उसके परोक्षमें वह उसकी कन्याका उपभोग करता है। विषयोपभोग की तात्कालिक लहर शान्त होनेपर मुझपर ऋषि क्रोध करेंगे, इस डरसे वह शीघ्र हीं वहाँसे भाग जाता है। बादमें शकुन्तलाको दिये हुए वचनको मानता ही नहीं। इतना ही नहीं, वह स्वयं अपने पुत्रके साथ राजसभामें उपस्थित हुई तो भी राजा लोकापवादके भयसे अपने कर्तव्यको भूल जाता है। आकाशवाणी यदि न हुई होती तो अपनी निरपराध पत्नी और पुत्रका त्याग करनेमें उसे कुछ भी संकोच न होता। ऐसे निकृष्ट कोटिके नायकका पराक्रमी, प्रेमी, पापभीरु, और कर्तव्यपरायण पुरुषके रूपमें परिवर्तन करनेके ऐंद्रजालिक कार्यमें दुर्वासाका शाप एक प्रमुख साधन बनाया गया है। उस शापसे राजाकी स्मृति नष्ट हुई और अन्य अवसर पर अपना कर्तव्य तत्परतासे करनेवाला राजा 'शाकुन्तल' नाटकमें परस्त्रीस्पर्शभयसे अपनी पत्नीका त्याग करनेवाला हो गया। पाँचवें अंक में दो सत्पक्षोंके झगड़ेका हृदयंगम प्रसंग इसी शापसे शक्य हुआ है। छठे अंकमें दुष्यन्तका शोक और सातवें अंकमें शकुन्तलाका अत्यन्त कारुण्योत्पादक दृश्य शाप-प्रसंगके आधारपर अवलंबित है। सारांश यह कि इस

* आनन्दवर्धनाचार्यने भी 'ध्वंन्यालोक' (पृ. १४८) में यही बात कही है।

शापने नायक-नायिकाको कुछ काल तक कष्ट दिया तो भी अन्तमें उनके स्वभावकी उदात्तता व्यक्त करके उसने उनका उपकार ही किया है। कथानकको भी वैचित्र्यपूर्ण और रम्य प्रसंगसे चित्ताकर्षक बनाया है। इसके अतिरिक्त इस शापके प्रसंगकी रचनामें कालिदासका एक दूसरा भी उद्देश्य था। केवल वाह्यरूपसे उत्पन्न हुआ प्रेम वैषयिक और हलके दर्जेका होता है। संकटकी भट्टी पर तप तपाकर जब प्रेम निकलता है तब उसका स्वार्थीपन नष्ट होकर वह कर्तव्यमें परिणत हो जाता है। ऐसे निरपेक्ष, उदात्त प्रेमकी समाजके धारण और अभ्युदयके लिए अत्यन्त आवश्यकता है। इसलिए कालिदासने अपने दूसरे ग्रंथोंमें भी इस प्रकारके प्रेमके चित्र खींचे हैं। 'कुमारसंभव'में पार्वती, 'मेघदूत' में यक्षपत्नी और 'विक्रमोर्वशीय' में औशीनरी ऐसे ही दिव्य प्रेमकी मूर्तियाँ हैं। 'विक्रमोर्वशीय' में औशीनरीका पात्र उदात्त स्वरूपका होता हुआ भी प्रधान नहीं हो सका, इस कारण कविका यह अभिप्राय उस नाटकमें स्पष्ट रूपसे प्रकट नहीं हुआ। वह न्यूनता इस नाटकमें कविने पूरी कर दी है। शकुन्तलाके प्रेमकी परीक्षा लेनेके लिए उसने दुर्वासके शापका कुशलतासे उपयोग किया है। उसके दुसरे नाटकोंमें भी किसी दैवी घटनाके कारण नायकनायिकापर संकटका प्रसंग आया हुआ प्रतीत होता है। ऐसा प्रसंग किसी ऋषिके शापसे आए यह स्वाभाविक ही है। शकुन्तलासदृश प्रेमल और पतिचिंतामग्न नायिकाको शाप देनेके लिए दुर्वासाके सदृश निष्ठुर और सुलभक्रोधी दूसरा कौन मिल सकता था? शापके बाद शापविमोचन होना ही चाहिए। शापसे राजाको शकुन्तलाकी विस्मृति हो गई थी, इसलिए शाप-विमोचनके लिए किसी साधनसे उसकी पहिचान करना आवश्यक था। ऐसे समय मुद्रिकासदृश पूर्वपरिचित साधनका कविको सूझना स्वाभाविक ही है। सीताको अपनी पहचान करानेके लिए हनुमानने रामचन्द्रजीकी मुद्रिका अपने साथ ली थी, यह कविको मालूम ही था। किंबहुना, 'मेघदूत' रचनाके समय वह प्रसंग उसके मस्तिष्कमें घूमता ही रहा होगा। तब दुष्यन्तको भी मुद्रिका-दर्शनसे शकुन्तलाकी याद दिलानेकी कल्पना कविको सूझे तो कोई आश्चर्य नहीं। बौद्धोंके पाली भाषामें लिखे हुए जातक ग्रंथमें गौतम बुद्धकी पूर्व जन्मकी कथाओंका वर्णन आया है। उसमें 'कठ्ठहारि' जातकमें 'शाकुन्तल' के संविधानकसदृश एक कथा मिलती है। "वाराणसी नगरका ब्रह्मदत्त राजा जंगलमें एक सुंदर स्त्रीको देखता है। उससे कुछ समय तक रमण करके अपनी नगरीको लौट जाता है। परन्तु जाते समय उसकी अँगुलीमें निशानीके लिए एक मुद्रिका पहिना देता है। बादमें जंगलमें उस स्त्रीका प्रसव होता है और वह

बालक बोधिसत्त्व कहलाता है। उसके बड़े होने पर उसे लेकर वह स्त्री राजाके पास जाती है और पहिचानकी निशानी अँगूठी दिखलाती है। राजा जान बूझकर दिखाता है कि हम उसे पहचानते ही नहीं। तब सत्यक्रियाके सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं ऐसा जानकर वह अपने लड़केका पाँव पकड़ कर उसको आकाशमें फेंक देती है और राजासे कहती है 'राजा, यदि वह तुम्हारा ही लड़का होगा तो आकाशमें भी सुरक्षित रहेगा, नहीं तो जमीनपर गिरकर उसके शरीरके टुकड़े टुकड़े हो जावेंगे।' बोधिसत्त्व आकाशमें ही पालथी मारकर रह जाता है, यह देखकर किसीको भी उसके जन्मके बारेमें संशय नहीं रहता। तब राजा भी उसको स्वीकार कर उसे यौवराज्य पद देता है।" जातककी यह कहानी सुनकर कालिदासको मुद्रिकाकी कल्पना आई होगी, ऐसा कई योरोपियन विद्वानोंका मत है। परन्तु उसको हम नहीं मानते। ऊपर कहे हुए जातकमें और 'महाभारत' की शकुन्तलाकी कथामें बहुत कुछ साम्य है। बौद्धोने यह कथा हिन्दू ग्रंथोंसे ली और थोड़ासा भेद करके गौतम बुद्धके पूर्वजन्मसे उसका संवंध जोड़ दिया, ऐसा प्रतीत होता है। जातकोंकी अनेक कथाओंमें ऐसा ही किया गया है, यह स्पष्ट है। कालिदासके नाटकमें दुर्वासाका शाप और मुद्रिकाका घनिष्ठ संबंध है। परन्तु ऊपरकी कहानीमें शापका उल्लेख नहीं है। 'शाकुन्तल' में मुद्रिकाप्रकरणकी कल्पना कालिदासको स्वाभाविक रूपसे कैसे सूझी, यह हम ऊपर दिखला आये हैं। 'मालविकाग्निमित्र' में भी कविने मुद्रिकाका उपयोग पहिचानके लिए किया था. यह बात ध्यान देने योग्य है।

मुद्रिका-दर्शनसे ही राजाकी स्मृति जागृत होगी इसलिए राजाके पास शकुन्तलाके जानेके पहले ही अँगूठीका गिरना और आगे शकुंतलाका त्याग करनेके बाद अँगूठी देखकर राजाकी स्मृति जागृत होना—ये दोनों घटनाएँ बड़ी स्वाभाविक रीतिसे आई हैं। यह कैसे हुआ, यह दिखानेके लिए कालिदासने धीवर और सीपाहीका दृश्य नाटकमें डाला है। उसमें उसका अलौकिक कल्पना-कौशल्य उत्क्रुष्ट रीतिसे दीख पड़ता है। ईसापूर्व ५ वीं शताब्दीके हिरोडोटस नामक ग्रीक इतिहासकारके ग्रंथमें भी ऐसे ही एक प्रसंगका वर्णन आया है। उसीसे यह कल्पना कालिदासको सूझी होगी ऐसा एक विद्वान्ने प्रतिपादन किया है★। 'पालिक्रेटस् नामके ग्रीक राजाने एक दिन अपने भाग्यकी परीक्षा करनेके लिए अत्यन्त मूल्यवान् रत्नके खंडसे जड़ी हुई अपनी मुद्रिका समुद्रमें डाल दी। फिर पाँच छः दिनमें एक धीवरसे लाई हुई मछलीके पेटमें वह उसको मिली।' ऊपर कहे हुए विद्वान्के मतानुसार यह बात कालिदासको विदित होनी चाहिए।

★ J. B. O. R. S., Vol. VII, p. 97.

'क्योंकि ई. स. की प्रथम शताब्दीमें भडोच बंदरगाह द्वारा मालवा और काठियावाड़ प्रांतोंका पश्चिम देशसे व्यापार चलता था। इनं देशोंसे हिन्दुस्तानके राजाओंके उपभोगके लिए अनेक सुंदर ग्रीक तरुणियाँ भी लाई जाती थीं। कालिदासने अपने प्रान्तके राजदरबारमें इन यवनियोंको देखा होगा। इसी कारण उसने 'शाकुन्तल'नाटकमें दुष्यन्त राजाके साथ शिकारके समय यवनियाँ थीं, ऐसा दिखाया है। उन यवनियोंके मुखसे यह ग्रीक कहानी कविको मालूम हुई होगी।' इस मतमें बहुतसी बातें अप्रमाण ही मान ली गई हैं। हिरोडोटस द्वारा वर्णन की गई कहानी उसके बाद लगभग आठ नौ सौ वर्ष तक ग्रीक स्त्रियोंको मालूम रही, उन स्त्रियोंका और कालिदासका संबंध हुआ, उनकी बातचीतमें वह कहानी आई और उससे कविको 'शाकुन्तल' का प्रसंग सूझा। इसमें बहुत दूरका संबंध जोड़ा गया मालूम होता है। कालिदासने कहीं भी दूसरी जगह ग्रीक कहानियोंका उपयोग किया है, ऐसा नहीं मालूम पड़ता। तब इस कल्पनाका श्रेय कविको ही देना योग्य होगा। ग्रीक और भारतीय तत्त्व-ज्ञानमें बहुत जगह आश्चर्यजनक साम्य दीखता है। ऊपरका प्रसंग भी इसी तरह है और उसकी उपपत्ति 'मानवीय मन सर्वत्र एकसमान होता है,' इस तरहसे लगानी चाहिए।

दुर्वासाका शाप और मुद्रिका ये दोनों महत्त्वकी बातें कविको कैसे सूझीं, यह हमने ऊपर देखा है। मूलकथामें उसके किये हुए अन्य परिवर्तनोंका कारण समझना आसान है। दुष्यन्त आश्रममें गया, उस समय कण्व ऋषि पुष्प, फल आदि लेनेके लिए जंगलमें गये थे। उनके आनेके पहले, राजा शकुंतलाके जन्म-संबंधकी कहानी सुनता है, स्वयं लंबा चौड़ा भाषण कर उसका मन आकर्षित करता है, उससे रमण करता है और चला जाता है, ऐसा 'महाभारत' में वर्णन है। एक दो घंटोंमें इन सब बातोंका होना असंभवनीय और कलाकी दृष्टिसे समर्थन करने लायक नहीं ठहरता। इसके सिवा उससे राजाका उल्लूपन और शकुन्तलाका स्वार्थी स्वभाव व्यक्त होता है। कलाविलास और औचित्यकी दृष्टिसे इस जगह परिवर्तन करना आवश्यक था। इसलिए कालिदासने कण्व ऋषिको शकुन्तलाके प्रतिकूल दैवकी शांति करनेके लिए दूर सोमतीर्थमें भेजा है। उधरसे लौट आनेमें उसको सहज ही चार छः मास लगे होंगे। इस अवधिमें यज्ञ-रक्षण के लिए आश्रमवासियोंकी विनतीके कारण दुष्यन्त आश्रममें रहा। उसका और शकुन्तलाका मदन-संताप उत्तरोत्तर बढ़ता गया और वह अत्यन्त असह्य हो गया, उस समय उसने गांधर्व विवाह किया, ऐसा कविने दिखाया

है। इसमें अस्वाभाविकता कुछ भी नहीं दीखती। शकुंतलाका योग्य पतिसे गान्धर्व विवाह हुआ और वह गर्भवती हुई, यह समझते ही कण्वने उसको पतिगृह भेजनेका निश्चय किया, इसमें कालिदास-कालीन लोगोंके स्त्री-विषयक विचारोंका प्रतिबिंब पड़ा हुआ दीखता है। उस समय स्त्रियोंकी शालीनताविषयक कल्पना भी 'महाभारत' के कालसे बिलकुल निराली थी। इसलिए कालिदासने अपने नाटकमें शकुन्तलाकी हकीकत स्वयं उससे न कहलवाकर सखीके द्वारा कहलवाई है। 'महाभारत' में शकुन्तला, मेरे पुत्रको गद्दी मिलनी चाहिए, यह प्रतिज्ञा राजासे कराना चाहती है और राजाके स्वीकार कर लेनेपर आत्मसमर्पण करती है। इसमें उसकी व्यावहारिकता दीख पड़ती है, लेकिन उसीके साथ यह भी सिद्ध होता है कि उसके हृदयमें सकृद्दर्शनसे उत्पन्न होनेवाले प्रेमका प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। कालिदासकी शकुन्तला प्रेमपरवश हुई थी। उसको ऐसी शर्त कैसे सूझेगी? उसकी सखियाँ स्वभावसे ही ज्यादा चतुर थीं। तथापि उन्होंने 'राजाके अनेक स्त्रियाँ होती ही हैं, इसलिए यह हमारी प्रिय सखी बान्धवोंके दुःखका कारण न हो ऐसा आप उसके साथ व्यवहार करें' इतना ही सुझाया है। ऐसे प्रसंगपर सब बातें नायिकाके द्वारा कहलाना उचित नहीं होगा, यह जानकर कविने प्रियवंदा और अनसूया—शकुन्तलाकी प्यारी सखियोंकी जोड़ी निर्माण की है। इसके सिवा शारद्वत और शार्ङ्गरव ये कण्वके शिष्य, शकुन्तलाका पालन करनेवाली वृद्ध तापसी गौतमी, राज-पुरोहित, माढव्य नामका विदूषक, वैखानस, सेनापति इत्यादि कथानकके विकास करनेके लिए आवश्यक अनेक पात्र कविकी कल्पनाकी उपज है। इनमेंसे कई पात्र शारद्वत, शार्ङ्गरव, पुरोहित, प्रियवंदा और गौतमी ये 'पद्मपुराण'के 'शकुन्तलोपाख्यान'में भी मिलते हैं। इसके सिवा 'पद्मपुराण'की कथा 'शाकुन्तल' नाटकके संविधानकसे बहुत अंशमें मिलती है। इसलिए कालिदासने 'पद्मपुराण'से अपने नाटकका कथावस्तु और अनेक पात्र लिए होंगे, ऐसा डॉ. विण्टरनिट्ज आदि संशोधक कहते हैं। उनके मतोंका यहाँ थोड़ेमें विचार करना आवश्यक है।

'पद्मपुराण' और 'रघुवंश' में दिलीपसे लेकर दशरथ पर्यन्त राजाओंके वर्णनमें कई स्थानोंपर आश्चर्यजनक शब्दसाम्य और कल्पनासाम्य मिलता है, इसका ऊपर उल्लेख हो चुका है। उसी तरह इस जगह भी साम्य है। दुष्यन्तका मृगको मारने चलना, वैखानसद्वारा उसका निवारण, आश्रममें प्रवेश करनेपर शकुन्तला और सखियोंका वृक्षोंको पानी देते हुए देखना, उसके पूछनेपर सखी-द्वारा शकुन्तलाके जन्मवृतान्तका वर्णन, दुष्यन्तके चले जानेके बाद दुर्वास का

शाप, हस्तिनापुरके रास्तेमें एक तीर्थमें मुद्रिकाका पतन और अदृश्य होना, दुष्यन्तका स्मृतिभ्रंश, शकुन्तलाका निराकरण, धीवरके द्वारा मुद्रिकाकी प्राप्ति और उसके अनन्तर राजाका पश्चात्ताप और शोक, अन्तमें स्वर्गसे लौटते हुए मारीचके आश्रममें शकुन्तला और सर्वदमनसे भेंट इत्यादि प्रसंग 'शाकुन्तल' नाटक और 'पद्मपुराण' दोनोंमें समान हैं और इन प्रसंगोंका वर्णन भी बहुत अंश तक समान शब्दोंमें किया गया है। कई जगह महत्त्वके भेद भी मिलते हैं। 'महाभारत'के समान 'पद्मपुराण'में भी कण्व ऋषि दूसरे स्थानमें नहीं, किन्तु फल और पुष्प लानेके लिए वनमें गये थे और उनके लौट आनेके पहले दुष्यन्त नगरको लौट गया था, ऐसा वर्णन है। हस्तिनापुर जानेके समय शार्ङ्गरव, शारद्वत और गौतमीके साथ प्रियवंदा भी शकुन्तलाके साथ थी। तीर्थमें स्नान करते हुए शकुन्तलाने उसे अँगूठी दी। अँगूठीको वह वस्त्रमें रखही रही थी कि वह लुढकती हुई पानीमें जा गिरी। उस समय प्रियवंदाने शकुन्तलाको वृत्तांत नहीं बताया और शकुन्तलाको भी उसकी याद नहीं रही। परन्तु राजाके सामने मुद्रिकाकी जरूरत पड़ी, तब उसने प्रियवंदासे माँगी, ऐसा पद्मपुराणमें वर्णन आया है। 'शाकुन्तल' के समान महाभारतसे भी 'पद्मपुराण'का कई विषयोंमें अत्यन्त सादृश्य है। शकुन्तलाको वशमें करनेके लिए दुष्यन्तका प्रलोभनात्मक भाषण, बनसे लौट आनेपर कण्व ऋषिद्वारा शकुन्तलाका अभिनन्दन, इसके बाद शकुन्तलाको वर-प्रदान, राजाके अस्वीकार करनेसे अत्यन्त सन्तप्त शकुन्तला द्वारा राजाका वाक्ताडन, महाभारत और पुराणमें बिल्कुल समान शब्दोंमें किया गया है। लगभग १०० श्लोक इन दोनों ग्रन्थोंमें समान है। इस समानताका विचार करनेसे व्यास और कालिदासने 'पद्मपुराण'की कथा और कल्पना लेकर अपने ग्रन्थ रचे अथवा पद्मपुराणकर्ताने 'शाकुन्तल' के कुछ प्रसंग और 'महाभारत' से कुछ भाषण लेकर और कुछ अपनी कल्पनासे मिलाकर अपनी कहानीको सजाया, ये दो पक्ष सम्भव हो सकते ह। इसमें दूसरा पक्ष हमें अधिक सम्भवनीय मालूम पड़ता है। 'हरिवंश' में और 'भागवत' आदि दूसरे पुराणोंमें 'महाभारत' की कथाके सदृश शकुन्तलाकी कथा दी गई है। 'पद्मपुराण' की कथा पुरानी होती तो वह भी उन पुराणोंमें आई होती। पुराणकी कहानीमें वहुधा शारद्वत, शार्ङ्गरव, गौतमी, प्रियवंदा सदृश जो विशेष आवश्यक नहीं हैं ऐसे पात्रोंका निर्देश नहीं मिलता है। 'पद्मपुराण'में भी शार्ङ्गरव और शारद्वत इन दोनों मुनिशिष्योंके नाम हैं तो भी उनका कोई स्वतंत्र भाषण न होनेसे यह नामनिर्देश आवश्यक अङ्ग नहीं है। 'पद्मपुराण'के शकुन्तलोपाख्यानमें ये पात्र

मिलते हैं, इसका कारण लेखकने यह कथानक कालिदासके 'शाकुन्तल' नाटकसे संक्षेपरूपमें लिया है यही सम्भव मालूम पड़ता है। 'मत्स्यपुराण'में भी कालिदासके 'विक्रमोर्वशीय' के कुछ प्रसंगोंका उल्लेख आया है, यह हम पहले बतला चुके हैं। इसी तरह पद्मपुराणकारने 'शाकुन्तल' के प्रसंग और 'महाभारत'के ओजस्वी भाषण लेकर अपने शकुन्तलोपाख्यानकी कथरी बनाई है, ऐसा विदित होता है।

'शाकुन्तल' का संविधानक 'मालविकाग्निमित्र' के संविधानककी तरह उलझा हुआ नहीं है, तो भी उसके प्रसंगोंका मेल इतनी कुशलतासे मिलाया गया है कि प्रेक्षकोंका औत्सुक्य अन्त तक बना रहता है। उसमें विविध घटनाएँ एकके बाद एक बिलकुल स्वाभाविकतासे उत्पन्न हुई दीखती हैं। वे सब मुख्य साध्य घटनासे न्यूनाधिक प्रमाणमें संबद्ध हैं। एक दो स्थलोंमें आकाशवाणीके सदृश अद्‌भुत बातोंका कथानकको प्रगतिके लिए कविने उपयोग किया है, तो भी उस समयके लोगोंको वे असम्भवनीय नहीं लगती थीं, इसका हमें ध्यान रखना चाहिए। इस नाटकका प्रत्येक प्रवेश किंबहुना उसका प्रत्येक प्रसंग सहेतुक ही है। उदाहरणार्थ पाँचवें अंकमें हंसपदिकाका गीत लीजिए। उसके कारण शकुन्तलाकी आगामी अस्वीकृतिकी सूचना प्रेक्षकोंको मिलती है। राजाको पिछला वृत्तांत स्पष्ट रूपसे याद नहीं आता, तो भी उसके मनमें धुकधुकी लगी रहती है। गीत सुननेपर वह अपना सन्देश सुनानेके लिए विदूषकको हंसपदिकाके पास भेजता है। उसके जानेपर शकुन्तलाका वृत्तांत जाननेवाला, राजाके विश्वासी जनोंमेंसे, कोई भी पास नहीं था। इसलिए पाँचवें अंकके शकुन्तलाके अस्वीकारका प्रसंग अस्वाभाविक नहीं लगता। इन सब कारणोंसे उस प्रसंगकी योजना कविने पाँचवें अंकके आरम्भमें की है। अन्तके अंकमें दुष्यन्तको सर्वदमनका परिचय धीरे धीरे परन्तु क्रमशः बलवत्तर कारणोंसे होता है। वह प्रसंग भी उत्तम रचा गया है।

'शाकुन्तल' नाटककी भाषा अत्यन्त प्रसादयुक्त और रमणीय है। उसमें उपमा, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति, अर्थान्तरन्यास आदि, अनेक अलंकार आए हैं। उनमें कहीं भी क्लिष्टता, कल्पनाकी खींचातानी, दूरान्वय वगैरह दोष नहीं दीखते। प्रत्येक पात्रके मुखसे अनुरूप भाषा और जैसे उसको सूझ सकते हों वैसे अलंकार रखनेमें कविने विशेष सावधानी रक्खी है। शकुन्तला और उसकी सखी सदैव लतावृक्षादिकोंके सहवासमें खेलने और रहनेवाली हैं अतः उनके भाषणमें 'क इदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लवितां सहते' (आम्रके सिवा

और कौन पल्लवित अतिमुक्तलताके योग्य है?), 'को नामोष्णोदकेन नवमल्लिकां सिञ्चति' (कौन गरम जलसे नवमल्लिकाको सींचेगा?), इस तरहके लतावृक्षोंसे सम्बन्ध सूक्तियाँ लिखी हैं। कण्व ऋषि सदैव यज्ञ यागमें और अध्यापन कर्ममें निमग्न रहते हैं। अतः उनको यदि 'दिष्टचा धूमाकुलितदृष्टेरपि यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता' (धूमसे व्याकुल दृष्टिवाले यजमानकी आहुति भाग्यसे अग्निमें ही गिरी), 'वत्से सुशिष्यपरिदत्तेव विद्याऽशोचनीयासि संवृत्ता' (हे वत्से, अच्छे शिष्य को दी गई विद्याके समान तुम्हारे विषयमें हमें शोक नहीं है।), ऐसे दृष्टांत और उपमाओंका प्रयोग हुआ तो इसमें कौनसा आश्चर्य! सदैव खाद्य-लोलुप और विनोदी विदूषकके स्वभावका प्रतिबिंब इस उपमामें पड़ा है। 'यथा कस्यापि पिण्डखर्जूरैर्द्वेजितस्य तिन्तिण्यामभिलाषो भवेत् तथा स्त्रीरत्नपरिभोगिणो भवत इयमभ्यर्थना' (जैसे पिंडखजूरसे उकता जानेपर किसीको इमली खानेकी इच्छा होती है, उसी तरह स्त्रीरत्नोंका भोग करनेवाले आपकी यह अभिलाषा है)। नाटकके भाषण छोटे छोटे और चटकीले होनेसे उनको बाँचते हुए या सुनते हुए वाचक और प्रेक्षक दोनोंका चित्त प्रसन्न हो जाता है। इन प्रसंगोंको देखते हुए प्रेक्षकोंको प्रतीत होता है कि हम नाटक न देखकर गुजरे हुए प्रसंगका साक्षात्कार कर रहे हैं। इसीमें कालिदासकी कलाका उत्कर्ष है।

'शाकुन्तल' में संभोग और विप्रलंभ दोनों तरहका शृंगार, करुण और शान्त ये प्रधान रस हैं। पहले तीन अंकोंमें शृंगारका साम्राज्य है। तथापि प्रसंगसे और भी अनेक रसोंका उनमें आविर्भाव दीखता है। पहले अंकके आरम्भमें दुष्यन्तके सामने अपना जीवन बचानेके लिए भागते हुए मृगके और उसी अंकके अन्तमें हाथी द्वारा किए गये विध्वंसके वर्णन में भयानक, दूसरे अंकमें विदूषकके विनोदी भाषणमें हास्य, तीसरे अंकके अन्तमें राक्षसोंके विघ्नके वर्णनमें भयानक, इस तरह अन्य रसोंका शृंगारसे मिश्रण हुआ है। चौथे अंकमें आकाश-वाणी और वनदेवता द्वारा दिए हुए वस्त्रालंकारके वर्णनमें अद्भुत रसकी छटा दीख पड़ती है। परंतु उस अंकका मुख्य रस करुण ही है। एक सुभाषितकारने कहा है कि इस अंककी बराबरीका सम्पूर्ण संस्कृत वाङमयमें एक भी स्थल नहीं है। यह मत सर्वसम्मत भी है। पाँचवें अंकमें दुष्यन्त और शकुन्तलाके वाक्कलहका प्रसंग भी मनोरम हुआ है। राजाके छोड़नेसे संतप्त हुई शकुन्तलाके भाषण में रौद्र और आगे उसकी असहाय स्थिति देखकर करुण और अन्तमें अप्सरातीर्थके पास उसके अदृश्य हो जानेमें अद्भुत, ऐसे अनेक रसोंका प्रेक्षकोंको अनुभव होता है। छठेमें करुण और शृंगारका परिपोष अच्छा हुआ

है। 'विक्रमोर्वशीय' में पूरे अंकमें एक ही पात्रको शोक करते हुए बैठे देखकर प्रेक्षक ऊब जाते है और उस रसका भी उत्तम रीतिसे उत्थान नहीं होता, इसका अनुभव होनेसे इस अंकमें राजाके करुण शृंगारको विदूषकके हास्य रसमें जोड़ दिया गया है। आखिरके अंकमें सर्वदमन और दुष्यन्तकी भेंटके प्रसंगमें अद्भुत और वत्सल, और अन्त में मारीच ऋषिके सान्निध्यमें शान्त आदि रसोंका आविर्भाव होता है। नाटकके अन्तमें प्रेक्षकोंकी चित्तवृत्ति अनेक रसोंका अनुभव करनेपर शांत रसमें मग्न हो जाती है।

आकर्षक संविधानक, मधुर भाषा, उत्कृष्ट वर्णनशैली, उत्कट रस-परिपोष, इत्यादि गुण 'शाकुन्तल' में हैं। परन्तु इन सबकी अपेक्षा उसमें अत्यन्त कुशलतासे खींचे गये स्वभाव-चित्रोंसे रसिकोंका चित्त आकृष्ट होता है। इसमें दुष्यन्त, कण्व और विदूषक ये पुरुषपात्र और शकुन्तला, अनसूया और प्रियवंदा, ये स्त्री-पात्र महत्त्वके हैं। इनके अतिरिक्त कविने संविधानकके विकासके लिए दुर्वासा और मारीच ये ऋषि, गौतमी और अदिति ये ऋषिपत्नियाँ, अप्सरा सानुमती, कण्वके शिष्य, शारद्वत और शाङ्गरव, वैखानस, सेनापति, कंचुकी, राजाका साला, धीवर और सिपाही इत्यादि गौण पात्रोंकी योजना की है । इन सबमें नायक दुष्यन्त और नायिका शकुंतला इनके स्वभाव-चित्रणमें कविने अपनी शक्तिका सर्वस्व दिखाया है।

कालिदासके सब नायकोंमें दुष्यन्त श्रेष्ठ है। वह आकृतिसे भव्य, मनसे कोमल है। गंभीर आकृति और मधुर भाषणसे वह दूसरोंके मनको एकदम आकृष्ट कर लेता है। पुरूरवाके समान वह भी पराक्रमी है। यज्ञकी रक्षा करनेके लिए उसको धनुषपर बाण लगानेकी भी जरूरत नहीं पड़ती। उसकी प्रत्यंचाकी टंकारसे ही सब विघ्न दूर हो जाते हैं। अतः विदूषकके साथ सब सैनिकोंको भेज कर वह राक्षसोंके निवारणके लिए अकेला आश्रममें रहता है। राक्षसोंसे युद्ध करनेके लिए स्वयं इंद्र उसे स्वर्गमें बुलाता है और विजयके अनन्तर पुत्रको भी स्पर्धा करने योग्य अर्धासन देकर और अपनी मंदारमाला उसके गलेमें डाल कर उसका सम्मान करता है। राज्यमें उसका विलक्षण प्रभाव है। उसकी प्रजामें अत्यन्त निकृष्ट लोग भी कुमार्गगामी नहीं हैं, ऐसा शाङ्गरव कहता है। शकुन्तलाकी अँगूठी मिलने पर उसे पश्चात्ताप होता है। इसी दुखमें वह वसन्तोत्सवको बंद कर देता है। उस समय लता, वृक्ष और उनपर वास करनेवाले पक्षी भी उसकी आज्ञा मानते हैं, ऐसा कंचुकी वर्णन करता है। इसमें जरा भी अतिशयोक्तिकी मात्रा सानुमतीको नहीं दीखती। वह कहती है कि यह महा-

प्रभावशाली राजर्षि है। दुष्यन्तका पराक्रम अपने विनयसे शोभित होता है। असुरोंपर प्राप्त विजयसे उसको बिल्कुल गर्व नहीं होता। यह सब इंद्रके अनुग्रहका फल है, ऐसा वह बड़े विनयके साथ कहता है। कण्वाश्रममें प्रवेश करते समय, तपोवनमें विनीत वेषसे जाना चाहिए, यह कह कर वह अपनी बहुमूल्य पोशाक और रत्नजटित अलंकार सारथिके पास रख कर जाता है। वह पराक्रमका उपयोग दुष्टोंके शासन और आर्त जनोंकी रक्षाके लिए ही करता है। वह अत्यन्त धार्मिक, पापभीरु और प्रजापालनतत्पर है। कण्व ऋषिके शिष्य आये हैं, यह सुननेपर वह सोचता है क्या ऋषियोंकी तपश्चर्यामें कोई विघ्न हुआ है? तपोवनके प्राणियोंको किसीने पीडित तो नहीं किया? हमारे दुष्कृत्यके कारण वहाँकी लताओंमें फलपुष्पकी न्यूनता तो नहीं हुई? ऐसे नाना प्रकारके विकल्प उसके मनमें उठते हैं। मैं ऋषियोंकी रक्षा करता हूँ, इसके बदले वे अपनी तपश्चर्याका अंश देकर पूरा पूरा चुका देते हैं, ऐसा वह मानता है। वह सदैव सतर्क हो प्रजाकी रक्षा करता है। लोगोंको कुमार्गसे हटाकर उनके लड़ाई-झगड़े शान्त कर और उनकी रक्षा करके वह अपना कर्तव्य उत्तम रीतिसे पालता है। प्रजामें किसीका सम्बन्धी मरे तो दुष्कृत्यको छोड़कर और दूसरी बातोंमें मृत मनुष्यका स्थानापन्न मुझे ही मानना, ऐसा वह ढिंढोरा पिटवाता है। उसको संपत्तिका बिल्कुल लोभ नहीं। जलमार्गसे व्यापार करनेवाले के मरने पर उस समयके कानूनके अनुसार उसकी सब सम्पत्ति राजाको मिलती है, तो भी उसको स्वीकार न कर वह उसके गर्भस्थ अपत्यको दे डालता है। कालिदासके नाटकके अन्य नायकोंकी तरह दुष्यन्त भी बहुपत्नीक है। उसके अन्तःपुरमें अनेक स्त्रियाँ होनेके कारण, एकसे विशेष प्रेम और दूसरीकी उपेक्षा हो जाती है। अतः अपनी तरफ दुर्लक्ष्य करनेके कारण हंसपदिका उसे ताना मारती है, इसमें आश्चर्य नहीं है। तथापि किसी भी सुंदर स्त्रीको देखकर मोहित हो जाय; ऐसी मधुकर-वृत्ति उसमें नहीं है। नहीं तो शकुन्तला के समान अत्यन्त सुस्वरूप स्वयं आई स्त्रीको बहुत विचार न करके वह तुरन्त स्वीकार कर लेता। परस्त्रीकी तरफ गौरसे देखना अनुचित है, यह कहकर वह पहले उसकी तरफ बहुत देखता ही नहीं है। कण्वाश्रममें जाने पर उसे सुन्दर कन्यायें दीख पड़ीं और उनमें सौंदर्यकी पुतली शकुंतलाने उसके मनको आकृष्ट किया। प्रथम ही 'यह ब्राह्मण—कन्या है क्या?' ऐसा उसको संशय होता है। यदि अंतमें वैसा ही होता है तो उसने इंद्रिय-निग्रह कर अपना मन खींच लिया होता, इसमें कुछ भी संदेह नहीं। परंतु अपनी सच्छील मनःप्रवृत्तिपर विश्वास होनेके कारण यह विवाहयोग्य

क्षत्रियकन्या है ऐसा उसे मालूम होने लगता है। शकुंतला और उसकी सखियोंके भाषणसे उसके अनुमानको समर्थन मिलता है और शकुन्तलाके जन्मका वृत्तांत सुनने पर तो संदेह बिल्कुल नहीं रह जाता। दुष्यन्तको देखकर शकुन्तलामें मदन-विकार बढ़ता ही जाता है। कण्वऋषि शीघ्र ही लौटनेवाले होते तो उस समय तक वह अवश्य इन्द्रिय-निग्रह करता। परन्तु उधर शकुन्तलाकी बहुत खराब अवस्था हो गई थी। 'उस राजर्षिद्वारा यदि मेरा शीघ्र पाणिग्रहण न हुआ तो मुझे तिलोदक देनेके लिए तैयार रहो' ये शकुन्तलाके निराश उद्गार उसने सुने थे। सखियोंने भी शकुन्तलाको स्वीकार करनेके लिए उससे विनती की तब वह उस प्रस्तावको आनन्दसे मान लेता है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर कहते हैं कि—

"कण्वाश्रमरूपी स्वर्गमें छिपकर पापने प्रवेश किया, उसके साथ कीटदष्ट (कीड़ोंके खाए हुए) फूलके समान वहाँका दिव्य सौन्दर्य विशीर्ण और नष्ट हो गया। इसके अनन्तर लज्जा, संशय, दुःख, वियोग और पश्चात्ताप आए। अन्तमें विशुद्धतर और उन्नततर स्वर्गलोकमें क्षमा, प्रीति, और शान्ति दीखने लगी। 'शाकुन्तल' को 'Paradise Lost' के अनुसार 'Paradise Regained' भी कह सकते है।" इसमें दुष्यंतको स्वर्गमें छिपकर जानेवाले पाप और कुसुमका नाश करनेवाले कीड़ेकी दो उपमाएँ दी हैं। ये उपमाएँ कालिदासके दुष्यंतकी अपेक्षा महाभारतके दुष्यंतपर अधिक लागू होती है। दुर्वासाके शापसे दुष्यंतकी स्मृति नष्ट हो गई थी, इसलिए उसने शकुन्तलाका त्याग किया, यह दिखलाकर कालिदासने अपने नायकको इस विषयमें दोषमुक्त कर दिया है। सातवें अंकमें ऋषि मारीचने जब शापवृतान्त कहा तब राजा 'सुदैवसे मैं इस दोषसे विमुक्त हो गया' ऐसा कहकर समाधानकी साँस लेता है। इससे भी ऊपरका विधान कविसम्मत है, यह दीख पड़ेगा। कालिदासका दुष्यन्त अत्यन्त कोमल हृदयका है। निरपराध पत्नीका मैंने त्याग किया है, यह बात उसके मनमें धँस जाती है। पश्चात्तापसे वह इतना क्षीण हो गया था कि शकुन्तला भी पहले उसे पहचान नहीं सकी। उससे मुलाकात होनेपर महाभारतके दुष्यन्तके समान वह यह घमंडसे नहीं कहता, 'तूने मुझसे दुर्वचन कहे, तो भी मैं तुझे क्षमा करता हूँ'। इतना ही नहीं, उसके पाँवोंपर गिरकर नम्रतापूर्वक उससे माफी माँगता है। मातृभक्ति और पुत्र-प्रेम ये उसके स्वभावकी अन्य कोमल छटाएँ भी कविने यथाप्रसंग दिखाई है। सारांश, पराक्रमी, विनयशील, धार्मिक, प्रेमिल और कर्तव्यतत्पर ऐसे धीरोदत्त नायकका चित्र खींचकर कालिदासने हमारे सामने आदर्श पुरुष खड़ा किया है।

इस नाटकमें नायिकाके स्वभावका भी उत्तम प्रकारसे परिपोष हुआ है। नाटकके आरम्भमें, शकुंतला लतावृक्षोंपर अपने भाई बहनोंकी तरह प्रेम करनेवाली, शुरूसे ही उनकी चिंता करनेवाली, उनको नाम देने और बड़े होनेपर उनका विवाह कर देनेमें आनन्द माननेवाली, स्वयं युवती होनेपर प्रियसखियोंके विवाह-विषयक परिहासका विषय बननेवाली, एक मुग्धा तरुणी दीखती है और वही अन्तिम अंकमें पति-वियोगके कारण मलिन वस्त्र और एकवेणी धारण करनेवाली, व्रतोपवासादिकसे शरीर सुखानेवाली, पतिव्रता, पुत्रवत्सल प्रौढ़ा स्त्रीके रूपमें परिणत हुई दीखती है। जैसे प्रातःकाल सृष्टि-सतीके द्वारा ओसकी बूंदोंसे स्नात कोमल कलिका धीरे धीरे सुन्दर पुष्पके रूपमें विकसित होकर सूर्यके प्रखर तापसे सायंकालको सूख जाती है, वैसे ही शकुन्तलाके स्वभावमें हमारे नेत्रोंके सामने परिवर्तन होता है। इसमें कालिदासकी कलाका परम उत्कर्ष दीख पड़ता है। छोटी अवस्थामें उसके मातापिताने उसका त्याग किया तो भी कण्व और गौतमीने उसे अपने प्रेमका आश्रय देकर किसी बातमें भी कमी नहीं पड़ने दी। सुदैवसे उसको प्रियवंदा और अनसूया जैसी समवयस्का और प्रीति करनेवाली सखियाँ मिली। उनके सहवासमें उसको लेखन, वाचन, काव्य, इतिहास इत्यादि विषयोंके साथ साथ चित्रकलाके सदृश ललितकलाकी भी शिक्षा प्राप्त हुई। आश्र-मके लतावृक्षों और पशुपक्षियोंके सहवासमें बड़ी होनेके कारण उसका उनपर निस्सीम प्रेम हो जाता है। 'शकुन्तले! तुम्हारी अपेक्षा कण्व बाबाको आश्रमके वृक्ष ज्यादा प्यारे हैं, ऐसा मुझे मालूम पड़ता है। तू नवमालिकाके समान कोमल है, तो भी उन्होंने तुझे वृक्षोंमें पानी डालनेके लिए नियुक्त किया है' ऐसा जब अनसूयानें हँसीमें कहा तब वह उत्तर देती है, 'बाबाने कहा है, इसलिए मैं इन्हें पानी देती हूँ ऐसा नहीं है। मेरा स्वयं इनपर अपने सगे भाई बहनोंके समान प्रेम है।' इसी प्रेमके कारण अपने अलंकारके लिए उनके पात्र तोड़ना तक उसे बुरा लगता है। उनके प्रथम पुष्पोद्गम होते ही वह उसका उत्सव मनाती है। पतिघरमें जाते समय वनज्योत्स्ना नामक लतारूपी बहनको प्रेमका आलिंगन देना भी वह नहीं भूली। आश्रमके पशुपक्षियोंपर भी उसका उतना ही प्रेम है। 'गर्भिणी होनेसे पर्णकुटीके आसपास मन्द मन्द चरनेवाली हरिणी जब बच्चा जने, तब यह सूचना देनेके लिए किसीको मेरे पास भेजना' यह प्रार्थना वह कण्व ऋषिसे करती है। छुटपनमें अपने ही समान अनाथ हो जानेवाले हिरनके बच्चेका उसने माताके समान पालन किया था। आश्रमसे जाते समय जब वह उसका वस्त्र खींचता है तब शकुंतलाका गला भर जाता है।

ऐसी प्रेमिका शकुन्तलासे तपोवनकी चराचर सृष्टि प्रेम करती है। जाते समय उसकी प्रियसखी अनसूया और प्रियवंदाके सिवा उसके दुखकी कल्पना कौन कर सकता है। कण्व ऋषि तो उसके पिता थे। उनकी गोदमें वह छुटपनसे खेली थी। वह पूछती है 'मलय पर्वतपरसे निर्वासित चन्दनलताके समान बाबाकी गोदीसे परिभ्रष्ट होकर मैं दूसरी जगह कैसे जीती रह सकूँगी?' जानेकी देर हो रही थी। शार्ङ्गरव आगे चलनेकी सूचना देता था, तो भी 'बाबा! यह तपोवन अब मैं कब देखूँगी?' इस प्रकार वह रह रहकर अपने हृदयके भाव व्यक्त कर रही थी। 'बेटा, अनुष्ठान का समय आ गया है' कण्वके यह कहते ही तपश्चर्यासे पहले ही कृश अपने पिताको वियोगका दुःख असह्य होगा यह उसके ध्यानमें आता है। तब 'बाबा! तुम तपश्चर्यासे दुबले हो गये हो। मेरे लिए बहुत दुख न मानना' ऐसी बिनती वह कण्वसे करती है।

राजाको देखते ही शकुन्तलाके मनमें अननुभूत प्रेमविकार उत्पन्न हो जाता है। उसकी धीरगम्भीर आकृति, मधुर भाषण और असामान्य पराक्रम से उसका हृदय आकर्षित होता है। वह कामवश हो गई थी तो भी उसने स्वाभाविक लज्जासे अपना प्रेमविकार सखियोंको प्रकट नहीं किया। राजासे बोलना तो दूर रहा, वह उसके सामने खड़ी भी नहीं रह सकी। विदूषकके पूछनेपर कि शकुन्तलाने कैसा बर्ताव किया था, राजाने निम्न पंक्तियोंमें वर्णन किया है—

अभिमुखे मयि संहृतमीक्षितं हसितमन्यनिमित्तकृतोदयम्।
विनयवारितवृत्तिरतस्तया न विवृतो मदनो न च संवृतः॥

शाकुं. २,११.

'महाभारत' की शकुंतला अपनी जन्मकथाका विस्तारपूर्वक वर्णन करती है। भार्या होनेके लिए राजाके बिनती करनेपर वह अपनी शर्तें पेश करती है और उसके स्वीकृत होने पर राजी हो जाती है। राजाको देखकर वह कामवश हो गई, ऐसा नहीं दीखता। ऐसी ढीठ, व्यवहारकुशल परन्तु निष्प्रेम तरुणीको कविने अपनी प्रतिभासे लज्जाशील और प्रेमपरवश मुग्ध बालिकाके रूपमें बदल दिया है। कालिदासकी शकुन्तलाको जब मदनविकार असह्य हो गया तब उसने प्रिय सखियोंके बहुत आग्रह पर अपना अभिप्राय प्रकट किया और उन दोनों ने सम्मति दी, तो भी पिताकी आज्ञाके बिना राजासे विवाह करनेको वह राजी न हुई। 'क्षत्रियोंमें गांधर्व विवाह करना विहित है। तेरे पिता क्रोध नहीं करेंगे' ऐसा राजाने विश्वास दिलाया तब कहीं उसने उसके वचनको स्वीकार किया। अन्तिम अंकमें पहचान हो जानेपर पुत्रका हाथ पकड़कर राजा उससे कहता है, 'तेरे

साथ भगवान् मारीच ऋषिके दर्शनके लिए जानेकी मेरी इच्छा है' तब वह कहती है कि 'आपके साथ गुरुजनोंके सामने जानेमें मुझे लज्जा लगती है।' ऐसे प्रसंगोंसे उसकी विनयशीलता कविने दिखाई है। शकुन्तलाका स्वभाव अत्यन्त सरल और भोला है। पाँचवें अंकमें शापसे स्मृतिविभ्रम हो जानेवाले राजाको पहिचान करानेके जब सब उपाय समाप्त हो गए, अँगूठी भी ठीक समयपर कहीं नहीं मिली, तब 'मेरे पाले हुए दीर्घापांग नामक हिरनके बच्चेने जब आपके हाथसे पानी न पिया, और फिर वही पानी मैंने उसको दिखलाया तब वह पीने लगा, उस समय आप हँसकर बोले थे 'प्रत्येक जन्तुका अपने सजातीय-पर विश्वास होता है। तुम दोनों अरण्यवासी हो।' इस बातको कहकर वह उसको याद दिलानेका प्रयत्न करती है। इससे क्या उसको याद आ जायगी? परन्तु भोली शकुन्तलाको वह भी सम्भव मालूम होता है। ऐसी सरल-स्वभाव और प्रेमशील शकुन्तलाके सामने वज्राघातके समान अस्वीकारका प्रसंग आता है। गौतमी और शार्ङ्गरवने भी कहा और समझाया तब भी राजा न माना। इसलिए 'तू ही उसे याद दिलाना' यह शारद्वत कहता है। तब 'आर्यपुत्र !' इस संबोधनसे वह आगे कुछ कहनेवाली ही थी कि उसके ध्यानमें आ जाता है कि पति-पत्नीका संबंध राजा नहीं स्वीकार करता, इसलिए इस नामसे उसको संबोधन करना योग्य नहीं है। और तब 'पौरव' इस सादे नामसे वह उसको पुकारती है। उसको याद दिलानेके प्रयत्नमें उसे सफलता नहीं मिलती। प्रत्युत कोकिलाका दृष्टांत देकर राजा जवाब देता है, 'स्त्रियाँ स्वभावसे ही झूठी होती हैं।' उसके भाषणमें द्व्यर्थक शब्दोंका प्रयोग होनेसे राजा उसकी माताकी निन्दा करता है ऐसा शकु-न्तलाको प्रतीत होता है। इससे उसका संताप बढ़ जाता है और वह उसे 'अनार्य' शब्दसे संबोधन करके उसके ढोंगीपनके कारण उसका अनादर करती है।

सीताकी तरह शकुन्तला भी पतिव्रता है। पतिने बिना कारण उसे छोड़ दिया है तो भी वह सदैव उसका चिंतन करती है और विरहिणी स्त्रियोंको जिस रीतिसे रहना चाहिए वैसे ही अपने दिन काटती है। जब सानुमतीसे राजाके पश्चात्तापकी खबर मिलती है और अदितिके आश्वासनसे कुछ समयमें पति उसे स्वीकार कर लेगा ऐसी उसको आशा होती है तब मानों उसी आशाके सहारे वह अवलम्बित रहती है। अन्तमें राजासे मुलाकात होती है, तब वह अपने निराकरणके लिए उस पर अपना क्रोध नहीं प्रकट करती। किन्तु जब वह पश्चात्ताप करता हुआ अपनेको दोष देने लगता है, तब "मेरे किए हुए कर्मोंसे आप ऐसे दयार्द्र भी मेरे ऊपर निष्ठुर हो गए" यह कह कर उसका समाधान करती है। सारांश यह कि कविने

शकुन्तलाके रूपमें ऋजुस्वभाव, सद्गुणी और कर्तव्यनिष्ठ आदर्श हिन्दू गृहिणीका चित्र खींचा है।

नायक और नायिकाके स्वभावके शब्दचित्र खींचनेमें कालिदासने अपनी सब शक्ति खर्च कर डाली, तो भी दूसरे पात्रोंको भी उसने बड़ी कुशलतासे रँगा है। साम्य विरोधसे पारस्परिक स्वभावका उत्कर्ष हो इसलिए उसने कुछ पात्रोंकी जोड़ियाँ बना डालीं। दुर्वासा-कण्व, प्रियंवदा-अनसूया, और शाङ्गरव-शारद्वतके स्वभावोंके पृथक्करण करने पर, यह बात स्पष्ट हो जाती है। दुर्वासा बहुत मानी, क्रोधी और निष्ठुर ऋषि दीखते हैं। अपने घर लौटे गए पतिके वियोगसे शून्यहृदया शकुन्तला उसीके चिंतनमें मग्न हो रही है ऐसा दिव्य दृष्टिसे उनको दीखता है, तथापि इसने मेरा अपमान किया है, यह समझ कर वे उसको पति-वियोगका दारुण शाप देते हैं। कितना छोटा अपराध और कितना भारी दंड!

दुर्वासाकी तरह कण्व भी तपोनिष्ठ, महाप्रभावशाली और अन्तर्ज्ञानी हैं। परन्तु और दूसरी बातोंमें कण्व और दुर्वासामें अत्यन्त वैषम्य है। दुर्वासा क्रोधी हैं तो कण्व शान्त। वे निष्ठुर हैं तो ये अत्यन्त कोमल-हृदय और प्रेमशील। शकुन्तला अकस्मात् वनमें मिली हुई लड़की है, तथापि उन्होंने उसका पालन अपनी ही लडकीकी तरह किया है और विविध प्रकारसे उसको शिक्षित भी किया है। 'शकुन्तला मानो हमारे कुलपतिका प्राण है' ('सा कुलपतेरुच्छ्वसितमिव।') यह उनका शिष्य कहता है और वह मिथ्या नहीं है। उसके दैवकी शान्ति करनेके लिए वे बहुत दूरका प्रवास करते हैं। अपनी अनुपस्थितिमें उसने विवाह किया, इससे वे नाराज़ नहीं होते, प्रत्युत दुष्यन्त सदृश गुणी मनुष्य अपनी नज़रके सामने होते हुए भी उसको शकुन्तला देना मुझे क्यों नहीं सूझा, इस पर उन्हें आश्चर्य सा होता है। सुदैवसे उसने योग्य पति चुन लिया इस बात पर उनको आनंद होता है। अपना यह आशय उन्होंने 'दिष्टया धूमाकुलितदृष्टेरपि यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता।' इस दृष्टान्तसे व्यक्त किया है। जब वह ससुराल जाने लगी तब उनका हृदय दुखसे भर आता है, कंठ रुद्ध हो जाता है, नेत्रोंमें आँसू भर आते हैं। इस प्रसंगमें मेरे सदृश अरण्यवासी मनुष्यकी कन्याके प्रेमसे जब ऐसी दशा हो जाती है तो संसारिक जनोंकी क्या दशा होती होगी, इन शब्दों द्वारा वे अपने आप विचार करतें हैं। वे सदैव अरण्यमें रहते हैं तो भी उनको व्यवहारका उत्तम ज्ञान है। ससुरालमें शकुन्तलाको कैसे वर्तना चाहिए इस विषयमें उनका दिया हुआ उपदेश बहुमूल्य है। 'बाबा, मेरे लिए शोक मत कीजिए' जब यह प्रार्थना शकुन्तलाने की तब वे कहते हैं, 'तेरे

प्रेमके चिह्न इधर उधर देख कर मेरा शोक कैसे शान्त होगा ?' तथापि जब वह चली गई तब 'कन्या दूसरेकी धरोहर है, आज उसे मैंने मालिकको सौंप दिया है' ऐसा विवेक करके अपने दुखको पी जाते हैं। कण्वके रूपमें कालिदासने प्रेमिल पिताका हृदयस्पर्शी चित्र खींचा है।

तीसरे ऋषि मारीच दिव्य कोटिके हैं। उनके आश्रममें सब स्वर्गीय सुख-साधन हैं। परन्तु उनमें आसक्त न होकर वहाँके ऋषि तपश्चर्या करते रहते हैं। उधर जाते ही "यह स्वर्गकी अपेक्षा अधिक आनन्दका स्थान है" ऐसा दुष्यन्त कहता है। मारीच ऋषि इन्द्रादि देवताओंके पिता हैं। भगवान् विष्णु वामनावतारमें उनके पुत्र हुए थे। वे स्वयं आप्तकाम होकर भी सदैव लोकहितके लिए तपश्चर्यामें मग्न रहते हैं। इनके आश्रममें शकुन्तलाको आश्रय मिला। इनके पतिव्रताधर्मके विवरणसे शकुन्तलाको मानसिक शान्ति मिली। जब उसको बच्चा हुआ तब उन्होंने लड़केके जातकर्मादि संस्कार किए। ऐसे ज्ञाननिष्ठ और लोक-हितैषी महात्माके आशीर्वाद द्वारा, नाटककी समाप्ति करनेमें कविने बहुत ही औचित्य दिखाया है।

प्रियवंदा और अनसूया ये दोनों शकुन्तलाकी अत्यन्त प्यारी सखी थीं। दोनों उसीकी तरह विविध कलाओंमें निपुण हैं। दोनोंका शकुन्तलापर अत्यधिक प्रेम है। तो भी उनके स्वभावमें भेद है। अनसूया गम्भीर, विवेकशील, दूरदर्शी और व्यवहारकुशल है और प्रियंवदा अपने नामके अनुसार मधुरभाषिणी, सदैव आनंदित रहनेवाली और विनोदशील है। राजाके स्वागत करने, शकुन्तलाका जन्मवृत्तान्त कहने और अन्तमें शकुन्तलाके साथ अच्छी तरह व्यवहार करनेके लिए दुष्यन्तसे विनती करनेमें अनसूया ही प्रमुख बनती है। उसका गम्भीर स्वभाव देखकर कण्व उसीसे बातचीत करते हैं। प्रियंवदाका स्वभाव इससे उलटा है। वह सदा शकुन्तलाकी हँसी उडाती रहती है। "प्रियंवदाने मेरा वल्कल खूब कसकर बाँध दिया है, इसको ज़रा ढीला करो।" जब शकुन्तलाने अनसूयासे यह कहा तब वह कहती है 'स्तन विशाल करनेवाले अपने यौवनको दोष दो। मुझे क्यों देती हो।?" शकुन्तला बकुल वृक्षके पास खड़ी है, यह देखकर प्रियंवदा उससे कहती है 'शकुन्तले ! थोड़ी देर वहीं ठहर। तुझको केसर वृक्षके पास खड़ी देखकर उसका लतासे संयोग हुआ है, ऐसा मालूम पड़ता है।' शकुन्तलाको भी उसका भाषण अच्छा लगता है, और वह कहती है, 'इसीलिए तुझको प्रियंवदा कहते हैं'। दुर्वासासदृश निष्ठुर ऋषि शाप देकर जब जल्दी जल्दी जाने लगे तब प्रियंवदा आगे जाकर अपने मधुर भाषणसे उनके मनमें शकुन्तलाके

विषयमें कुछ दया उत्पन्न करती है। शकुन्तला जब ससुराल जाने लगी तब दोनोंको बहुत दुःख होता है। तथापि हम लोग अपना दुख किसी न किसी तरहसे भूल जायेंगे परन्तु उस बेचारीको सुख होवे, इस विचारसे वे उसके भूषणादिकी तैयारी करती हैं। जाते समय शकुन्तला अपनी लाडली वनज्योत्स्ना नामक लताको धरोहरके रूपमें सोंपती है, तब 'हमको किसे सोंपोगी ?' यह कहकर वे रोने लगती हैं। शकुन्तलाके जानेपर उनको तपोवन सूनासा लगता है। ऐसी भोली, निर्दोष, प्रेमिल सखियोंकी जोड़ी सम्पूर्ण संस्कृत साहित्यमें कहीं नहीं मिल सकती।

'शाकुन्तल' का माढव्य नामक विदूषक केवल बकवादी है। 'विक्रमोर्वशीय' का माणवक भोलेपनसे राजाके रहस्यका उद्‌घाटन कर देता है, पर यह माढव्य राजाकी कही हुई बातको सच्चा समझ अपने मुखमें ताला डाल देता है। एक बोलकर बिगाड़ देता है, तो दूसरा चुप रहकर; बाकी और बातोंमें, खब्बूपनमें और विनोदी भाषणमें—दोनों समान हैं। शार्ङ्गरव और शारद्वत इन दोनों ऋषिकुमारोंके भी स्वभावमें भेद है। शार्ङ्गरव शीघ्रकोपी और स्पष्टवक्ता है। शकुन्तलाके साथ भेजी हुई मण्डलीमें वही मुख्य है। वह प्रथम कण्वका संदेशा सुनाकर शकुन्तलाको स्वीकार करनेकी राजासे बिनती करता है। राजा एकदम स्वीकार नहीं करता, यह देखकर वह युक्तिवादसे उसका मन फेरनेका प्रयत्न करता है। तो भी राजा नहीं सुनता। यह देखकर उसको ऐश्वर्यमत्त कहने और उसकी चोरसे तुलना करनेमें वह कुछ भी संकोच नहीं करता। उसका और राजाका झगड़ा उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है, यह देखकर शारद्वत बीचमें पड़ता है और 'हमने गुरुका संदेशा सुना दिया है; चलो, अब लौट चलें' ऐसी सूचना देता है। वह स्वभावसे बहुत सौम्य और विवेकी दीखता है।

शकुन्तलाकी मातृस्थानीय गौतमी, सिंहके बच्चेको उसकी माताके पाससे खींचकर उसके दाँत गिननेवाला निडर सर्वदमन, स्वामीकी मर्जी देखकर चलनेवाला सेनापति, गरीब परन्तु स्वाभिमानी धीवर, सिद्ध-साधक बनकर अपराधीपर सख्ती करनेवाले परन्तु उसके पास पैसे देखते ही मद्यकी आशासे घड़ी भरमें बदल जानेवाले पुलिसके सिपाही और उनका अफसर, इन सबके चित्र भी मनोवेधक उतारे गये हैं। ऐसे मनुष्य हम नित्य ही व्यवहारमें देखते हैं। इन पात्रोंके चरित्र-चित्रणको देखकर कालिदासकी मार्मिक निरीक्षण-शक्तिपर बड़ा कौतुक होता है।

—

७–कालिदासके ग्रंथोंकी विशेषतायें

"निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ।।"

बाण—हर्षचरित.

(कविवर कालिदासकी मंजरीके समान मीठी सूक्तियोंको सुनकर किसके हृदयमें आनंदका उद्रेक नहीं होता ?)

मम्मटने अपने 'काव्यप्रकाश' में यशकी प्राप्तिको काव्यरचनाका एक मुख्य प्रयोजन वतलाया है और उसके उदाहरणमें कालिदासका खास तौरपर उल्लेख किया है। 'ध्वन्यालोक' जैसा सर्वमान्य साहित्य ग्रंथ लिखनेवाले, मार्मिक और सहृदय टीकाकार आनंदवर्धनने एक जगह पर कहा है 'अस्मिन्नतिविचित्र-कविपरम्परावाहिनि संसारे कालिदासप्रभृतयो द्वित्राः पंचषा वा महाकवय इति गण्यन्ते' (इस संसारमें अनेक कवि पैदा होते हैं, तो भी उनमेंसे कालिदासके समान दो तीन या ज्यादासे ज्यादा पाँच छः व्यक्तियोंको ही 'महाकवि' की उपाधि हम दे सकते हैं।) कवि जयदेवने कालिदासको 'कविकुलगुरु' की सर्वश्रेष्ठ पदवी अर्पण की है। एक सुभाषितकारने तो 'पुरा कवीनां गणनाप्रसंगे कनिष्ठिकाऽधिष्ठित-कालिदासा। अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव ।।" (पुरातन कालमें हाथकी उँगलियोंसे कवियोंकी गणना करनेका प्रसंग आने पर कालिदासका नाम कनिष्ठिकापर लिया जाता था, किन्तु उसकी बराबरी करनेवाले किसी कविके उस समय न होनेके कारण उसके पासकी उँगलीको अनामिका कहने लगे। अब भी वैसा ही होनेके कारण उस उँगलीका आज भी वही नाम सार्थक है।) यह कहकर कालिदासका अनन्य-सामान्य स्थान बतलाया है। अर्वाचीन पाश्चात्य पंडितोंनें भी कालिदासको 'हिन्दुस्तानका शेक्सपियर' कह कर मुक्तकंठसे प्रशंसा की है और संसारके अत्यन्त श्रेष्ठ कवियोंकी श्रेणीमें उसका स्थान निश्चित किया है। कालि-दासने प्राचीन तथा अर्वाचीन, पौरस्त्य और पाश्चात्य, विद्वानोंपर जो यह मोहनी डाली उसका क्या कारण है, इसका हमें इस प्रकरणमें विचार करना है।

उत्कृष्ट काव्य पढ़ने पर प्रत्येक सहृदय पाठकको आनन्द होता है, परन्तु क्यों और कैसे, इसका विवेचन वह नहीं कर सकता। एक कविके अनुसार 'घृतक्षीरद्राक्षामधुमधुरिमा कैरपि पदैर्विशिष्यानाख्येयो भवति रसनामात्र-

विषयः (घी, दूध, अंगूर, शहद इनका स्वाद केवल लोगोंकी जिह्वाको मालूम होता है मगर वे शब्दोंसे उसका वर्णन नहीं कर सकते)। सामान्य पढ़नेवालेको ही इस विषयमें अपनी दुर्बलता मालूम होती हो ऐसा नहीं, प्राचीन कालसे लेकर आज तक अनेक साहित्यकोविदोंने काव्य-निर्माताओंके काव्यकी छान बीन करके काव्यकी व्याख्या करनेका प्रयत्न किया है, फिर भी काव्यका कोई उत्तम लक्षण अब तक सर्वसम्मत नहीं हुआ। भारतवर्षमें भी भरतादि अनेक साहित्य-शास्त्रकारोंने काव्यकी व्याख्या की है। फिर भी उनमें मत-वैचित्र्य दिखाई देता है। ध्वन्यालोककार आनंदवर्धन ध्वनि या व्यंग्यार्थको प्रधानता देकर उसे 'काव्यकी आत्मा' मानते हैं। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ काव्यका लक्षण 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' करके रसकी ही श्रेष्ठताका वर्णन करते हैं। 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' के लेखक वामनने रीति या विशिष्ट पद-रचनाको काव्यकी आत्मा माना है। इसके विरुद्ध भामहादि आलंकारिक अलंकारोंको ही महत्त्व देते हैं। इसके अलावा कुन्तकादि इतर ग्रंथकारोंने अपने अपने मतोंका बड़े जोरके साथ समर्थन किया है। तथापि इस चर्चामें ध्वनि, रस, रीति और अलंकार ये चार मुख्य पक्ष हैं। इनमेंसे कौन सा पक्ष सयुक्तिक है, इसका यहाँ विवेचन करना अपेक्षित नहीं है। तथापि इनमेंसे किसी भी पक्षको स्वीकार करने पर यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि कालिदासके सभी ग्रन्थ काव्य-लक्षणकी कसौटीपर पूर्ण रूपसे ठीक उतरते हैं।

ध्वनि—उत्तम काव्योंमें शब्दोंसे दीखनेवाला वाच्यार्थ, और कहीं उसके अर्थकी ठीक ठीक प्रतीति न होनेसे ख्यालमें आनेवाला लक्ष्यार्थ, इन दोनोंसे भिन्न सहृदयहृदयाह्लादक ध्वनि या व्यंग्यार्थ ही विवक्षित रहता है। इसी कारण काव्यमें रमणीयता आ जाती है, इस मतका पहले आनंदवर्धनने अपने 'ध्वन्यालोक' में सविस्तर प्रतिपादन किया और उसका मम्मटादि साहित्यशास्त्रियोंने समर्थन किया। जिस काव्यमें वाच्यार्थकी अपेक्षा व्यंग्यार्थ विशेष मनोहर है वह उत्कृष्ट काव्य, जिसमें व्यंग्यार्थ वाच्यार्थसे न्यून कोटिका है वह मध्यम काव्य, और जिसमें व्यंग्यार्थ बिलकुल नहीं है या अत्यन्त अस्पष्ट या दुर्बोध है तथा अलंकारादिपर विशेष ध्यान दिया गया गया है, वह अधम काव्य है, इस तरह काव्यका श्रेणी-विभाग इन ग्रन्थकारोंने किया है। इस दृष्टिसे कालिदासके काव्य बहुत ही ऊँचे दर्जेके हैं, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। किसी भावको स्पष्ट शब्दोंमें कहनेकी अपेक्षा उसे खूबीसे सूचित करनेमें कालिदासका नैपुण्य है। उदाहरणार्थ, ऋषि अंगिरा द्वारा गिरिराज हिमालयसे शंकरके लिए पार्वतीकी मंगनीकी प्रार्थना करनेपर पास

ही वैठी हुई पार्वतीका कालिदासने 'कुमारसंभव'में जो वर्णन किया है उसे देखिए –

एवंवादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी।
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती ॥

कुमार. ६,८४.

'इस तरह जब देवर्षि बोल रहे थे तब पिताके पास सिर नीचा किये बैठी हुई पार्वती (हाथोंमें लिए हुए) लीला–कमलोंके पत्र गिनने लगी।' इस श्लोकमें एक भी अलंकार नहीं है, तथापि कमलपत्रकी गिनतीके वर्णनसे पार्वतीकी लज्जा, उसके मनका प्रेम, और आनन्द छिपानेका उसका प्रयत्न अति सुन्दर रीतिसे सूचित किया गया है। इस श्लोकको उत्कृष्ट काव्यके उदाहरणके तौरपर साहित्यकारोंने उद्धृत किया है। दूसरा उदाहरण 'मेघदूत' के गंगावर्णन में देखिए—

तस्माद्गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णां
जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपंक्तिम्।
गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः
शम्भोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता ॥ मेघ. ५२.

'फिर तुम कनखलके पास हिमालयसे नीचे गिरती हुई और सगरपुत्रोंके स्वर्गारोहण करनेके लिए सीढ़ी स्वरूप, जह्नुकन्या गंगाकी ओर जाना, जिसने पार्वतीकी त्यौरी चढ़ी देख मानों फेनरूपी हास्य करके, लालटस्थित चन्द्र तक अपने तरंगरूपी हाथ ऊँचे उठाकर श्रीशंकरके बालोंका जूड़ा पकड़ लिया है।' इस श्लोकमें रूपक, उत्प्रेक्षा, समासोक्ति आदि अलंकारोंकी भरमार है। तथापि सगरपुत्रोंकी स्वर्गप्राप्तिका साधन होनेसे गंगाकी पवित्रता और पार्वतीके सपत्नीमात्सर्यकी परवाह न करके श्रीशंकरजीने उसे अपने सिरपर स्थान दिया है, अतएव गंगाका महत्त्व भी सूचित होनेसे उसमें रमणीयता आ गई है। कालिदास का प्रत्येक पद और लिंग, विभक्ति, वचन इत्यादि उसके अवयव भी किस तरह रमणीयार्थव्यंजक होते हैं, यह आनंदवर्धन, मम्मट इत्यादिकोंने अनेक उदाहरणोंसे दिखाया है। विस्तारभयसे वे उदाहरण यहाँ नहीं दिए जा सकते।

कालिदासके और भवभूति, बाण आदि अन्य कवियोंके ग्रन्थोंके सूक्ष्मावलोकनसे एक बड़ा भारी अन्तर पाठकोंके ध्यानमें आता है। यहाँ उसका उल्लेख करना आवश्यक है। किसी रम्य कल्पनाके मनमें आते ही अन्य कवि उसका लंबा

चौड़ा वर्णन करते हैं। पर कालिदास गिने–चुने शब्दोंसे उसका रेखाचित्र खींचकर उसमें रंग भरनेका काम पाठकोंकी सहृदयतापर छोड़ देते हैं। अतएव कालिदासके काव्य 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति' वाली रमणीयत्वकी कसौटीपर पूर्ण रूपसे खरे उतरते हैं और उन्हें पढ़ते समय मन कभी नहीं ऊबता। उदाहरणार्थ, मदनदाहके वाद वसन्तको देखकर रतिका दुःख दुगुना हुआ, इस भावको व्यक्त करनेके लिए कालिदासने 'स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते' इस पंक्तिमें 'विवृत-द्वारमिव' इस छोटीसी उत्प्रेक्षामें घर्घर ध्वनिके साथ बहते हुए पानीके समान दुःखका अनिवार्य प्रवाह सूचित किया है। किंतु ऐसे ही एक प्रसंगमें भवभूतिने एक समूचा श्लोक लिखकर उसको विविध अलंकारोंसे सजाया है—

सन्तानवाहीन्यपि मानुषाणां दुःखानि सद्बन्धुवियोगजानि।
दृष्टे जने प्रेयसि दुःसहानि स्रोतःसहस्रैरिव संप्लवन्ते ॥

उत्तरराम. ४,८.

'मालविकाग्निमित्र' का संविधानक देते समय कविने इरावतीके अनावश्यक नृत्य प्रसंगको किस खूबीसे टाला है, इसका विवेचन पहले किया जा चुका है। इस प्रकारके प्रसंगोंसे कविका संयम और कलाभिज्ञता बहुत उत्कृष्ट प्रतीत होती है।

२ **रस**—विषय–भेदसे ध्वनिके वस्तुध्वनि, अलंकारध्वनि और रसध्वनि, ये तीन भेद अलंकारशास्त्रियोंने माने हैं। उनमेंसे रसध्वनि सबसे श्रेष्ठ है। आनंद-वर्धनने कहा है कि व्यंग्यव्यंजकभाव अनेक प्रकारमें संभव है, तो भी काव्य, नाटक आदि प्रवन्धोंमें रसको ही प्राधान्य देकर तदनुगुण अलंकारोंकी योजना करनी चाहिए। अतएव रस–पक्षको महत्त्व देकर विश्वनाथने अपने 'साहित्यदर्पण' में रसको ही काव्यकी आत्मा प्रतिपादित किया है। साहित्यशास्त्रमें शृंगार, वीर, करुण, हास्य, रौद्र, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शांत ये नौ रस माने गये हैं। इनमेंसे संभोग और विप्रलंभ—दो प्रकारके शृंगार और करुण इन रसोंका कालि-दासके काव्यमें उत्तम रीतिसे निर्वाह हुआ है। खासकर शृंगार रसमें कालिदासका नैपुण्य देखकर जयदेवने उन्हें 'कविताकामिनीका विलास' संज्ञा दी है। किसी एक सुभाषितकारने तो शृंगार रसमें और ललित पदयोजनामें कालिदाससे बढ़कर कवि अव तक हुआ ही नहीं, यहाँ तक कह डाला है। कालिदासके तीनों नाटक तथा 'कुमारसंभव' और 'मेघदूत' काव्य शृंगारप्रधान होनेके कारण उनमें इतर रसोंके विशेष समावेश होनेकी गुंजाइश नहीं है। तथापि प्रसंगवशात्, हास्य, करुण, भयानक

इत्यादि अन्य रसोंकी छटा भी उनमें देख पड़ती है। 'रघुवंश' में अवश्य ही श्रृंगार के सदृश अन्य प्रमुख रसोंका निर्वाह उत्तम रीतिसे हुआ है, यह हम पहले दिखा चुके हैं।

किसी रसका पूर्ण परिपाक होनेके लिए विभावानुभावादि अंगोंका सम्यक् वर्णन करना आवश्यक है। अतएव रसोंका उदाहरण मूल ग्रन्थोंमें ही पढ़ना चाहिए। तथापि इस संबंधमें भी कालिदासका कौशल दिखानेके लिए एक दो उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं —

नूनं तस्याः प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं वहूनां
निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम्।
हस्तन्यस्तं मुखमसकलव्यक्ति लम्वालकत्वा–
दिन्दोर्दैन्यं त्वदुपसरणक्लिष्टकान्तेर्विभर्ति॥

मेघ. ८५.

इस श्लोकमें यक्षने अपनी कल्पनासे अपनी विरहिणी पत्नीका सुंदर वर्णन किया है। रात–दिन अश्रु वहानेसे सूजी हुई उसकी आँखें, उष्ण निःश्वासोंके कारण विवर्ण अधरोष्ठ, हथेलीपर रक्खे हुए और लम्वे बालोंसे ढँक जानेके कारण आधे दीख पड़ते हुए उसके मुखके वर्णनसे यक्षपत्नीका विरह–दुःख और विषाद, चिंता इत्यादि मनोविकार उत्कृष्ट रीतिसे व्यक्त हुए हैं। अंतिम पंक्तिके निदर्शनासे उसके मुखकी निस्तेजता सूचित की है। सब वर्णन पढ़कर पाठकोंके हृदयमें विप्रलब्धा यक्षपत्नीके प्रति सहानुभूति हुए बिना नहीं रहती।

हरस्तु किञ्चित्परिलुप्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः।
उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि॥

कुमार. ३,६७.

(चन्द्रोदयको देख कर समुद्रकी तरह शिवजीका चित्त किञ्चित् क्षुब्ध हुआ और बिंबफलसमान अधरोष्ठयुक्त पार्वतीके मुखपर शंकरके नेत्र लोटने लगे।)

इस श्लोकमें शंकरके मनमें एकाएक पैदा होनेवाले रति–भावका उत्तम वर्णन है।

३ **रीति**—ई. स. की आठवीं शताब्दीके वामनने अपने 'काव्यालंकारसूत्र-वृत्ति' नामक ग्रन्थमें 'रीति' को ही काव्यकी आत्मा माना है। किन्तु ध्वन्यालोक-कारका 'ध्वनिवाद' रसिकोंको अधिक पसंद होनेके कारण वामनका 'रीतिवाद' पीछे

पड़ गया। फिर भी काव्यमें रीतिका महत्त्व कम नहीं हुआ। विशिष्ट पदरचनाको रीति संज्ञा दी गई है। वामनने वैदर्भी, गौडी, और पांचाली आदि तीन रीतियाँ मानी हैं। उनमेंसे सबसे श्रेष्ठ रीति वैदर्भी है। क्योंकि उसमें सब गुणोंका सहवास रहता है। वामनने श्लेषादि दस गुण माने थे, किन्तु उत्तरकालीन मम्मटादि आलंकारिकोंने उनकी छान बीन करके माधुर्य, ओजस्, और प्रसाद इन तीन ही गुणोंको प्रधानता दी है।

कालिदासने अपने सभी ग्रन्थ सर्वोत्कृष्ट वैदर्भी रीतिमें लिखे हैं। वैदर्भी रीतिकी विशेषता माधुर्यव्यंजक कोमल वर्णोंका उपयोग और दीर्घ समासोंका अभाव है। एक तो संस्कृत भाषा स्वयं श्रुतिमनोहर है और फिर कालिदासने अपने सब ग्रन्थोंमें टवर्गीय परुषवर्ण, संयुक्ताक्षर और बड़े बड़े समास जान बूझकर छोड़ दिए हैं। अतएव उनके ग्रन्थ एक विद्वान्के कथनानुसार शहदके समान मीठे हैं। कालिदासके ग्रन्थोंमें श्रृंगार और करुण इन दो रसोंकी प्रमुखता होनेसे उनके अनुरूप ही भाषा–शैली भी है। क्योंकि श्रृंगार विशेषतः विप्रलम्भश्रृंगार और करुणमें पाठकोंका मन अत्यन्त पिघल जाता है। अतः उन रसोंके वर्णनमें कोमल वर्णयुक्त रचना बहुत ही उचित होती है। नादमधुर शब्दयोजनाकी ओर टेनिसनकी तरह कालिदासने बहुत ध्यान दिया है। उन्होंने अपने काव्योंमें बार बार जाँच कर अनेक कल्पनायें और शब्द बदले होंगे। हमारा विचार है कि 'रघुवंश' के ग्यारहवें सर्गके ४७ और ४८ ये दो समानार्थक श्लोक यदि कालिदासके माने जायँ, तो उनमेंसे एकके रचनेके बाद उसकी कल्पना नापसंद होनेपर उन्होंने दूसरा श्लोक रचा होगा। इतने परिश्रमसे रचे हुए काव्योंमें क्लिष्टता और कृत्रिमता कहीं नहीं आने पाई। वे नवोन्मीलित पुष्पोंके समान ताजे और रससे भरे हुए देख पड़ते हैं। इसीमें कविवरकी कलाका परमोत्कर्ष है। ललितपदयोजनापर कालिदासका विशेष आग्रह था, इसीसे संस्कृतानभिज्ञ पाठकोंका मन उनकी श्रुतिमनोहरतापर ही आकृष्ट हो जाता है। इसी तरह कालिदासके ग्रन्थोंमें समासोंका यथोचित उपयोग होनेके कारण उनकी रचनामें सर्वत्र सरलता, सुबोधता और प्रसाद ये गुण दृष्टिगोचर होते हैं। बड़े बड़े समासोंके रखनेसे रचना कितनी क्लिष्ट हो जाती है और उसमें कृत्रिमता आ जाती है, यह बाणके 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' से स्पष्ट है। उनके दीर्घ समासोंका अर्थ लगाते समय पाठकोंको इतनी तकलीफ होती है कि उनकी सुन्दर कल्पनाओंकी ओरसे उनका ध्यान सहज ही हट जाता है। दीर्घसमासयोजना नाटकोंमें तो और भी हानिकारक है। उदाहरणार्थ, भवभूतिका 'मालती–माधव,' नाटक लीजिए। उसमें स्त्री–पात्रोंके मूँहसे भी समा-

सप्रचुर क्लिष्ट भाषा निकलनेके कारण रसिकोंका मन ऊब जाता है। इसके विरुद्ध कालिदासके नाटकोंमें सम्भाषण अतिसरल भाषामें हैं और इसलिए वे स्वाभाविक और सहजसुन्दर हुए हैं।

४ **अलंकार**—उत्कृष्ट काव्यमें प्रायः ध्वनि या रस प्रतीत होनेपर भी सर्वत्र उसीकी अपेक्षा करना इष्ट नहीं होता। काव्यका आनन्दप्राप्तिरूप प्रधान उद्देश्य भावनाके उद्रेककी तरह कल्पनासे भी सिद्ध हो सकता है। अतएव भामहादि आलंकारिकोंने कल्पनाके विलासको—अलंकारोंको—काव्यनिर्माणमें मुख्य मानकर उनका विस्तारके साथ वर्गीकरण और विवेचन किया है। अलंकारोंकी समुचित योजनासे रसोत्कर्षमें सहायता मिलती है, यह ऊपर दिए हुए उदाहरणोंसे स्पष्ट देख पड़ेगा। अत एव महाकवियोंने अपने काव्योंमें उनका उपयोग अच्छी तरह किया है।

अलंकारोंके शब्दालंकार, अर्थालंकार तथा शब्दार्थालंकार, ये तीन भेद माने गये हैं। अर्थालंकारोंकी अपेक्षा शब्दालंकार विशेष कृत्रिम हैं। इसीलिए वे रसिकोंको कम प्रिय मालूम होते हैं। कलाभिज्ञ कालिदासने उनका कहीं भी अधिक उपयोग नहीं किया है। रचनाके प्रवाहमें जहाँ वे सहजस्फूर्तिसे सूझे, वहीं उनकी योजना की गई है। उदाहरणार्थ, 'भुजे भुजंगेन्द्रसमानसारे भूयः स भूमेर्धुरमाससञ्ज।' (रघु. २, ७४), 'सम्बन्धिनः सद्म समाससाद' (रघु. ७, १६), 'प्रजाः प्रजानाथ पितेव पासि' (२,४८) इत्यादि पंक्तियोंमें अनुप्रास देखने योग्य हैं। कभी कभी विवक्षित अर्थकी प्रतिध्वनि भी उसमें दिखाई देती है। उदाहरणार्थ 'मायूरी मदयति मार्जना मनांसि' इसमें मकारानुवृत्तिसे मृदंगके तालका सुन्दर अनुकरण दिखाई देता है।

यमक—इस अलंकारके लिए कविको बड़े प्रयत्नसे विशिष्ट शब्द खोज खोजकर योजना करनी पड़ती है। अतएव रचनामें कृत्रिमता आ जाती है और रस-भंग हो जाता है। इसलिए शृंगार रसके, विशेषतः विप्रलम्भ श्रृंगारके, वर्णनमें, यमकोंका उपयोग न करना चाहिए, यह ध्वनिकारने नियम बनाया है। कालिदासने भी अपने शृंगाररसप्रधान ग्रन्थोंमें कहीं भी यमकोंका विशेष उपयोग नहीं किया। पात्रोंके सम्भाषणमें तो उन्हें सतर्कतासे टाल ही दिया है। अन्यत्र भी जहाँ उपयोग दोषावह नहीं होगा वहीं उन्होंने उसका क्वचित् उपयोग किया है। उदाहरणार्थ, 'वधाय वध्यस्य शरं शरण्यः' (रघु. २, ३०), 'मनुष्यवाचा मनुवंशकेतुम्' (रघु. २, २३), इत्यादिमें देखिए। नवम सर्गके पहले ५४ श्लोकोंमें दशरथकी राज्यव्यवस्था, वसन्त ऋतु, मृगया, इत्यादिका वर्णन करते समय उन्होंने चतुर्थ पादके आरम्भमें 'यमवतामवतां च धुरि स्थितः' (रघु. ९,१),

'सनगरं नगरन्ध्रकरौजसः' (रघु. ९, २) इत्यादिमें यमककी योजना की है। किन्तु इसमें शृंगारादि रसोंका सम्बन्ध न आनेके कारण रसहानिका दोष नहीं आ सकता। इतना ही नहीं, कविद्वारा योजित यमकोंके नादमाधुर्यसे पाठकोंका मन आनन्दित हो उठता है और कविके भाषाप्रभुत्वको देखकर आश्चर्य होता है।

श्लेष—द्व्यर्थक शब्दोंकी योजनासे इस अलंकारकी उत्पत्ति होती है, इस कारण उसका स्वाद लेनेके लिए रसिकताकी अपेक्षा विद्वत्ता ही विशेष आवश्यक होती है। इसका उद्देश्य, हृदयका नहीं, बुद्धिका आनंद है। कालिदासके उत्तरकालीन वाङ्मयमें भी रसिकताकी अपेक्षा विद्वत्ताको ही विशेष मान मिलता था। उस कालमें कवियोंने इस अलंकारका बहुत उपयोग किया है। अतएव उनके काव्य क्लिष्ट और दुर्बोध हो गये हैं। कालिदासने बहुत कम स्थानोंमें—जहाँ उसके कारण विशेष रम्यता आती हो या सारे वर्णनमें वह आवश्यक हो, वहाँ ही—श्लेषका उपयोग किया है। 'मालविकाग्निमित्र' का संविधानक देते समय मालविकाके मुखसे राजापर उसका प्रेम व्यक्त करनेके लिए कालिदासने श्लेषका किस खूबीसे उपयोग किया है यह हम पहले दिखा आये हैं। इस समय उस नाटकके पाँचवें अंकके संवादका कुछ अंश उद्धृत करते हैं—

विदू.—भो विश्रब्धो भूत्वा त्वमिमां यौवनवतीं पश्य।

देवी—काम्?

विदू.—तपनीयाशोकस्य कुसुमशोभाम्।

विदूषकको अलंकृत और यौवन भरी हुई मालविकाकी ओर राजाका ध्यान खींचना था। मगर उसके शब्द रानीने सुन लिए अतएव उसके प्रश्नका उत्तर देते समय 'यौवनवतीम्' इस शब्दका श्लेषसे दूसरा अर्थ लेकर और अशोक वृक्षके पुष्पकी शोभासे उसका संबंध लगाकर उसने अपना छुटकारा पा लिया। इस जगह छेकापह्नुति नामक सुंदर अलंकार श्लेषसे साधा गया है।

तस्मिन् काले नयनसलिलं योषितां खण्डितानां
शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु।
प्रालेयास्रं कमलवदनात्सोऽपि हर्तुं नलिन्याः
प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः॥ मेघ. ४१.

इस श्लोकमें 'हे मेघ! प्रातःकाल अपनी कमलिनीरूपी खण्डिता प्रणयिनीके कमलमुखसे हिमरूपी अश्रु पोंछनेके लिए सूर्यके प्रवृत्त होने के समय तेरे उसका

हाथ पकड़ने पर (यानी किरणोंके रोकनेसे) वह तुझपर बहुत नाराज होगा' इस अतिरम्य कल्पनाको सजानेके लिए 'कर' शब्दका श्लेष आवश्यक समझ कर उसकी बहुत ही रमणीय योजना की गई है। कालिदासके श्लेषोंका अर्थ साधारण पाठकोंकी भी समझमें आसानीसे आ जाता है और श्लेषसे कहीं भी क्लिष्टता या रसभंग दिखाई नहीं देता। इस स्थलपर कालिदासकी एक अन्य विशेषताका उल्लेख करना उचित है। उसके काल्पनिक पात्रोंके नाम कुछ खास मतलबसे रक्खे हुए मालूम होते हैं। 'मालविकाग्निमित्र' के पाँचवें अंकमें मालविकाको कारागारसे विमुक्त कर उसको उद्यानमें भेज देनेके बाद विदूषक राजाके पास आता है। पीछेसे वे दोनों उद्यानकी ओर जाते हैं। इतनेमें मार्गमें राजाको इरावतीकी दासी चन्द्रिका दीख पड़ती है। उस समय राजा विदूषकको दीवारकी ओटमें छिप जानेके लिए कहता है। उसका विदूषक यों उत्तर देता है 'सचमुच चोरोंको ओर कामी पुरुषोंको चन्द्रिकासे बचना चाहिए।' इसमें 'चन्द्रिका' शब्दपर विदूषकने श्लेष किया है। इसी तरह बकुलावलिका, ध्रुवसिद्धि, प्रियंवदा इत्यादि पात्रोंके नाम भी अपना खास अर्थ रखते हैं, यह कालिदासने पात्रोंके संभाषणमें दिखाया है। इसी तरह अपने काव्यमें भी उमा, अपर्णा, रघु, राम इत्यादि व्यक्तियोंके नामोंकी मनोरंजक व्युत्पत्ति उन्होंने दी है।

अब हम अर्थालंकारोंपर विचार करेंगे। इनके स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति ये दो भेद हैं। स्वभावोक्तिमें कवि देखे हुए या कल्पना किये हुए पदार्थोंका अथवा व्यक्तियोंका यथार्थ, मिलता-जुलता, साथ ही अति रमणीय, चित्र खींचता है, तो वक्रोक्तिमें उन पदार्थों या व्यक्तियोंको अपनी कल्पनाशक्तिसे निर्माण किए हुए अलंकार पहिनाता है। इन दोनोंमे कालिदासका अप्रतिम नैपुण्य दिखाई देता है। उनके ग्रंथोंमें अनेक प्राणियोंके और व्यक्तियोंके चित्र बिल्कुल इने-गिने शब्दोंमें मगर ज्योंके त्यों खींचे हुए दीख पड़ते हैं। 'शाकुन्तल' में सारथिके दौड़ते हुए घोड़े और उनके आगे प्राण बचानेके लिए दौड़ता हुआ हरिण, कन्या शकुन्तलाका वियोग-प्रसंग उपस्थित होनेपर व्याकुल होते हुए कण्व, 'रघुवंश' में पिताके सामने धायका हाथ पकड़कर आनेवाला छोटा बालक रघु, इत्यादिके खींचे हुए शब्दचित्रोंसे कालिदासकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति और वर्णनकौशल दिखाई देता है। इसी तरहका और भी एक उदाहरण देखिए—

स चापकोटीनिहितैकबाहुः शिरस्त्रनिष्कर्षणभिन्नमौलिः।
ललाटबद्धश्रमवारिबिन्दुर्भीतां प्रियामेत्य वचो बभाषे॥

रघु. ७, ६६.

यह वर्णन उस समयका है जब अज अपना मार्ग रोकनेवाले शत्रुओंपर विजय पाकर भयभीत प्रिया इन्दुमतीसे वातचीत करता है। इसमें धनुषके सिरेपर शरीरका आधार देकर खड़े हुए राजा अजकी अकड़, किरीट उतार देनेसे स्वच्छन्द विखरे हुए केश और ललाटपर श्रमबिन्दुओंका सुंदर वर्णन, कविने चुने हुए शब्दोंमें, चित्रकी तरह खींच दिया है। शायद किसी चित्रकारके लिए भी यह संभव न होगा।

परन्तु स्वभावोक्तिकी अपेक्षा वक्रोक्तिमूलक उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्तादि अलंकारोंमें कविकी चंचल कल्पनाका रम्य विलास दीख पड़ता है। उसमें पृथ्वीसे लेकर आकाश तक सर्वत्र स्वैर विहार करनेवाली और सामान्य लोगोंको नीरस तथा भद्दी मालूम होनेवाली चीजोंमें भी सौन्दर्यका दर्शन करनेवाली उसकी तीव्र दृष्टि, विविध शास्त्रोंके व्यासंगसे उत्पन्न हुई बहुश्रुतता, अनेक कलाओंके प्रयोगसे प्राप्त नैपुण्य और व्यवहारमें आए अनुभवोंकी स्वच्छ परछाईं पड़ी हुई दिखाई देती है। इसीलिए हमने पहले कविके चरित्रविषयक अनुमानके लिए उन अलंकारोंका उपयोग किया है। किसी एक सुभाषितकार ने 'उपमा कालिदासस्य' कहकर उनकी उपमाओंकी अलौकिकता दिखाई है। कालिदासकृत उपमाओंकी विविधता, मार्मिकता तथा रम्यता ध्यानमें लानेसे इस विधानकी यथार्थतामें शंका नहीं रहती। परन्तु 'उपमा' शब्दका व्यापक अर्थ लेकर रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास इत्यादि अन्य सादृश्यमूलक अलंकारोंके विषयमें भी वही विधान किया जाय तो भी वह अन्वर्थ ही होगा। प्रथम कालिदासकृत उपमाओंकी विशेषता दिखाकर बादमें अन्य अलंकारोंका विचार करें—

(१) **रम्यता**—कालिदासकृत उपमाओंका सौन्दर्य प्रथम ही दृष्टिमें आ जानेवाली विशेषता है। सामान्य लोगोंके चर्मचक्षुओंको न दीख पड़नेवाला वस्तुओंका सौन्दर्य कविके मनश्चक्षुओंके आगे नहीं छिपता। उदाहरणके लिए 'मेघदूत'में से 'रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमां विन्ध्यपादे विशीर्णां, भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य।' (मेघ. १९) इसी उपमाको लीजिए। विन्ध्य पहाड़की तलहटीके चट्टानोंवाले प्रदेशमें बहनेवाली नर्मदा नदीके प्रवाहको हाथीके वदनपर खींचे हुए चित्र विचित्र रंगके वेल बूटोंकी उपमा देकर कविने उसकी रमणीयता व्यक्त की है। कालिदास की उपमायें किसी स्थानपर भी श्लेषमूलक नहीं हैं। वे सहजरम्य साम्यके ऊपर आधारित रहती हैं। इसके विपरीत, वाण, सुबन्धु, श्रीहर्ष आदिकी उपमामें श्लेषाधिष्ठित होनेके कारण अत्यन्त कृत्रिम मालूम होती हैं। उदाहरणार्थ बाणकी कादम्बरीकी उपमा लीजिए—

'सा (कादम्बरी) जानकीव पीतरक्तेभ्यो रजनिचरेभ्य इव चम्पकाशोकेभ्यो बिभेति।' इसमें राक्षस और चम्पक तथा अशोक इनमें वास्तविक साम्य न होते हुए भी दोनोंहीके लिए 'पीतरक्त' विशेषणका उपयोग किया गया है, इसलिए यह श्लेषमूलक उपमा बनी है। ऐसी उपमाओंमें कविका भाषा-नैपुण्य भले ही दीख पड़े, पर सहृदय रसिकोंको वे अच्छी नहीं लगतीं।

२ **यथार्थता**—कालिदासकृत उपमाएँ अति यथार्थ मालूम होती हैं। उनके द्वारा पाठकोंके मनमें वर्णनीय चीजोंकी यथार्थ कल्पना उत्पन्न होती है। 'शाकुन्तल' में शार्ङ्गरवादि तपस्वी जनोंके साथ आई हुई शकुन्तलाको देखकर 'मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम्' इस तरहकी अत्यन्त यथार्थ उपमा राजाने दी है। और उसके द्वारा वृद्ध ऋषियोंकी रूखी आकृतिमें शकुन्तलाका विशेष रूपसे चमकनेवाला यौवन सूचित किया है। 'मेघदूत'में (श्लो. ६) यक्षने स्त्रियोंके हृदयको कुसुमकी उपमा दी है। देशी पुष्पोंकी सुगन्ध, रमणीयता और किञ्चित् गरमीसे ही कुम्हलाकर नीचे गिर पड़नेवाली प्रवृत्ति यह सब देखनेसे स्त्रियोंके निसर्ग-मधुर, प्रेममय और अल्प विरहसे ही व्याकुल होनेवाले हृदयकी उपमा यथायोग्य मालूम होती है। इन्दुमतीकी मृत्युके बाद वसिष्ठका उपदेश मानकर और पुत्र दशरथ अल्पवयस्क था इसलिए अजने राज्यपालनमें कुछ दिन बिताए तो भी उस कालमें पत्नी-शोकसे उसका हृदय धीरे धीरे विदीर्ण हो रहा था। इस कल्पनाको व्यक्त करनेके लिए किसी विशाल महलके पास अंकुरित होनेवाले और अपनी जड़ धीरे धीरे फैलाकर कालान्तरमें महलको जड़से उखाड़ डालनेवाले प्लक्ष वृक्षके पौधेकी उपमा दी है।

३ **विविधता**—कालिदासकी उपमाओंपर सामूहिक रूपसे विचार करनेपर उनकी विविधता मनको आश्चर्यान्वित कर देती है। आगमभेदसे उनके इस तरह भेद बनाये जा सकते हैं—

(अ) **सृष्टपदार्थीय**—लता, वृक्ष, फूल, फल, पृथ्वी परके भिन्न भिन्न प्रकारके प्राणी, आकाशके ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र, धूमकेतु इत्यादि सृष्टिके सकल पदार्थोंमेंसे उन्होंने अपनी उपमाएँ ली हैं। इससे उनकी विशाल दृष्टिकी कल्पना की जा सकती है। उदाहरणार्थ, कण्व ऋषिको अचानक मिली हुई बाल्यावस्थाकी सुन्दर शकुन्तलाको अर्क वृक्षपर संयोगसे गिर पड़नेवाली नवमालिका-कुसुमकी, मदनदाहके बाद दुखसे व्याकुल होनेवाली रतिको तालाबका पानी सूख जानेसे व्याकुल होनेवाली मछलीकी, तथा त्रिभुवनको सतानेवाले तारकासुरको धूमकेतुकी दी हुई उपमाएँ देखिए।

(आ) **शास्त्रीय**—कालिदासने व्याकरण, दर्शन, राजनीति, वैद्यक इत्यादि अनेक शास्त्रोंसे अनेक सुन्दर तथा चुनी हुई उपमाएँ ली हैं। सुरोंको अपने स्थानसे जबर्दस्ती हटानेवाले शत्रुको सामान्य नियमोंमें बाधा डालनेवाले अपवादोंकी, वालिकी गद्दीपर बिठाएहुए सुग्रीवको धातुके स्थानमें आनेवाले आदेशकी, स्वबलसे शत्रुका नाश करने में समर्थ शत्रुघ्नके पीछे रामाज्ञासे चलनेवाली सेनाको अध्ययनार्थ 'इ' धातुके पीछे लगे हुए निरर्थक 'अधि' उपसर्गकी, इत्यादि व्याकरण-विषयक उपमाएँ पढ़कर संस्कृतव्याकरणाभिज्ञ पाठकोंको बड़ा आनन्द आता है। हिमालयसे उत्पन्न मेनकाकी पुत्री पार्वतीको राजनीतिमें उत्साह गुणोंसे प्राप्त होनेवाली सम्पत्तिकी उपमा अर्थशास्त्रसे, प्रबल तारकासुरके आगे निष्फल सुरोंके उपायोंको उग्र औषधिसे भी न हटनेवाली सान्निपातिक ज्वरकी उपमा वैद्यक शास्त्रसे, और ब्राह्म सरोवरसे निकलनेवाली सरयू नदीको अव्यक्तसे उद्भूत होनेवाली बुद्धि (महत्) तत्त्वकी उपमा सांख्य दर्शनसे ली है। इन उपमाओंके कारण उन प्रकरणोंका भाव अच्छी तरह व्यक्त होता है और बहुश्रुत पाठकोंको आनन्द भी प्राप्त होता है।

(इ) **आध्यात्मिक**—सृष्टिके व्यक्त पदार्थोंसे उपमान लेकर वर्ण्य विषयको सुगम करनेकी कविकी सामान्यतः प्रवृत्ति होती है। कालिदासने अपने 'ऋतुसंहार' में वही मार्ग पकड़ा है परन्तु आगे अधिक अनुभवी होनेपर अमूर्त कल्पनाओंसे या मनोव्यापारोंसे भी उन्होंने कुछ उपमाएँ ली हैं। ऋषि वशिष्ठकी धेनुके पीछे जानेवाले दिलीपको श्रद्धायुक्त विधिकी, माताको अलंकृत करनेवाले भरतको संपत्तिको शोभा देने वाले विनयकी उपमा पढ़ते ही चमत्कार उत्पन्न होता है। कालिदासके पूर्वकालीन अश्वघोषने भी इसी तरहकी कुछ उपमाएँ दी थीं, जिससे संभवतः कालिदासको ऐसी उपमाएँ सूझी होंगी।

(ई) **व्यावहारिक**—कविको कुछ उपमाएँ व्यवहार और अनुभवसे सूझी हुई मालूम होती है। 'सच्छिष्यको दी हुई विद्याके समान, शकुन्तला, तू दुष्यन्तको सौंपनेसे अशोचनीय हुई।' इस तरह कण्वके भाषणकी उपमाएँ और 'अभ्याससे विद्या प्रसन्न होती है, उसी तरह तुम सदैव सेवा करके इस धेनुको प्रसन्न करो।' इस तरह वसिष्ठके दिलीपको दिए हुए उपदेशमें कालिदासके स्वानुभवकी परछाइं दीख पड़ती है।

४ **औचित्य**—कालिदासने अपने काव्य और नाटकोंमें पात्रोंके लिए जो उपमाएँ दी हैं वे सब अपने अपने प्रसंगके योग्य ही हैं। साथ ही वे अत्यन्त स्वाभाविक भी मालूम पड़ती हैं। खब्बू विदूषकके मुखसे चन्द्रमाको टूटे हुए

मोदककी, समुद्रगृहके पास शिलाखण्डपर सोए हुए मोटे विदूषकको निपुणिका दासीके मुखसे बाजारके सांडकी, और सदैव अध्यापनरत कण्वके द्वारा शकुन्तलाको दी गई विद्याकी उपमाएँ देखने योग्य हैं। इतमें उन उन व्यक्तियोंके स्वभाव स्पष्ट दीख पड़ते हैं।

५ **पूर्णता**——कालिदासपूर्वकालीन व्यास, वाल्मीकि आदि कवियों द्वारा अंकित की हुई उपमाओंमें उपमान और उपमेयका साम्य किसी एक अंशमें दिखाई देता है। अन्य विषयोंका साम्य पाठकोंको स्वकल्पनासे मालूम करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, महाभारतान्तर्गत नलदमयन्ती आख्यानकी, नीचे उद्धृत की हुईं उपमाएँ लीजिए——'तां राजसमिर्ति पुण्यां नागैर्भोगवतीमिव। संपूर्णां पुरुषव्याघ्रैः सिंहैर्गिरिगुहामिव ॥' इसमें दमयन्ती-स्वयंवरार्थ इकट्ठी हुई राजसभाको एक ही श्लोकमें भोगवती नगरीकी और गिरि-गुफाकी——इस तरह दो उपमाएँ दी हैं। परन्तु उनमेंसे एकका भी पूर्ण विस्तार नहीं हुआ है। इसके विपरीत कालिदासने अपनी उपमाओंमें उपमान और उपमेयका सर्वांगीण साम्य दिखाया है, इस कारण अधिक चमत्कार उत्पन्न होता है। उदाहरणार्थ, इन्दुमती-स्वयंवरके समय अपने स्थानपर जाकर वैठे हुए अजका वर्णन लीजिए——

वैदर्भनिर्दिष्टमसौ कुमारः क्लृप्तेन सोपानपथेन मञ्चम्।
शिलाविभङ्गैर्मृगराजशावस्तुङ्गं नगोत्सङ्गमिवारुरोह ॥
रघु. ६,३.

इसमें अजके उच्चासनको पर्वतशिखरकी और उस आसनपर पहुँचनेके लिए बनाई हुई सीढ़ियोंकी पर्वतके पास पड़ी चट्टानोंकी उपमा देनेसे सिंहसे अजका सर्वांगीण साम्य ध्यानमें आ जाता है। उपमान और उपमेयका लिंगवचनादिमें साम्य होना चाहिए, ऐसा आलंकारिकोंने नियम बनाया है। कालिदासके पूर्वकालीन कवियोंकी उपमाएँ इस संबंधमें अत्यन्त दोषयुक्त मालूम होती हैं। कालिदासने भी अपने पहलेके रचे ग्रन्थोंमें सर्वत्र इस नियमका पालन नहीं किया। उदाहरणार्थ, 'मालविकाग्निमित्र' में 'सा तपस्विनी देव्याधिकतरं रक्ष्यमाणा नागरक्षितो निधिरिव न सुखं समासादयितव्या' इस उपमाको देखिए। इसमें धारिणीको नागकी और मालविकाको निधिकी इस तरह जो दो उपमाएँ दी हैं वे अन्य दृष्टिसे अन्वर्थ होते हुए भी उपमानोपमेयोंके लिंगसाम्यके अभावमें दोषयुक्त दीख पड़ती हैं। इसके विरुद्ध, 'शाकुन्तल' में 'कथमिदानीं तातस्याङ्कात्परिभ्रष्टा मलयतटोन्मूलिता चन्दनलतेव देशान्तरे जीवतं धारयिष्ये'

शकुन्तला के इस भाषणमें कविने जानबूझकर 'चन्दनलता' शब्दकी योजना करके लिंगसाम्य कर दिया है। लिंग-वचनभेद होनेपर भी यदि सहृदयोंको उद्वेग न होता हो तो उपमा सदोष नहीं माननी चाहिए, ऐसा 'काव्यादर्शकार'का जो वचन है, उसको प्रमाण मानकर अन्य स्थानोंमें भी कालिदासकी उपमाओंका समर्थन किया जा सकता है।

कालिदासका विशेष झुकाव उपमालंकारकी ओर होनेपर भी उन्होंने अन्य अनेक रमणीय अलंकार अपने ग्रन्थोंमें प्रयुक्त किये हैं। 'रघुवंश' के 'राममन्मथशरेण ताडिता' (११, २०) इत्यादि प्रसिद्ध श्लोकमें और 'अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहैः' (शाकु. २, १०) इत्यादि मनोहर दुष्यन्तोक्तिमें रूपक अलंकार आया है। इनमेंसे पहले स्थानमें एक ही कल्पनाका विस्तार करके सांग रूपक अलंकार बनाया है और दूसरेमें एकके बाद एक इस तरह अनेक रूपकोंकी योजना करके शकुन्तलाका सौन्दर्य, कोमलता, उन्मादकता इत्यादि गुण सूचित किये हैं। तथापि कालिदासका मन रूपककी अपेक्षा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त तथा अर्थान्तरन्यास आदि अलकारोंमें ही विशेष तल्लीन हुआ दीखता है। उनके पहलेके ग्रन्थ 'ऋतु-संहार', 'मालविकाग्निमित्र' आदिमें कविकी प्रतिभासे उत्प्रेक्षा अलंकारके चमत्कार कहीं कहीं दीख पड़ते हैं। परन्तु 'मेघदूत' में मालूम पडता है कि उत्प्रेक्षाकी कविने वर्षा ही कर दी है। उस खण्डकाव्यका विषय भी इस अलंकारके अत्यन्त अनुकूल है। कालिदासने अलकाका मार्ग बतलाते समय, मार्गमें आनेवाले पर्वत, नदी आदिके ऊपर मेघ आनेसे कैसा दृश्य हो जाता है इसका वर्णन यक्षके मुखसे अनेक उत्प्रेक्षाओं द्वारा करवाया है। पक्वफलधारी आम्र-वृक्षोंसे आच्छादित आम्रकूट पर्वतपर मेघके आनेपर वह पर्वत ऐसा दिखाई देता है मानो पृथ्वीका अनावृत स्तन है, चर्मण्वती नदीका जल लेने के लिए मेघके झुकने पर गगनविहारी व्यक्तियोंको ऐसा मालूम होगा कि मानो वह पृथ्वीके मोतियोंका एक हार है, जिसके बीचमें इन्द्रनील मणि जड़ा हुआ है, शुभ्र कैलास पर्वत मानो भगवान् शंकरका प्रतिदिन बढ़नेकाला हास्यसंचय है, इस तरह 'मेघदूत' की उत्प्रेक्षायें अत्यन्त हृदयंगम हुई हैं। उत्प्रेक्षाकी तरह दृष्टान्त अलंकार भी कविको प्रिय मालूम होता है। 'रघुवंश' में इन्दुमतीकी मृत्यु एकाएक होते ही उसका शरीर अजके शरीरपर पड़ा और उसको तत्काल मूर्च्छा आ गई। उस समयका वर्णन करते समय दीपकसे तैलबिन्दुके साथ नीचे गिरनेवाली दीपज्योतिका रमणीय दृष्टान्त कविने दिया है। शकुन्तला जब दुष्यन्तके लिए अपना अनुराग व्यक्त करती है तब उसकी सखियाँ 'सागरमुज्झित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति'

'क इदानीं सहकारमुज्झित्वाऽतिमुक्तलतां पल्लवितां सहते' इस तरह अनुरूप दृष्टान्तोंसे अपनी सम्मति व्यक्त करती हैं। निर्दय दुर्वासाके सिवा अन्य कौन निरपराध शकुन्तलाको शाप दे सकेगा, यह भाव 'कोऽन्यो हुतवहाद्दग्धुं प्रभवति' इस दृष्टान्तमें अच्छी तरह व्यक्त हुआ है। इसी तरहके और अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। कालिदासके अर्थान्तरन्यासमें उनके व्यावहारिक अनुभवोंका सारसर्वस्व अत्यन्त रसीली वाणीमें अंकित हुआ है और उनमेंसे कितने ही अलंकार कहावतोंके तौरपर व्यावहारिक भाशमें प्रचलित हो गए है। उदाहरणार्थ, 'मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्' 'महदपि परदुःखं शीतलं सम्यगाहुः' 'भिन्नरुचिर्हि लोकः' 'किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्' इत्यादि उक्तियाँ देखिए। इसके अलावा कविने निदर्शना, अतिशयोक्ति, सहोक्ति, पर्याय, समुच्चय, संदेह, विभावना इत्यादि अनेक अलंकार धड़ कर अपनी कवितावधूको अलंकृत किया है। इन सबके उदाहरण स्थलाभावके कारण यहाँ नहीं दिए जा सकते। जिज्ञासु पाठकोंको मम्मटादि आलंकारिकोंके ग्रन्थोंमें जहाँ तहाँ वे दीख पड़ेंगे।

यहाँ तक हमने ध्वनि, रस, रीति और अलंकार इन संस्कृतसाहित्यशास्त्रज्ञोंके मतचतुष्टयके अनुसार कालिदासकृत ग्रन्थोंकी समीक्षा की है और काव्य-कसौटी पर वे कैसे खरे उतरते हैं, यह भी हमने दिखाया है। अब हम उनकी अन्य विशेषताओंकी चर्चा करेंगे।

आधुनिक समालोचक रसालंकारादिकोंके समान ही काव्य नाटकोंकी संविधानक-रचना, स्वभावपरिपोष इत्यादि अन्य विशेषताओंकी ओर भी ध्यान देते हैं। इन विषयोंमें कालिदासके ग्रन्थोंकी तुलना किसी अन्य कविके ग्रन्थोंसे की जाय तो वे कम सरस नहीं प्रतीत होंगे।। 'मालविकाग्निमित्र' के कथानकमें बहुतसे धागोंकी उलझन होनेपर भी अन्तमें कविने बड़ी कुशलतासे उन्हें सुलझाया है। 'शाकुन्तल' में नायक-नायिकाके स्वभावोंके भिन्न भिन्न मनोविकारोंका उत्तम विश्लेषण किया है। इसके अतिरिक्त कालिदासके ग्रन्थोंमें अनेक जातियोंके और भिन्न भिन्न व्यवसायियोंके चित्र मार्मिकतासे अंकित किए हुए मिलते हैं। उनकी रची हुई रमणीय सृष्टिमें काश्यप, कण्व और दुर्वासा ये परस्पर-भिन्न स्वभावके महर्षि; कौत्सके समान निःस्पृह ब्राह्मण; दुष्यन्त, दिलीप, रघु, राम ऐसे कर्तव्यतत्पर राजर्षि; अज और यक्ष जैसे पत्नी-वियोगसे छटपटानेवाले प्रेमी जीव; अग्निमित्र और अग्निवर्णके समान विलासी राजा; हरदत्त और गणदासके समान कलानिपुण परन्तु परस्परकीर्त्यसहिष्णु नाटचाचार्य; गौतम, माणवक और माढव्य ऐसे तीन तरहके विदूषक और भोलेपनसे सिंहशावकके दाँत गिननेवाले सर्वदमनसे लेकर स्वपराक्रमसे यवनोंको पराजित करके अश्वमेधके

अश्वको वापिस लानेवाले वसुमित्र तक—छोटे और बड़े राजकुमार दीख पड़ते हैं। परिस्थितिके परिवर्तनसे यदि यही व्यक्ति आजकलके व्यवहारमें नहीं दीख पड़ते तो भी इसमें शक नहीं कि इस प्रकारके लोग अवश्य दीख पड़ेंगे। कालिदासकालीन परि-स्थितिका विचार करनेसे मालूम होता है कि उसने अपने पात्र इर्द गिर्दकी सृष्टिसे ही लिए है। 'विक्रमोर्वशीय' के नायकके स्वभावमें तत्कालीन नगरवासियोंकी वृत्तिका कैसा प्रतिबिम्ब पड़ा है इस बातको हम पहले बतला चुके हैं।

परन्तु कालिदासके पुरुष-पात्रोंकी अपेक्षा स्त्री-पात्रोंने रसिक लोगोंका मन अधिक आर्कषित किया है। उन्होंने अपने ग्रन्थोंमें धारिणी, औशीनरी, पार्वती, उर्वशी, इरावती, मालविका, यक्षपत्नी, शकुन्तला, प्रियंवदा, अनसूया, सुदक्षिणा, इन्दुमती और सीता ये तेरह महत्त्वके स्त्री-पात्र निर्माण किये हैं। इनमेंसे धारिणी, औशीनरी और सुदक्षिणा मध्यम उम्रकी और अवशिष्ट तरुणियाँ हैं। उर्वशीके अप्सरा होनेके कारण उसकी गणना युवतियोंमें ही की जा सकती है। कालिदासकी स्त्रीसृष्टिमें तरुण स्त्रियोंके संख्याधिक्यका विचार करनेसे उस विलासी तथा शौकीन कविका मन तरुण स्त्रियोंकी मुग्ध मधुर लीलामें विशेष रमण करता हुआ दीख पड़ता है। ये सब स्त्रियाँ भिन्न भिन्न स्वभावकी हैं। धारिणी, औशीनरी और अनसूयाका गंभीर स्वभाव, इरावतीकी ईर्ष्या, मालविका, उर्वशी, यक्षपत्नी और इन्दुमतीकी विलासिता; पार्वतीकी कठोर साधना; शकुन्तला और सीताका स्वाभिमान; प्रियवंदाका विनोदी स्वभाव और सुदक्षिणाकी कर्तव्यपरायणता—ये स्वभावकी भिन्न भिन्न विशेषतायें प्रधानतासे दृष्टिगत होती हैं। तो भी अधिकांशमें उनका साम्य हम दिखा सकते हैं। ये सब स्त्रियाँ अत्यन्त प्रेमिल हैं। इनमेंसे विवाहित स्त्रियोंका पतिप्रेम, पुत्रवतीका सन्तानप्रेम और प्रियंवदा और अनसूयाका सखीप्रेम, निस्सीम है। धारिणी और औशीनरी उत्कट पतिप्रेमके कारण ही अपने पति की प्रेमसंबंधी अनुचित बातें पसंद न होनेपर भी पतिको सुख होगा, केवल इसी विचारसे नई पत्नीको लानेके लिए सम्मति देती हैं। इनमेंसे बहुतोंके स्वभावमें बहुत कुछ अंश तक स्त्रीस्वभावसुलभ ईर्ष्या भी पाई जाती है। यक्षपत्नी जानती है कि उसके ऊपर पतिका असाधारण प्रेम है। तो भी यदि स्वप्नमें उसको परस्त्रीका ध्यान करता हुआ देखती है तो एकाएक दु:खित होकर चौंक पड़ती है (मेघ. ११६)। इरावती तथा औशीनरी अपने अपने पतिको यद्यपि वे उनके पैरोंपर पड़कर अपना अपराध स्वीकार करते हैं तथापि दुतकार देती हैं। कालिदासकी अधिकांश मानसकन्यायें कलानिपुण हैं। इरावती और मालविका नृत्यकलामें तथा प्रियवंदा और अनसूया चित्रकलामें निपुण बताई गई हैं। यक्षपत्नी विरहावस्थामें अपने दुखी मनको कुछ सान्त्वना देनेके लिए कभी कभी ऐसे पदोंको रचती थी जिनमें पतिका

नाम होता था, और वीणा वजा कर उन पदोंको गानेका प्रयत्न करती थी। कभी विरहसे कृश पतिका चित्र खींच करके मन बहलाती थी। इसी तरह कालिदासके स्त्रीपात्रोंमेंसे अधिकांश लतावृक्षोंपर सन्तानके समान प्रेम करनेवाली दिखाई देती हैं। पार्वती, सीता, शकुन्तला और उनकी सखियाँ आश्रमके वृक्षोंके पानी देतीं तथा बड़े प्रेमसे उनकी शुश्रूषा करती थीं। यक्षपत्नीने अपने घरके आंगनमें एक छोटेसे मन्दार वृक्षको गोद लिए हुए वेटेके समान पाल पोस कर बड़ा किया था। धारिणीका प्रेम अपने उद्यानके सुवर्णाशोक वृक्षपर इतना था कि जब वसन्त ऋतुमें अन्य वृक्षोंके साथ उसमें कलियाँ नहीं लगीं तब उसको अत्यन्त दुःख हुआ। मालविकाके चरणप्रहारके बाद शीघ्र ही उसमें आया पुष्पसंभार देख कर आनन्दकी लहरमें स्त्रीस्वभावसुलभ सपत्नीमात्सर्यको भी भूल कर उसने स्वयं मालविकाके साथ राजाका विवाह कर दिया। कालिदासकी नायिकायें लतावृक्षोंकी तरह पशुपक्षियोंसे भी निस्सीम प्रेम करनेवाली हैं। यक्षपत्नी सन्ध्याके समय अपने भवनके आंगनमें रत्नजटित सुवर्णकी लकड़ीपर बैठे हुए मोरको मधुर तालरवसे नचाया करती थी। शकुन्तलाने जन्म ही से मातृहीन दीर्घापांग नामक मृगछौनेको अच्छी तरहसे पाल पोस कर बड़ा किया था। कालिदासने वर्णन किया है कि पार्वती हिरनियोंसे इतनी हिल गई थी कि वह उनके नेत्रोंकी लम्बाईकी अपनी सखियोंके नेत्रोंसे तुलना करती थी। उपर्युक्त स्त्रीपात्रोंके अतिरिक्त अन्य भी कई युवतियोंके अस्फुट शब्दचित्र 'मेघदूत' में कविने खींचे हैं। सदाचार नीतिकल्पनामें मुक्तमनस्क होनेके कारण वनकुंजमें आनन्द मनानेवाली वनचरवधू, तथा विदिशाके पास नीचैर्गिरिमें आनन्द मनानेवाली वारविलासिनियाँ, महाकालेश्वरके आगे नृत्य करनेवाली वेश्यायें, आकाशमें गहरे काले तथा विशाल मेघ देख कर ये सब पवनद्वारा लाई हुई पहाड़की चोटियाँ हैं ऐसा समझनेवाली सरल-स्वभाव सिद्धांगनायें और कृषिकार्यके लिए आवश्यक मेघोंकी ओर स्निग्ध दृष्टिसे देखनेवाली भ्रूविलासानभिज्ञ ग्रामतरुणियाँ, इन सबका संक्षिप्त किन्तु हृदयग्राही वर्णन कविने किया है। तथापि इनकी अपेक्षा पौरस्त्रियोंका ही वर्णन उनके ग्रन्थोंमें बार बार आता है। अँधेरी रातमें रत्नालंकारोंसे भूषित होकर प्रियके पास जानेवाली और मेघगर्जनासे भयत्रस्त होनेवाली अभिसारिकायें, नगरके समीपरस्थ उद्यानमें फूल वीननेसे उत्पन्न हुए श्रमके कारण पसीनेसे तर होनेवाली 'पुष्पलावी' तरुणियाँ, कटाक्षनिक्षेपमें चतुर और चंचल नत्रोंवाली पौरस्त्रियाँ, परदेश गये हुए प्रियतमोंके विरहसे व्याकुल तथा अपने शरीरकी ओर ध्यान न देनेवाली पथिक वनिताओंके शब्द-चित्र कविने बड़ी कुशलतासे खींचे हैं। जब भगवान् शंकर और अज विवाहके लिए नगरप्रवेश

करने लगे तब स्त्रियोंकी हलचलका वर्णन कविने किया है । उससे और 'मेघदूत' के यक्षपत्नीके वर्णनसे हमको तत्कालीन पौरस्त्रियोंके विलासी जीवनकी पूर्णता मालूम होती है ।

कालिदासकी स्त्री-विषयक कल्पनायें अत्यन्त उदात्त थीं, यह 'गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ' अजविलापकी इस उक्तिसे मालूम होता है । तथापि गृहिणी और मन्त्री इन दो संबंधोंसे उनके स्त्री-पात्रोंने अपने कर्तव्योंका पालन किया, इस बातका वर्णन उनके ग्रन्थोंमें कहीं नहीं पाया जाता । इस दृष्टिसे 'स्वप्नवासवदत्त' में राजकार्यके लिए अपनी मृत्युकी झूठी खबर फैला कर पतिका विरहदुःख सहनेवाली तथा ईर्ष्यादि विकारोंको मनमें स्थान न देनेवाली और अपनी सौतको भी पुष्पालंकारोंसे भूषित करनेवाली भासकी नायिका वासवदत्ता, तथा पतिसे बिना कारण त्यागी होनेपर भी प्रजारंजनकी तत्परताके कारण उसकी प्रशंसा करनेवाली भवभूतिकी सीता, कालिदासके विलासी स्त्री-पात्रोंकी अपेक्षा अधिक उत्तम मालूम होती हैं । कालिदासकृत तीनों नाटकोंके नायक बहुपत्नीक हैं । इसलिए समीक्षक कहते हैं कि वे एकपत्नी व्रतकी महत्ता नहीं जानते थे । इस बातसे हम सहमत नहीं हैं, क्योंकि 'मेघदूत' का यक्ष और 'रघुवंश' के अज और राम एकपत्नीव्रतधारी ही हैं । कालिदासके नाटकोंके नायकोंके बहुपत्नीक होनेका कारण उनका राजाश्रय ही है । राजदरबारमें दिखाया जानेवाला नाटकीय विषय राजचरित्र ही होना चाहिए । उसमें यदि उनके बहुपत्नीकत्वका वर्णन न आया होता तो आश्चर्यकी बात होती । जिस समय भवभूतिने नाटकोंकी रचना की थी उस समय उनके सामने राजाश्रयका बन्धन नहीं था । अतएव उनके 'मालतीमाधव' और 'उत्तररामचरित' नाटकोंमें विशुद्ध पति-पत्नी-प्रेमका चित्र रंगा गया है ।

सृष्टिवर्णन—आधुनिक पाठकोंको कालिदासके ग्रन्थोंकी लगन लग जानेका दूसरा कारण उनमें अंकित किया हुआ अप्रतिम सृष्टिवर्णन है । कालिदासमें सृष्टिवर्णन करनेकी विशेष प्रवृत्ति थी । हमने पीछे बतलाया है कि उनके ग्रन्थोंमें किसी न किसी ऋतुका वर्णन आया ही है । तो भी 'ऋतुसंहार' से 'रघुवंश' तक उनके ग्रन्थोंका क्रमशः पठन करनेसे मालूम होता है कि प्रकृतिकी ओर निहारनेकी तथा उनके सृष्टिवर्णन करनेकी रीतिमें कैसा परिवर्तन हो गया था । 'महाभारत' और 'रामायण' के अधिकांश भागमें लतावृक्षोंकी लम्बी चौड़ी सूची देकर सृष्टिवर्णन किया हुआ मिलता है । इसमें सन्देह नहीं कि 'ऋतुसंहार' में कालिदास इससे बहुत आगे बढ़ गए हैं । ऐसा जान पड़ता है कि कविकी नजर सृष्टिके उज्वल रूपकी ओर लगी हुई है । (ऋतु. ३, २)। ऋतु-विभिन्नतासे कामी व्यक्तियोंपर होनेवाले परिणामोंका तथा उनके मनमें उत्पन्न होने-

वाले विकारों और विचारोंका उन्होंने यथार्थ वर्णन किया है। इसमें सन्देह नहीं कि निसर्गके नदीवृक्षोंपर चेतनधर्मका आरोप करके उनका आलंकारिक वर्णन ही उनकी रचनामें है। तथापि सारी सृष्टिमें एक ही चैतन्य भरा हुआ है, स्त्री-पुरुषके समान लतावृक्षादि भी उसके ही भिन्न भिन्न स्वरूप हैं, ऐसी कल्पना उनके पहलेके ग्रन्थोंमें नहीं मिलती। बादके ग्रन्थोंमें उपनिषदोंके वर्णनके अनुसार उन्होंने कुछ स्थानपर लता-वृक्षोंमें वन-देवताका अस्तित्व माना है। 'मेघदूत' में एक जगह लिखा है कि स्वप्नमें पत्नीका दर्शन होनेपर बड़ी प्रसन्नतासे आलिंगन करनेके लिए यक्ष अपनी भुजाएँ पसारता है, यह दृश्य देखकर वनदेवताओंकी आँखोंसे मोतींके समान स्थूल अश्रुबिंदु वृक्षके पत्तोंपर गिरते हैं। 'शाकुन्तल' में यह बतलाया है कि जब शकुन्तला वनसे बिदा होने लगी तब कुछ वृक्षोंमें निवास करनेवाली वनदेवताओंने अपने कोमल हाथ कलाई तक बाहर निकालकर उसको अलंकार दिये। अन्य स्थलोंमें लतावृक्षोंको सचेतन समझ कर मनुष्य प्राणीकी विपदासे पशुपक्षियोंकी तरह उन्हें भी सहानुभूति होती है ऐसा वर्णन आया है। रावण सीताको लेकर जिस मार्गसे गया था वह मार्ग लताओंने अपनी शाखायें और पल्लव उस ओर करके रामको सूचित किया था। हरिणियोंने दर्भांकुर (तृण) खाना छोड़ कर दक्षिण दिशाकी तरफ दृष्टि करके वही कार्य किया ('रघु. १३, १४–१५)। इस तरहके वर्णनसे कविने प्रकृतिकी सुख-दुःख-संवेदना प्रकट की है। 'कुमारसंभव' में मनुष्यके समान अन्य प्राणियोंके ऊपर तथा लतावक्षादि अचेतन मानी गई वस्तुओंपर भी वसन्तादि ऋतुओंका कैसा परिणाम होता है, इसका वर्णन किया गया है (कुमार. ६, ३६, ३९)। कविकी सब नायिकाओंको फूलोंका बड़ा शौक है। कालिदासके ग्रन्थोंमें तत्कालीन लोगोंका पुष्पानुराग दिखाई देता है। शहरके बाहर फूलोंके विशाल बगीचे थे, और तरुण बालिकायें उनमें फूल बीनतीं और शहरमें जाकर बेचती थीं। बड़े बड़े महलोंमें पुष्पोंका सुगन्ध प्रवाहित रहता था। तत्कालीन स्त्रियोंकी पुष्पमय वेषभूषासे कालिदासको अलकाकी रमणियोंका निम्न-लिखित वर्णन सूझा होगा—

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामाननश्रीः।
चूडापाशे नवकुरबकं चारु कर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्॥
मेघ. ७१.

'जिस अलकामें स्त्रियाँ हाथमें लीलाकमल, केशपाशमें बालकुन्द, मुख पर लोध्रपुष्पका चूर्ण, बालोंके जूड़ेमें नया कुरबक पुष्प, कानमें सुंदर शिरीष पुष्प और सिरकी माँगोंमें कदम्ब फूल—इस तरहसे सब ऋतुओंके पुष्पोंको धारण करती हैं।'

कालिदासका निसर्गवर्णन अत्यन्त सूक्ष्म तथा मार्मिक है। उनका मन राजशिबिरके इर्द गिर्दके दृश्योंमें, ऋषियोंके तपोवनमें, पर्वतकी उच्च चोटियों पर और मृगयाके जंगलोंमें —एक ही तरहसे लीन होता है। उनके खींचे हुए निसर्गके चित्र केवल साम्प्रदायिक रीत्यनुसार नहीं हैं, किन्तु उनमें प्रत्यक्ष निरीक्षणकी ताजगी, सहृदयताकी भावना, रसिकता तथा कल्पनाकी उड़ान भी नजर आती है। विस्तार-भयसे यहाँ अन्य उदाहरण नहीं दिये गए हैं। परन्तु पहले उद्धृत किए हुए श्लोकोंसे ही सहृदय पाठकोंको ऊपर दिए हुए विषयोंकी सत्यतामें सन्देह न रहेगा। इस विषयको समाप्त करनेसे पहले कालिदासकी कल्पनाके निदर्शनके तौर पर उनके सृष्टिवर्णनकी एक विशेषताका उल्लेख यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है। उन्होंने अनेक स्थानोंपर आकाशचारी व्यक्तियोंको भूभागके पदार्थ कैसे दीख पड़ते हैं, इसका रम्य वर्णन स्वकल्पनासे किया है। 'मेघदूत' में नदी-पहाड़ोंके ऊपर मेघ आनेसे कैसा दृश्य दीख पड़ेगा इसका वर्णन यक्षने किया है। दुष्यन्तको स्वर्गसे हेमकूट पर्वतपर उतरते समय पृथ्वी कैसी दीख पड़ी, इसका वर्णन नीचे दिये हुए श्लोकमें है —

शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी
पर्णाभ्यन्तरलीनतां विजहति स्कन्धोदयात्पादपाः।
सन्तानात्तनुभावनष्टसलिला व्यक्तिं भजन्त्यापगाः
केनाप्युत्क्षिपतेव पश्य भुवनं मत्पार्श्वमानीयते ॥

शाकु. ७, ८.

'पहाड़के वेगपूर्वक ऊपर आनेके कारण ऐसा दीख पड़ता है कि मानो उसकी चोटीके नीचे पृथ्वी जा रही है। शाखाके दीख पड़नेसे वृक्ष पहलेकी तरह पत्तोंसे आच्छादित नहीं दिखाई देते। दूरसे निर्जल मालूम होती हुई नदियाँ अब साफ दीखने लगी हैं। देखो, ऐसा मालूम पड़ता है कि मानों पृथ्वी (गेंदकी तरह) ऊपर फेंकी जाकर मेरी ओर आ रही हो।' आजकलकी हवाई दौड़में नीचे उतरनेवाले लोगोंको भी ऐसा ही अनुभव होता है। इससे कालिदासकी कल्पनाके विषयमें सानन्द आश्चर्य होता है।

विनोद—कालिदासकृत ग्रन्थोंके सम्बन्धमें ध्यानमें रखने लायक एक अन्य विशेषता उनका विनोद है। कवि जयदेवने भासको कविता-कामिनीका हास्य कहा है। वर्तमानमें उपलब्ध भासके तेरह नाटकोंमेंसे केवल चार पाँच नाटकोंमें ही विनोद पाया जाता है। इसलिए यह शंका उत्पन्न होती है कि कहीं अनुप्रास-लालसासे तो जयदेवने यह वर्णन नहीं किया है? चाहे जो हो तो भी उस उक्तिका

यह अर्थ नहीं है कि अन्य कवियोंकी कृतियोंमें उत्कृष्ट तरहका विनोद नहीं पाया जाता। किंबहुना कालिदासकी कृतियोंमें भी अनेक स्थानोंपर उत्तम कोटिका सुरुचिपूर्ण विनोद है। ध्यानपूर्वक विचार करनेसे यह भावना मनमें आये विना नहीं रहती कि कालिदासको भी 'कविताकामिनीका हास' की उपाधि शोभित होगी।

विनोदकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि असम्बद्धता, अनपेक्षितता, कृत्रिमता, ढोंगीपन, आदि कारणोंसे जो हास्योत्पादक चमत्कार उत्पन्न होता है, वही विनोद है। विनोदके स्वभावनिष्ठ, प्रसंगनिष्ठ और शब्दनिष्ठ इस प्रकार तीन भेद किये जा सकते हैं। ये तीनों भी कालिदासके ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं। उनके नाटकोंमें मुख्य विनोदी पात्र विदूषक है। 'मालविकाग्निमित्र' में गौतम, 'विक्रमोर्वशीय' में माणवक, और 'शाकुन्तल' में माढव्य। इनके स्वभावोंमें कहीं कहीं वैषम्य पाया जाता है। ये तीनों ही विदूषक ब्राह्मण और नायकके नर्मसचिव हैं। उनका काम राजाका मनोरंजन करना और उसके प्रेम-व्यवहारमें यथाशक्ति सहायता देना है। तीनों ब्राह्मण जातिके होनेपर भी निरक्षर भट्टाचार्य हैं। इसलिए उनको हँसीमें महाब्राह्मण कहा है। देखनेमें तीनों भी बड़े कुरूप हैं। 'मालविकाग्निमित्र' में एकाएक इरावतीके आ जानेसे राजाके साथ गौतम भी चक्करमें पड़ जाता है। इतनेमें वसुलक्ष्मीनामक छोटी राज-कन्या पिंगल वानरसे डर जाती है और उसके सँभालनेके लिए इरावती राजाको वहाँ भेजती है जिससे गौतम भी आपत्तिसे छुटकारा पा जाता है। उस समय वह पिंगल वन्दरको बधाइयाँ देता है। 'ऐन मौकेपर तू अपने मित्रकी रक्षा करने आ गया।' 'विक्रमोर्वशीय' में मनमें किसी तरहकी शंका न रखकर माणवकको प्रणाम करनेके लिए राजाके अपने पुत्रसे कहनेपर माणवक जबाब देता है—'शंका (डर) काहेकी? इसने आश्रममें बन्दर तो देखे ही होंगे।' इन स्थलोंमें शरीरकी बदसूरतीके कारण विनोद उत्पन्न हुआ है। फिर भी कुरूप आदमीका खुद अपने लिए ही मजाक करना उतना चुभता हुआ नहीं दिखाई देता। इसके अतिरिक्त तीनों विदूषक पेटू और सुस्त जान पड़ते हैं। 'मालविकाग्निमित्र' में गौतम अन्तःपुरकी स्त्रियोंके त्यौहारोंपर दी गई दान-दक्षिणासे खूब मोटा दिखाई देता है। 'विक्रमोर्वशीय' में माणवकको रसोईघरमें पंचविध व्यंजन तैयार होते देखनेके सिवा अन्य विनोदका साधन ही नहीं सूझता। 'शाकुन्तल' का माढव्य, अरण्यमें अनियमित समयमें प्राप्त होनेवाले रूखे सूखे भोजन तथा गँदेले पानीसे अत्यन्त ऊब जाता है। तीनों भी विदूषकोंको हमेशा आँखोंके आगे खाद्य पदार्थ ही

दीख पड़ते ह । अतः उनको उपमा, दृष्टान्तादि अलंकार उन खाद्य पदार्थोंसे ही सूझे दिखाई देते हैं । ये तीनों अत्यन्त डरपोक भी हैं । गौतम केतकी पुष्पकी नोक अपनी उँगलीमें चुभाकर सर्पदंशका अभिनय करनेमें निपुण है, तथापि निद्रित अवस्थामें साँपकी तरह टेढ़ी मेढ़ी लकड़ी शरीरपर गिरनेसे अत्यन्त भयभीत हो जाता है । माढव्यको पहले तो शकुन्तलाको देखनेकी अत्यन्त उत्सुकता होती है, परन्तु आगे चलकर राक्षसोंके डरसे वह उत्सुकता बिल्कुल मिट जाती है । इस तरह उनके स्वभावोंमें नितान्त साम्य होनेपर भी वहुत सी विषमताएँ हैं । इनमें गौतम चालाक, ढीठ तथा धूर्त है, माणवक नितान्त भोला, और माढव्य जितना उससे कहा जाता है उतना ही करनेवाला है । विदूषकोंके स्वभावमें यह जो उत्तरोत्तर भेद दिखाई देता है वह कालिदासने जान बूझकर किया है । 'मालविकाग्निमित्र' में पात्रोंका स्वभावचित्रण करते समय उस नाटकमें गौतमकी करतूतके कारण नायक कर्तृत्वहीन पात्र बन गया है, यह पहले दिखाया जा चुका है । नायकके स्वभावका उत्थान करनेके लिए और विदूषकके स्वभावकी विसंगति हटानेके लिए कालिदासने अपने अन्य नाटकोंमें प्राचीन परम्पराकी तरह विदूषकको पेटू, मूर्ख तथा सुस्त दिखाया है ।

विदूषकके भाषणमें घरेलू उपमा, दृष्टान्त आदिसे चमत्कृति उत्पन्न होती है और विनोद भी प्रकाशित होता है । हरदत्त और गणदासके कलहके कारण धारिणीको यह डर लगता है कि कहीं मालविका राजाकी दृष्टिमें न पड़ जाय । इस कारण जब वह कहती है कि 'मुझे इनका विवाद ही पसन्द नहीं है' तब गौतम उत्तर देता है 'रानी साहिबा, देख लो मेंढ़ोंकी टक्कर ! क्या इनको फिजूल ही वेतन दिया जाता है ?' इसमें कलह करनेवाले नाट्याचार्योंको दी हुई मेंढेकी उपमा अनपेक्षित होनेके कारण विनोदोत्पादक जान पड़ती है । जब रानी औशीनरी अपने पतिको उर्वशीके पीछे पड़ा हुआ देखती है तब प्रियानुप्रसादन व्रतके मिससे रोहिणीयुक्त चन्द्रको साक्षी बनाकर उर्वशीके साथ प्रेमभावसे वर्ताव करनेका अपना निश्चय प्रगट करती है । उस समय विदूषक कहता है, 'हाथसे मछली छूट जानेपर मछलीमार कहता है कि अच्छा हुआ, मुझे पुण्य मिलेगा !' इसमें मच्छीमारका दृष्टान्त वैसी ही चमत्कृति उत्पन्न करनेवाला है । रनिवासकी सुन्दर स्त्रियोंको छोड़कर वनकी मुनि-कन्याके ऊपर आसक्त हुए दुष्यन्तको, 'हमेशा मीठे पिण्ड खजूर खाकर ऊबे हुए आदमीको इमली चखनेकी इच्छा होती है,' ऐसी जो उपमा दी है वह भी वैसी ही विनोदवर्धक है ।

विदूषक अत्यन्त भोला भाला और मन्दबुद्धि होनेके कारण काव्यमय उक्ति या कथन नहीं समझ पाता है। वाच्यार्थ ही सच है ऐसी भावना करके वह अपनेको हास्यास्पद बना लेता है। वसन्त ऋतुकी आम्र-मंजरीको दुष्यन्त मदन-बाण कहता है, तब माढव्य लाठी लेकर उन मदनबाणोंका नाश करनेके लिए दौड़ता है, यह देखते ही दुखी राजाको भी हँसी आ जाती है।

कालिदासने जैसे नायकोंको विदूषक दिए हैं वैसे ही नायिकाओंको विनोदी सहेलियाँ दी हैं। 'मालविकाग्निमित्र' में मालविकाकी समदुखी, विपत्तिमें न डिगनेवाली विमर्दसुरभि सखी बकुलावलिका, सदैव उर्वशीके साथ रहनेवाली चित्रलेखा और शकुन्तलाकी स्नेहमयी विनोदिनी सहेली प्रियंवदाकी बातचीतमें उत्तरोत्तर अधिक विनोद पाया जाता है। पाठकोंने पहले देखा होगा कि श्लिष्ट शब्दोंके प्रयोगसे बकुलावलिका मालविकाके मुखसे राजासे सम्बद्ध प्रेम कैसी खूबीसे व्यक्त करवाती है। गंधर्व चित्ररथके साथ स्वर्ग जाते समय राजाको एक बार और देखनेके बहाने उर्वशी अपनी मुक्तामाला लतामें उलझी हुई प्रदर्शित करती है और चित्रलेखाको उसे सुलझानेके लिए कहती है। तब वह हँसकर कहती है—'यह बहुत ही उलझी हुई मालूम होती है। इसे सुलझाना बहुत कठिन है। प्रयत्न करके देखूंगी।' परन्तु इन दोनोंकी अपेक्षा प्रियंवदा अधिक विनोदिनी है। उसके विनोदमें उसका स्वच्छंदी और आनन्दी स्वभाव अच्छी तरहसे झलकता है। जब वसन्त ऋतुमें नई कोंपलोंसे पूर्ण आम्रवृक्ष और कलियोंसे लदी हुई वन-ज्योत्स्नाके रमणीय संयोगको शकुन्तला बड़ी देर तक देखती है तब प्रियंवदा कहती है, "अनसूया! क्या यह तेरे ध्यानमें आया कि शकुन्तला वनज्योत्स्नाकी ओर इतने गौरसे क्यों देख रही है? वनज्योत्स्नाको जैसा योग्य वृक्ष मिला है वैसा ही अनुरूप पति क्या मुझे भी मिलेगा, इस तरहके विचार उसके मनमें आ रहे हैं।" उसका विनोद शकुन्तला मनसे तो पसन्द करती है किन्तु ऊपरसे क्रोधका भाव प्रदर्शन करती है। 'शाकुन्तल' नाटकके पहले अंकमें ऐसे तीन चार प्रसंग आये हैं। उसमें कविने समवयस्क, स्नेहमय, तरुण, अविवाहित लड़कियोंमें हमेशा होनेवाले रम्य विनोदका सुन्दर चित्र खींचा है। पार्वतीके विवाहके समय पैरोंमें महावर लगा कर सखी विनोदसे कहती है "इससे चन्द्रकलाको ताडन कर, जो तेरे पतिके सिरपर बैठी है।" उस समय पार्वतीसे कुछ कहते न बना और वह अपने हाथमें ली हुई पुष्पमालासे उसको मारने लगी, ऐसा 'कुमारसंभव' में वर्णन है। 'रघुवंश' में भी अनेक राजाओंको नापसंद करके केवल अजपर ही आसक्त होनेवाली इन्दुमतीसे उसकी सखी सुनन्दा कहती है कि 'चलो, अब हम

दूसरे राजाकी ओर चलें।' तब इन्दुमती क्रुद्ध होकर उसकी ओर देखती है। यहाँ भी वैसा ही विनोद दीख पड़ता है। इसके अतिरिक्त अपने विसंगत बर्तावसे अपना ढोंगीपन व्यक्त करनेवाले पात्र निर्माण करके भी मानवी स्वभावके दोष कालिदासने दिखाये हैं। स्वतः शिकारसे ऊब जानेपर भी सिर्फ राजाको खुश करनेके लिए उसकी प्रशंसा करके हाँ में हाँ मिलानेवाले सेनापति, तथा एक घड़ी पहले धीवरके गलेमें लाल फूलोंकी माला डालकर उसको वधस्तम्भकी ओर ले जानेके लिए अत्यन्त उत्सुक, परन्तु उसके पास मिला हुआ पुरस्कार देखकर मदिरा पीनेकी आशासे उसके जानी दोस्त बननेवाले सिपाहियोंका विनोदी दृश्य भी 'शाकुन्तल' में खींचा गया है।

कालिदासकृत ग्रन्थोंमें प्रसंगनिष्ठ विनोदके भी कुछ उदाहरण पाये जाते हैं। अगर कोई व्यक्ति स्वयं विनोदी न भी हो, फिर भी किसी समय ऐसी परिस्थितिमें पड़ जाता है कि उस समय उसका बर्ताव और उसकी बातचीत उसके ध्यानमें आये बिना ही विनोद उत्पन्न कर देती है। 'मालविकाग्निमित्र' के पहले अंकमें नाट्याचार्योंका कलह ऐसा ही है। मालविकाको देखनेके लिए उत्सुक परन्तु ऊपरसे यह बहाना करनेवाला कि मैं उसके बारेमें कुछ जानता ही नहीं, ऐसा अग्निमित्र, निष्पक्षताका बहाना करके राजाका मनोरथ पूर्ण करनेके लिए सबके सामने मालविकासे नाट्यप्रयोग करानेवाली परिव्राजिका और उपहासपूर्ण वचनों-द्वारा गणदासको चिढ़ानेवाला गौतम रानी धारिणीको ऐसी पेंचीली स्थितिमें डाल देते हैं कि लाचार होकर उसको नाट्यप्रयोगकी सम्मति देनी ही पड़ती है। यह प्रयोग राजाके सामने नहीं होना चाहिए इसलिए वह जितना ही प्रयत्न करती है, उतना ही वह प्रसंग उसके सिर आ पड़ता है। यह दृश्य बड़ी निपुणतासे दिखाया गया है। इसके अतिरिक्त कालिदासने दूसरे प्रकारके विनोदी प्रसंगोंकी भी आयोजना कुछ स्थानोंपर की है। जिस समय दो व्यक्तियोंकी भेंट होती है, अगर उस समय एकका सच्चा स्वरूप दूसरेको मालूम न हो तो उनकी बातचीतमें विनोद उत्पन्न हो जाता है। ऐसे प्रसंग भासके 'मध्यमव्यायोग' और 'पञ्चरात्र' नाटकोंमें आए हैं। कालिदासके 'कुमारसंभव' में भी अजिनदण्डधारी बटुका स्वरूप धारण करनेवाले भगवान् शंकर और दृढ निश्चयसे पतिप्राप्तिके लिए तपश्चर्या करनेवाली पार्वतीकी बातचीतमें इसी प्रकारका विनोद है। ऐसा ही एक दूसरा प्रसंग 'रघुवंश' के सिंह-दिलीप-संवादमें है। परन्तु उसका पर्यवसान दिलीपके आत्मत्यागमें होनेसे उसमें विनोदकी अपेक्षा गाम्भीर्यकी छटा अधिक है।

कालिदासके नाटक राजदरबारमें विद्वत्परिषद्के आगे खेले जाते थे। अतः

गँवार लोगोंकी समझमें आनेवाला और रुचनेवाला विनोद तथा अश्लीलभाव उनमें नहीं दिखाई देता। उनमें कई जगह शब्दगत विनोद भी है। परन्तु वह भी विद्वानोंको ही पसन्द आनेवाला है। शकुन्तलाके ऊपर अपने प्रेमकी अभिव्यंजक बातें कहने पर राजासे विदूषक कहता है 'कृतं त्वयोपवनं तपोवनमिति पश्यामि' (ऐसा जान पड़ता है कि तुमने तपोवनको उपवन ही बना डाला है।) इसमें उपवन और तपोवनके शब्द सादृश्यसे विनोद किया गया है। 'मालविकाग्निमित्र' के बकुलावलिका तथा विदूषकके शब्दश्लेषमूलक छलके उदाहरण पहले दिए जा चुके हैं। 'विक्रमोर्वशीय' में राजाके उर्वशीका सौन्दर्य वर्णन करने पर विदूषक कहता है "मालूम होता है कि इसीलिए आपने दिव्यरसाभिलाषी बनकर 'चातकव्रत' लिया है!" उर्वशी दिव्यलोककी अप्सरा है। इसलिए राजाके उसके प्रति प्रेमको 'दिव्यरसाभिलाष' कहा है। चातक पक्षीका मेघसे दिव्य रसकी अभिलाषा करना प्रसिद्ध है। इस स्थलपर भी शब्दश्लेषसे छल किया गया है। तथापि शब्दश्लेषमें कालिदासकी अधिक आसक्ति न होनेके कारण ऐसी श्लेषगर्भ उक्तियाँ उनके काव्योंमें अधिक मात्रामें नहीं पाई जातीं।

परिहासकी तरह उपहास करनेमें भी कालिदास बड़े निपुण हैं। माल-विकाको राजाकी दृष्टिमें न पड़ने देनेकी इच्छासे रानी धारिणी अपने नाटयाचा-र्यसे कहती है 'तुम व्यर्थ ही इस पचड़ेमें मत पड़ो।' इसपर विदूषक कहता है— 'रानी साहिबा, आपका कहना ठीक है ! अरे गणदास! तू संगीतके बहाने सर-स्वतीके आगे नैवेद्यार्थ प्रस्तुत लड्डुओंको खानेवाला है। तू इस माथापच्चीमें न पड़ । इसमें तेरी हार निश्चित है।' राजाको मालविकाके दर्शनके लिए हर तरहकी कोशिश करते देख कर धारिणी बोली—'अगर आप राजकार्यसंचालनमें भी ऐसी ही निपुणता दिखलाएँ तो बहुत अच्छा हो।' यों कहकर वह राजाको ताना मारती है। जब मालविकासे प्रेमालाप करते समय राजा पकड़ा जाता है तब "तुमने यहाँ आनेमें देर की, इसलिए उतने समयके लिए इसके साथ मैं अपना दिल बहला रहा था।" इस तरह कहकर उसने इरावतीको सान्त्वना देनेका प्रयत्न किया। तब उसने उत्तर दिया —'मुझे नहीं मालूम था कि आपको ऐसी विनोद–पात्र मिल गई है। नहीं तो यह मन्दभगिनी यहाँ आती ही नहीं।' उनके अन्य नाटकोंमें भी इस तरहकी उक्तियाँ आई हैं।

यहाँ तक कालिदासके ग्रन्थोंकी अनेक रमणीयताओंका उल्लेख किया गया। इससे पाठकोंके ध्यानमें यह बात आ जायगी कि कालिदासके ग्रन्थ आज लगभग डेढ़ हजार वर्षोंसे संस्कृत–प्रेमियोंको क्यों प्रिय हो रहे हैं। परन्तु प्रत्येक मनुष्य-

कृतिमें कुछ न कुछ त्रुटियाँ अथवा दोष होते ही हैं। इसके अनुसार समालोचकोंने कालिदासकृत ग्रन्थोंमें भी बहुतसे दोष ढूंढ़ निकाले हैं। इस प्रकरणको समाप्त करनेसे पहले उनका भी संक्षेपमें उल्लेख कर देना आवश्यक है।

उपर्युक्त विवेचनके अनुसार कालिदासरचित ग्रन्थोंमें श्रृंगार तथा करुण रसका उत्कृष्ट परिपाक मिलता है। उसमें भी करुणरसमें भवभूति उनकी अपेक्षा आगे बढ़े हुए हैं। 'कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते'—यह सुभाषितोक्ति प्रसिद्ध है। हमारे विलासी, रंगीले और सौन्दर्यान्वेषक कालिदास रौद्र, करुण, वीर तथा बीभत्स रसका निर्वाह अच्छी तरह नहीं कर सकते थे। 'रघुवंश' के सातवें सर्गमें इन्दुमतीके विवाहके बाद उसके न मिलनेसे निराश हुए राजाओंका युद्ध-वर्णन है। परन्तु उसमें ललित मधुर पदोंकी योजना होनेके कारण वीर और रौद्र रसकी पुष्टि नहीं हो सकी। कवि भट्टनारायण का 'वेणीसंहार' नाटक वीर रसकी दृष्टिसे कहीं अधिक अच्छा है। कालिदासके ग्रन्थोंमें खल (नीच) पुरुषोंके चित्र कहींपर भी दिखाई नहीं देते। उनकी नाटच सृष्टिमें विविधता कम है। 'विक्रमोर्वशीय' और 'शाकुन्तल' के प्रथम दृश्यमें नायक-नायिकाका दर्शन, परस्पर प्रेमसूचक हावभाव, नायकको पुन: देखनेकी इच्छासे नायिकाका किसी बहाने उस जगह रुकना, इत्यादि प्रसंगोंमें बहुत समानता है। इससे ऐसा मालूम होता है, कि कविने 'शाकुन्तल' सदृश सर्वोच्च नाटककी रचना अच्छी होनी चाहिए, इस विचारसे पहले 'विक्रमोर्वशीय' नाटक लिखनेका प्रयत्न किया। 'मालविकाग्निमित्र' और 'विक्रमोर्वशीय' में भी इसी तरहका प्रसंग-साम्य है। उनके नाटकोंके अधिकांश पात्र ऐसे ही हैं जो राजदरबारी कविकी दृष्टिके सामने हमेशा आते रहते हैं। उनमे भास तथा शूद्रक कविकी सर्वतोगामी निरीक्षणशक्ति और सहानुभूति नहीं दीखती। हम पहले बतला चुके हैं। कि उनकी नाटच-स्त्री-सृष्टिमें उदात्तताका अंश कम है। इसके अतिरिक्त ऐसा जान पड़ता है कि कविका लक्ष्य निसर्गके भव्य और भीषण स्वरूपकी ओर गया ही नहीं और गया भी हो तो अपने सौम्य स्वभावके कारण उन्हें वह पसन्द न आया। गम्भीर-प्रकृति भवभूतिके नाटकोंमें उस रूपका यथार्थ वर्णन दीख पड़ता है।

प्रोफेसर कीथ साहबने अपने Sanskrit Drama (संस्कृत नाटक) नामक ग्रन्थमें (पृ. १६०) कालिदासके सम्बन्धमें निम्नलिखित उद्गार निकाले हैं—"कालिदासके ग्रंथ प्रशंसार्ह हैं। तथापि इस बातको छिपाना उचित नहीं होगा कि वह अपने काव्य-नाटकोंमें जीवन और दैव, इन महत्त्वके प्रश्नोंपर बिल्कुल ध्यान नहीं देते। जर्मन कवि गेटेके द्वारा की हुई प्रशंसा और सर

विलियम जोन्सने 'भारतवर्षका शेक्सपियर' की जो उपाधि उन्हें दी है वह यथार्थ है। तथापि यह स्पष्ट है कि कालिदासकी स्वकालीन ब्राह्मण–प्रणीत धर्मके ऊपर जो निष्ठा थी, उसके कारण उनकी सहानुभूतिके विषय, अन्य कवियोंकी अपेक्षा, कम हुए हैं। उनका विश्वास था कि मनुष्य अपने कर्मोंसे दैवकी उत्पत्ति करता है। उस दैवका ही सर्वत्र न्याय्य अधिकार चलता है। इस कारण 'संसार एक दुःखपूर्ण स्थान है, इसमें अन्यायका राज्य चल रहा है' ऐसी भावनाका होना और बहुजनसमाजके कष्टमय जीवनकी ओर सहानुभूतिका उत्पन्न होना उनके लिए सम्भव नहीं था। अपनी संकुचित सीमाके बाहर वे नहीं जा सकते थे।"*

प्रो. कीथका यह मत अधिकांशमें असंगत है। हम पीछे बतला चुके है कि कालिदासकी नाट्यसृष्टिमें विविधता कम है। परन्तु इसका कारण वे ब्राह्मणधर्मानुयायी थे, यह नहीं है, किन्तु वे राजकवि थे यह है। परन्तु प्रो. कीथकी आलोचनामें जो मुख्य आक्षेप है वह दूसरा ही है। ऐसा जान पड़ता है कि ऊपर बतलाए हुए विधानका प्रतिपादन करते समय उनकी नजरके सामने प्राचीन ग्रीक नाट्यसाहित्य था। प्राचीन ग्रीक नाटकोंके सुखान्त तथा दुःखान्त दो विभाग हैं। ग्रीक लोग स्वयं बड़े आनन्दी, विलासी तथा कलाभिज्ञ थे। ऋग्वेदकालीन आर्योंकी भांति उन्होंने भी सृष्टिके भिन्न भिन्न स्वरूपों और व्यापारोंपर चेतन धर्मका आरोप करके अनेक सुन्दर देव–देवताओंकी कल्पना की थी। तथापि उनके शोकपर्यवसायी नाटकोंपर दैववादकी भीषण छाया पड़ी हुई दीख पड़ती है। सृष्टिके गूढ रहस्योंके भीतर दैव नामकी एक बलिष्ठ, सर्वव्यापी और निष्ठुर शक्ति है। मनुष्योंकी तरह देवादिकोंपर भी उसका अधिकार है। उसके आगे सबको गर्दन झुकानी ही चाहिए। यदि कोई उसका प्रतिकार करने लगे तो वह अधिक निष्ठुरतासे अपनी इच्छा पूरी कर लेती है, ऐसा ग्रीक लोगोंका विश्वास था। उस दैवकी कृतिमें कुछ विशिष्ट हेतु दीख पड़ता है या नहीं, इसका मानवी कर्मोंसे कुछ नैतिक संबन्ध है या नहीं, यदि है तो किस प्रकारका, इत्यादि प्रश्नोंका विचार ग्रीकोंके दुःखान्त नाटकोंमें पाया जाता है तथा उनके द्वारा जीवनके सुख–दुःखोंके गूढ प्रश्न सुलझानेका प्रयत्न किया हुआ जान पड़ता है। कुछ नाटकोंमें मानवी जीवनके विविध कर्तव्योंका विरोध प्रतिबिम्बित हुआ है। कितने ही अवसरोंपर नागरिकताके कारण किंवा समाजसंस्थाके अंग होनेसे प्राप्त कर्तव्य कौटुंबिक कर्तव्योंका विरोध करते हैं। ऐसे समय उत्पन्न होनेवाले कर्तव्यकलहके आधारपर कुछ नाटकोंकी रचना हुई है। ऐसे प्रश्नोंका विचार कालिदासके ग्रन्थोंमें नहीं मिलता। यह प्रो. कीथकी आलोचनाका तात्पर्य है।

---

* see Keith-The Sanskrit Drama, pp. 280-81

यहाँपर ध्यानमें रखने लायक पहली बात यह है कि किसी भी कविके ग्रन्थ स्वकालीन परिस्थितिसे निरपेक्ष नहीं होते। प्रत्येक ग्रन्थकारकी कृतिपर तत्कालीन रस्म-रिवाजों और आचार-विचारोंका थोड़ा बहुत प्रभाव अवश्य पड़ता है। उसकी कृतिके सौन्दर्यका अगर अनुभव करना हो तो पाठकोंको चाहिए कि वे स्वयं अपनेको तत्कालीन परिस्थितिमें रखें। वृद्धिङ्गत, विजयी तथा समृद्ध गुप्त साम्राज्यमें रहनेवाले कविकी कलाकृतिमें सर्वत्र उत्साह, आनंद और आशावादिता पाई जाय तो आश्चर्य ही क्या? उनके ग्रन्थोंमें दुःखवादकी किंवा नैराश्यकी काली छाया फैली हुई दिख नहीं पड़ती, इसलिए उनपर नाक-भौं सिकोंड़ना ठीक नहीं। इसके सिवा ग्रीक नाटककारोंने जिन प्रश्नोंको आपने ग्रन्थोंमें विचारार्थ लिया था, उनके उत्तर कालिदासके पूर्वकालीन ऋषियोंने सैकड़ों वर्षोंके गंभीर विचारके बाद अपने उपनिषदादि ग्रन्थोंमें लिख रक्खे हैं। सृष्टिकी मूल आधार कोई भयंकर, निर्दय और दैत्यस्वरूप शक्ति नहीं है, किन्तु सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ तथा दयालु भगवान्का न्यायी राज्य है। हमको दुनियामें बाह्य प्रकृति अन्यायी दीख पड़ती है। किन्तु उसके नीचे न्याय अन्तर्हित रहता है। मनुष्यको इस लोक तथा परलोकमें अपने कर्मोंका फल चखना पड़ता है। इसलिए जीवनके त्रिविध तापसे निराश न होकर 'उद्धरेदात्मनात्मानम्' की शिक्षा प्राचीन ग्रन्थोंमें दी गई है। हरएकको चाहिए कि अपने ही प्रयत्नसे अपना श्रेष्ठ ध्येय प्राप्त करे। हम आगेके प्रकरणमें यह दिखायेंगे कि कालिदासकी उपनिषदों और भगवद्गीतापर निस्सीम श्रद्धा थी, इससे इन दोनोंके धार्मिक तथा दार्शनिक विचारोंका उन्होंने अपने ग्रन्थोंमें निवेश किया है। इसके अतिरिक्त सभी भारतीय दार्शनिकोंको कर्मवाद मान्य है। अतः अगर कालिदास ब्राह्मणधर्मानुयायी न होकर बौद्ध किंवा जैन धर्मानुयायी होते तो भी उनके ग्रन्थोंमें ग्रीक नाटकोंमें विचारार्थ लिए हुए प्रश्नोंके वैसे उत्तर नहीं मिल सकते थे।

परन्तु इसका मतलब यह नहीं कि उनके ग्रन्थोंमें कहीं भी दैववाद नहीं पाया जाता। उन्होंने अनेक स्थानोंपर सूचित किया है कि दैव किंवा भवितव्यता प्राणिमात्रके जीवनको नियंत्रित करती है। इन्द्रियाँ भवितव्यताका अनुसरण करती हैं। इसलिए 'लक्ष्मीस्वयंवर' नाटकके प्रसंगमें उर्वशीके मुखसे 'पुरुषोत्तम' के बदले 'पुरूरवा' निकल गया। मालविकाको बिना कारण सालभर अज्ञातवासके कष्ट सहन करने पड़े। अशुभ ग्रहकी पीड़ाके कारण शकुन्तलाको पति-वियोगका दारुण दुःख भोगना पड़ेगा यह जानकर मुनि कण्वने उसके प्रतिकूल दैवकी शान्ति करनेके लिए सोमतीर्थ जैसे सुदूर तीर्थकी यात्रा की। इन स्थलोंमें कालिदासने दैव किंवा

भवितव्यताका अप्रतिकार्य आक्रमण सूचित किया है। तथापि उन्होंने अनेक स्थानों-पर बतलाया है कि दैव कोई अन्धी अथवा निष्ठुर शक्ति नहीं है किन्तु पूर्व-जन्मोंके कृत्योंका परिणाम है। स्वयं निर्दोषी हूँ और बिना कारण ही पतिने मेरा त्याग किया है, यह जानकर भी सीता पतिको दोष नहीं देती, बल्कि कहती है 'ममैव जन्मान्तरपातकानां विपाकविस्फूर्जथुरप्रसह्यः' (यह मेरे पूर्व जन्मके पातकोंका असह्य परिणामरूपी वज्राघात है)। उद्यान–विहार करते समय इन्दुमतीकी एका-एक मृत्यु हो जाती है। कालिदासने इसका कारण उसके पूर्वजन्मका अविवेक ही बतलाया है। कर्मवादको भारतीय तत्त्वज्ञानमें पुनर्जन्मकी कल्प-नाके साथ जोड़ देनेसे अत्यन्त दुःखी, हीन और दीन मनुष्य भी आशावादी हो जाता है। उसको विश्वास रहता है कि इहलोकका अन्याय और दुःख हमेशा टिकनेवाला नहीं है किन्तु 'चक्रनेमिक्रम' के अनुसार इस जन्ममें नहीं तो अगले जन्ममें उसकी परिणति अवश्य सुखमें होगी। कालिदासके काव्योंमें शोकमय प्रसं-गोंकी कमी नहीं है। मदन–दहन, इन्दुमतीका मरण, उर्वशीका रूपान्तर, शकुन्तलाका निरादर इत्यादि प्रसंगोंके वर्णनसे यह नहीं मालूम होता कि कवि मानव–जीवन को केवल गुलाबकी सेज ही समझता था। तो भी इन दुःखपूर्ण प्रसंगोंको अन्तिम न मानकर उन्होंने उनका पर्यवसान सुख तथा आनन्दमें किया है। इसलिए उनके काव्य–नाटक पढ़कर मनको आनन्दके साथ साथ शान्ति और सान्त्वना भी मिलती है। इस संबंधमें प्रो. विल्सनने जो विचार प्रगट किये हैं वे उल्लेखनीय हैं —

'भारतवर्षमें सुखान्त और दुःखान्त नाटकोंका भेद नहीं है, तो भी सारे हिन्दू नाटकोंका पट विविध रंगोंके सूत्रोंसे बुना हुआ दीख पड़ता है। उनमें गांभीर्य और दुःखका मेल रसिकता और हास्यविनोदके साथ किया है। यद्यपि उनका उद्देश्य मानवी हृदयके भय और अनुकम्पाआदि समस्त भावनाओंका उद्रेक करना है तो भी प्रेक्षकोंके मनपर दुःखपूर्ण परिणाम उत्पन्न करके उस उद्देश्यकी पूर्ति नहीं की गई है।"

कालिदासके ग्रंथोंकी त्रुटियोंका यहाँ तक विचार किया गया। जगत्में कोई मानव सर्वगुणसम्पन्न नहीं होता। इसलिए किसीके स्वभाव या कृतिकी त्रुटियोंके कारण उस व्यक्तिको दोष देना ठीक नहीं। परन्तु हम चाहते हैं कि उसकी कृति या उक्ति निर्दोष हो। इसके अतिरिक्त काव्यमें यदि कोई दोष हो तो उससे रसापकर्ष होता है, इसलिए सभी आलंकारिकोंने काव्यदोषोंका सविस्तर विचार और वर्गीकरण किया है। आनन्दवर्धन जैसे रसिक साहित्यमहारथीने भी यह

कहकर उन दोषपूर्ण उदाहरणोंकी उपेक्षा की है। 'तत्तु सूक्तिसहस्रद्योतितात्मनां महात्मनां दोषोद्घोषणमात्मन एव दूषणं भवति'। (जिन्होंने सहस्रों सुन्दर सूक्तियोंसे अपनेको उज्ज्वल किया है, ऐसे महात्माओंके दोषोंका उद्‌घाटन करना आलोचकोंके लिए दोषावह है।) परन्तु अन्य आलंकारिकोंने इतना विवेक न रखकर प्रत्येक दोषके उदाहरण महाकवियोंके काव्योंमेंसे खोज निकाले हैं। उनमें अन्य कवियोंकी अपेक्षा कालिदासके ग्रन्थोंसे बहुत उदाहरण लिये गये हैं। इससे कुछ अविवेकी पाठकोंकी यह धारणा हो सकती है कि कालिदासके ग्रन्थ अन्य कवियोंके ग्रन्थोंकी अपेक्षा अधिक दोषपूर्ण हैं। पर बात ऐसी नहीं है। उनके ग्रन्थोंसे लोगोंने जो बहुतसे उदाहरण चुने उसका कारण उनकी लोकप्रियता ही है। अगर विद्यार्थीको ऐसे श्लोकमें दोष बतलाया जाय जिसे वह जानता है तो उसकी समझमें उसका मतलब जल्दी आ जाता है। अन्य महाकवियोंके काव्य क्लिष्ट होनेसे उनका प्रचार कम हुआ। अतः आलंकारिकोंने अपने उदाहरणोंमें कालिदासकी रचनाओंको चुना। दूसरी बात यह है कि कालिदास 'कविकुलगुरु' ठहरे। परम्परासे यह धारणा चली आई है कि दैवी प्रसादसे उनकी प्रतिभा प्रोत्साहित हुई। जब ऐसे कविसे भी ऐसी गलतियाँ होती हैं, तब अन्य कवियोंके संबंधमें क्या कहना ! यह सूचित करके दोषोंकी सर्वत्र उपलब्धि तथा दोषवर्जनका महत्त्व विद्यार्थियोंको और उदीयमान कवियोंको अच्छी तरह समझाना यह भी इन आलंकारिकोंका उद्देश्य रहा होगा। हम यहाँ कालिदासके काव्योंके छोटे छोटे दोषोंका विचार न करके कुछ खास खास दोषोंका ही विवेचन करते हैं।

१ **अश्लीलता**——सुरुचिपूर्ण पाठकोंके हृदयमें उद्वेग उत्पन्न करनेवाला कालिदासका प्रधान दोष अश्लीलता है। हमारे विलासी कविको अपने रँगीले स्वभावके कारण वर्णन करनेकी धुनमें इस बातका ध्यान नहीं रहा है। 'ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थ।' (मेघ.४३), 'नितम्बमिव मेदिन्याः स्रस्तांशुकमलङ्घयत्।' (रघु. ४, ५२) इत्यादि उक्तियोंमें और अग्निवर्णके स्त्रीसंभोगवर्णनमें यह दोष पाया जाता है। कालिदासके ग्रन्थोंके कुछ भाग उद्दाम शृंगार-पूर्ण होने के कारण पाठशालाओंमें अध्यापनके अयोग्य प्रमाणित हुए हैं। इस दोषकी चरम सीमा 'कुमारसम्भव' के देवीसंभोगवर्णनमें पाई जाती है। पहले तो उत्तमप्रकृति पात्रोंके सम्भोग शृंगारका वर्णन पढ़कर पाठकोंके मनमें लज्जा उत्पन्न होती है। और फिर उन पात्रोंके अत्यन्त पूज्य तथा त्रैलोक्यके जनक जननी शिव-पार्वती होनेके कारण वह अत्यन्त अनुचित लगता है। सर्वप्रमुख आलंकारिकोंने कहा है कि इस शृंगार का वर्णन पढ़कर प्रत्येक सहृदय पाठकको स्वतः

माता–पिताके संभोगवर्णनकी तरह घृणा उत्पन्न होनी चाहिए। आनन्दवर्धनने कहा है कि कालिदास जैसे महाकविके ग्रंथोंमें यह दोष जो इतना तीव्र नहीं मालूम होता इसका कारण उसकी अलौकिक प्रतिभा है, जिससे वह छिप गया है। तथापि जैसा कि हम पहले बतला आए हैं, तत्कालीन विद्वानोंने इसको निन्दनीय ठहराया, अतः कालिदासनें 'कुमारसम्भव' अधूरा ही छोड़ दिया। अकेले कालिदासकेही ग्रन्थोंमें यह दोष पाया जाता है, ऐसी बात नहीं है। संस्कृत वाङमयमें शृंगार रसको प्रधानता मिलनेसे समस्त संस्कृत काव्योंमें यह थोड़ा बहुत दिखाई देता है। नाटकके दृश्यकाव्य होनेसे उसका रसास्वाद स्त्री–पुरुषोंको मिलकर और एक साथ बैठ करके लेना पड़ता है। अतएव नाटकोंमें तो अश्लीलताका दोष और भी अधिक दूषणार्ह है। परन्तु भवभूति जैसे गम्भीर स्वभावके नाटककारके भी 'मालतीमाधव' नाटकमें वह उग्र रूपसे पाया जाता है। यह भी ध्यानमें रखने लायक है कि कालिदासके नाटकोंमें वह अधिकांश दिखाई नहीं देता। अधिकांश कहनेका कारण यह है कि उनकी पहली नाटचकृति 'मालविकाग्निमित्र' में इराव-तीके भाषणमें अश्लीलता सूचित हुई है। 'अशोककी तरह मुझे भी पादप्रहार कर मेरे मनोरथको पूर्ण कर, ऐसी बिनती राजा मालविकासे करता है। उस समय इरावती एकाएक आगे बढ़ कर कहती है, 'इनका मनोरथ पूर्ण करो, पूर्ण करो! अशोक तो सिर्फ फूल देगा परन्तु ये फूल और फल भी देंगे।'

२ **च्युतसंस्कृति**—काव्यमें अशुद्ध व्याकरणका प्रयोग किया गया हो, तो 'च्युतसंस्कृति' दोष होता है। प्राचीन आलंकारिकोंने शुद्ध भाषाका महत्त्व ध्यानमें रखकर अपने ग्रन्थोंका एक स्वतन्त्र प्रकरण संस्कृत कवियोंके विवादास्पद प्रयोगोंकी समीक्षा करनेके लिए लिख डाला है। कालिदासके पूर्वकालीन अश्वघोष और भास कवियोंका ध्यान व्याकरण–शुद्धताकी ओर अधिक न था। इसीलिए उनके ग्रन्थोंमें अशुद्ध व्याकरण–प्रयोगोंकी भरमार दिखाई देती है। व्यास–वाल्मीकि आदि ऋषियोंके काव्योंमें भी ये दोष पाए जाते हैं। परन्तु उनकी अलौकिक तपस्यासे उनके ग्रन्थोंको आदर प्राप्त हो गया है इस लिए उनमें जो व्याकरणदुष्ट प्रयोग हैं उनको 'आर्ष' कहनेकी प्रथा चल पड़ी है। तो भी अश्वघोषादिके काव्योंके अशुद्ध प्रयोगोंको समालोचक दोषपूर्ण ही मानते हैं। कालिदासका भाषाशुद्धिकी ओर विशेष लक्ष्य था। 'संस्कारवत्येव गिरा मनीषी' (कुमार. १, २८) इस उप-मामें उन्होंने स्वयं कहा है कि 'सुसंस्कृत भाषासे विद्वान् पवित्र तथा शोभित होता है।' और सामान्यतः उनके ग्रन्थोंमें दुष्ट प्रयोग बहुत कम मिलते हैं। तथापि आलंकारिकों और टीकाकारोंने असावधानीसे की गई इन त्रुटियोंका निर्देश किया

है। उदाहरणार्थ–

(१) लावण्य उत्पाद्य इवास यत्नः। (कुमार. १, ३५)

तेनास लोकः पितृमान् विनेत्रा। (रघु. १४, २३)

इन पंक्तियोंमें कविने 'अस्' धातुके द्वितीय भूतकालिक अन्यपुरुष एकवचन का 'आस' प्रयोग किया है। 'अस्तेर्भूः' (२, ४, ५२) पाणिनिके इस सूत्रके अनुसार 'अस्' धातुका द्वितीय भूतकालमें स्वतन्त्र रूपका प्रयोग नहीं होता। इस सम्बन्धमें 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' के कर्ता वामनने कहा है कि 'अस गतिदीप्त्यादानेषु' इस धातुपाठके सूत्रानुसार इसे दीप्त्यर्थक 'अस्' धातुका रूप मानना चाहिए। शाकटायनने इसको विभक्तिप्रतिरूपक, विभक्त्यन्त शब्दरूप जैसा दिखनेवाला, अव्यय कहा है। तथापि, ऐसा मालूम होता है कि असावधानीसे कविसे यह प्रमादपूर्ण प्रयोग हो गया है।☆

(२) राजयक्ष्मपरिहानिराययौ कामयानसमवस्थया तुलाम्। रघु. १९, ५०.

इस पंक्तिमें 'कामयान' यह रूप 'कामयमान' शुद्ध रूपके बदले आया है, अतः दुष्ट प्रयोग है।

यदि कहींपर पाणिनीय व्याकरणके अनुसार कोई रूप अशुद्ध मालूम हो तो भी श्रेष्ठ कवियोंके अनेक बार उसका प्रयोग करनेके कारण वह 'शिष्टसम्मत' अतएव अदुष्ट माना जाता है। कालिदासके पूर्वकालीन मान्य कवियोंने ऐसे कुछ रूपोंके प्रयोग किये हैं। अतः कालिदासने भी अपने ग्रन्थोंमें उनका प्रयोग किया होगा। उदाहरणार्थ, पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि इन तीनों व्याकरणाचार्योंके मतसे द्वितीय भूतकालवाचक धातुसाधित कृदन्त रूपका प्रयोग केवल वैदिक भाषामें ही होता है, लौकिक संस्कृतमें नहीं। परन्तु स्वकालीन शिष्ट सम्प्रदायका अनुकरण करनेसे 'तं तस्थिवांसं नगरोपकण्ठे' (रघु. ५. ६), 'श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मुषस्ते' (रघु. ५, ३४), आदि स्थलोंमें कालिदासने उन धातुसाधित कृदन्तोंके रूप प्रयुक्त किये हैं।+ इसी तरह 'व्यापारयामास' 'हासयामास इत्यादि द्वितीय भूतकालिक रूप अखण्ड होना चाहिए, ऐसा स्पष्ट नियम कात्यायनने अपने वार्त्तिकमें कर दिया है। तथापि अश्वघोषने 'बुद्धचरित' में,

---

☆ कालिदाससे लगभग सौ वर्ष पहले उत्पन्न आर्यशूरकी 'जातकमाला' में ऐसे प्रयोग मिलते हैं। (देखिए मैत्रीबलजातकका 'नरेन्द्रचूडाधृतशासनस्य तस्य त्वलंकारवदास शस्त्रम्')

+ 'ऊचिवान्' (बुद्धचरित, ३, ४३), 'उपजग्मिवान्' (१२, २), इत्यादि।

'तथावदेनं दिवि देवसङ्घा दिव्यैर्विशेषैर्महयाञ्च चक्रुः।' (६,५८) इस पंक्तिमें 'महयां' तथा 'चक्रुः' ऐसे दो विभाग करके बीचमें 'च' अव्यय जबर्दस्ती डाल दिया गया है। कालिदासने भी इसी तरहके तीन रूप प्रयुक्त किये हैं। 'तं पातयां प्रथममास पपात पश्चात्' (रघु. ९, ६१); 'प्रभ्रंशयां यो नहुषं चकार' (रघु. १३, ३६); 'संयोजयां विधिवदास समेतबन्धुः' (रघु. १६, ८६)। ऐसे रूप उस कालमें शिष्टसंमत थे।✫ इसलिए ई. सं. ४५७ के एक शिलालेखमें ऐसे रूपोंका प्रयोग मिलता है।●

३ **अनौचित्य**——औचित्य रसकी आत्मा है। क्षेमेन्द्रने कहा है कि काव्यमें अनेक गुणों और अलंकारोंके होते हुए भी अगर उसमें औचित्य न हो तो रसिकोंको वह निर्जीवसा लगता है। कालिदासके ग्रन्थोंकी रचनामें साहित्य-विवेचकोंने यह सोदाहरण दिखा दिया है कि अलंकारों, और पद-वाक्य आदिके प्रयोगोंमें, सर्वत्र औचित्य विद्यमान है। तो भी कुछ स्थानोंमें उनसे भी औचित्यका भंग हुआ है। उदाहरणार्थ, 'कुमारसम्भव' में कालिदासने भगवान् शंकरके सम्मोहनार्थ फैली हुई वसन्त ऋतुका वर्णन निम्नलिखित श्लोकमें किया है।

वर्णप्रकर्षे सति कर्णिकारं दुनोति निर्गन्धतया स्म चेतः।
प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानां पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः॥
कुमार. ३, २८.

इसमें कनेरके सुन्दर पुष्पोंको सुवासित न बनानेके कारण विधाताको दोष लगाया गया है। परन्तु उससे प्रकृत शृङ्गाररसोद्दीपन बिलकुल नहीं होता इससे यहाँ औचित्य-भंगका दोष आ गया है।

क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद्गिरः खे मरुतां चरन्ति।
तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार॥
कुमार. ३, ७२.

इसमें शंकरके तृतीय नेत्रकी अग्निसे मदनदाहका वर्णन आया है। इसलिए शंकरका कोई संहारार्थक नाम न देकर उत्पत्त्यर्थक 'भव' नामका प्रयोग करनेसे औचित्यहानि हुई है। इसी तरह 'मालविकाग्निमित्र' के पहले अंकमें परिव्राजिकाके मुखसे 'अनिमित्तमिन्दुवदने किमत्रभवतः पराङ्मुखी भवसि' ऐसे शब्द निकले

✫ देखिए 'बुद्धचरित' (२, १९) और (८, ९)।

● Gupta Inscriptions, No. 14.

हैं। एक स्त्रीका दूसरीको 'इन्दुवदना' कहना विचित्रसा दिखाई देता है। इसलिए यहाँ भी वही दोष प्रतीत होता है।

४ **रसदोष**–अगर कवि किसी रसका वर्णन करना चाहता है तो उसको चाहिए कि उस रसको प्रवाह रूपसे अखण्ड बहाए। बीच बीचमें अन्तराय पड़नेसे सहृदय पाठक विरस हो जाते हैं। 'कुमारसम्भव' के चौथे सर्गमें मदनको भस्मशेष होते देखकर उसकी स्त्री रतिने जो अत्यन्त शोक किया उसका वर्णन है। 'साहित्य-दर्पण ' में यह बताया है कि उसके बीचमें ही वसन्तागमनके वर्णनसे विच्छेद होनेके कारण रसहानि हुई है। उसी तरह 'रघुवंश' के ताडकावध–वर्णनमें 'राममन्मथशरेण ताडिता दुःसहेन हृदये निशाचरी। गन्धवद्रुधिरचन्दनोक्षिता जीवितेशवसतिं जगाम सा॥' (११, २०) यह श्लोक दिया है। इसमें बीभत्स और शृंगार –इन परस्परविरोधी रसोंके साहचर्यसे रसभंग हुआ है।

इसके अलावा आलंकारिकोंने अपने ग्रन्थोंमें अविमृष्टविधेयांशत्व, भग्नप्रक्रमत्व, अक्रमत्व, श्रुतिकटुत्व, निहतार्थत्व, अनुचितार्थत्व इत्यादि दोषोंके भी एक दो उदाहरण दिए हैं। विस्तारभयसे हम उनका यहाँ विचार नहीं कर सकते। कुछ स्थलोंमें आलोचकोंने दोषप्रदर्शनके सम्बन्धमें कविके साथ अन्याय किया है। उदाहरणार्थ —

काप्यभिख्या तयोरासीद् व्रजतोः शुद्धवेषयोः
हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव ॥ रघु. १, ४६.

इसमें वशिष्ठाश्रममें स्वच्छ वस्त्र धारण करके जानेवाले राजा रानीको कविने हिमके नष्ट होनेपर उज्ज्वल दिखाई देनेवाले चित्रा नक्षत्र और चन्द्रकी उपमा दी है और वह उपमान और उपमेयके लिंग वचनोंके बारेमें निर्दोष है। तथापि 'चित्रा और चन्द्र सुन्दर दिखाई देते हैं उसी तरहसे राजा और रानी सुन्दर दिखाई दिये।' इस तरह कालभेद होनेके कारण इसमें विश्वनाथने 'भग्नप्रक्रमत्व' नामक दोष माना है। इतनी सूक्ष्म दृष्टि अगर स्वीकार की जाय तो कालिदासकी तरह अन्य कवियोंकी सैकड़ों उपमायें दुष्ट माननी पड़ेंगी। अतएव कालविध्यादिभेद होनेपर अगर सहृदयोंको उद्वेग न हो, तो 'काव्यादर्श' के नियमके अनुसार उपमाको सदोष नहीं मानना चाहिए, यही मत अधिक ग्राह्य मालूम होता है। वैसे ही 'पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः।' (कुमार. ५,४) 'सा संन्यस्ताभरणमबला पेलवं धारयन्ती' (मेघ. ६८), 'नवमालिकाकुसुमपेलवा' (शाकु. १) इत्यादि स्थानोंमें 'कोमल' के अर्थमें 'पेलव' शब्दका प्रयोग कालिदासने

किया है। यह शब्द कालिदासकी विशेष रुचिका होगा। तथापि 'पेल' अंशसे स्वकालीन लाटी (गुजराती) अपभ्रंशमें अश्लीलार्थ व्यक्त होता है, इसलिए कालिदासके सैकड़ों वर्षों वाद हुए मम्मट, विश्वनाथ इत्यादि आलंकारिकोंने यह शब्द त्याज्य ठहराया है। हमको तो यहाँ छुआछूतके भावका ही अतिरेक दिखाई देता है। कविने स्वप्नमें भी नहीं सोचा होगा कि 'मेरे शब्दोंका ऐसा घृणोत्पादक अर्थ किया जायगा।' भविष्यमें किसी समयपर किसी भाषामें उसका ऐसा अश्लील अर्थ होगा, इस बातको सर्वज्ञत्वके अभावसे वे जान भी नहीं सकते थे। अतः यहाँ अश्लीलत्वका दोष लगाना अनुचित है।

आलंकारिकोंने चाहे जितने दोष बताये हों, यदि कालिदासकी विशाल ग्रन्थसम्पत्तिसे उनकी तुलना की जाय तो वे अत्यल्प ही हैं। उनके ग्रन्थोंके गुण-सन्निपातमें तो वे बिल्कुल छिप जाते हैं। इसलिए कालिदासकी वाणीका वर्णन करते समय एक सहृदय ग्रन्थकारने 'निर्दोष' विशेषण लगाया है। कवि श्रीकृष्ण अपने 'भरतचरित' काव्यके आरम्भमें कालिदासकी भाषाका इस तरह वर्णन करते हैं –

अस्पृष्टदोषा नलिनीव दृष्टा हारावलीव ग्रथिता गुणौघैः।
प्रियाङ्कपालीव विमर्दहृद्या न कालिदासादपरस्य वाणी ॥१, ३.

'कमलिनीकी तरह अस्पृष्टदोषवाली (रातमें विकास न पानेवाली, और दूसरे पक्षमें, दोषरहित,), मुक्ताहार सरीखी गुणसमूहयुक्त (अनेक सूत्रोंवाली, और दूसरे पक्षमें, गुणसमुच्चयोंसे युक्त), प्रियाकी गोदकी तरह विमर्दसे (संवाहनसे, परीक्षणसे) आल्हादकारक भाषा कालिदासके सिवा अन्य किसी कविकी नहीं है।'*

* इस श्लोकमें श्लिष्ट विशेषणोंका पहला अर्थ कमलिनी, मुक्ताहार इत्यादि उपमानोंकी ओर, और दूसरा कालिदासकी वाणीकी ओर प्रयुक्त कीजिएगा।

८–कालिदासके विचार

स्वादुकाव्यरसोन्मिश्रं शास्त्रमप्युपयुञ्जते।
प्रथमालीढमधवः पिबन्ति कटु भेषजम्।।
भामहकृत 'काव्यालंकार' ५, ३.

(दुर्बोध शास्त्रोंका अभ्यास मधुररसपूर्ण काव्योंके द्वारा रोचक हो जाता है, जैसे रोगी कड़वी दवाका सेवन मीठी शहदके साथ करते हैं।)

कालिदासके चरित्रका वर्णन करते समय चतुर्थ परिच्छेदमें हम यह दिखला चुके हैं कि उन्होंने अनेक ग्रन्थोंका अवलोकन तथा विविध विषयोंका सूक्ष्म अभ्यास किया था। धर्म, दर्शन, समाजस्थिति, राजतन्त्र, शिक्षा इत्यादि अनेक विषयों पर उन्होंने मननपूर्वक अपने मत निश्चित करके ग्रन्थोंमें उनका उपयोग किया है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है इन विषयोंके सम्बन्धमें किये गए उल्लेख फुटकर रूपमें पाये जाते हैं। तो भी उनके आधारपर कालिदासके एतद्विषयक मतोंका अनुमान किया जा सकता है। उनमेंसे कुछ महत्त्वपूर्ण विषयोंके सम्बन्धमें हम इस प्रकरणमें चर्चा करेंगे।

धर्म तथा तत्त्वज्ञान—ये दो विषय अत्यन्त महत्त्वके हैं। समाजकी रक्षा, अभ्युदय और कल्याणके लिए धर्मकी अत्यन्त आवश्यकता होती है। 'धारणाद्धर्ममित्याहुः', 'यतोभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः' इत्यादि धर्मकी व्याख्याएँ प्रसिद्ध हैं। भारतवर्षमें धर्मका अत्यन्त महत्त्व है। इस पुण्यभूमिमें ही वैदिक, बौद्ध और जैन इन तीन जगत्प्रसिद्ध महान् धर्मोंका उद्गम तथा विकास हुआ है। मनुष्यके मनपर धार्मिक कल्पनाका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है और उसके द्वारा मनुष्यको व्यावहारिक जीवन संयमित करनेमें बड़ी सहायता मिलती है, यह ध्यानमें रखकर हमारे प्राचीन ऋषियोंने धर्मका व्यावहारिक जीवनके साथ सम्बन्ध जोड़ दिया है। धर्ममें यदि तत्त्वज्ञानका आधार न हो तो वह अन्धश्रद्धाका विषय हो जाता है, तथा कुछ काल परिस्थितिकी अनुकूलताके कारण अथवा धर्मसंस्थापकके आकर्षक वैयक्तिक गुणोंके कारण प्रसार होने पर भी वह चिरस्थायी नहीं होता, यह बात ध्यानमें रखकर बौद्ध तथा जैन दार्शनिकोंने शीघ्र ही अपने धर्मके साथ तत्त्वज्ञानका सम्बन्ध जोड़ दिया। हिन्दूधर्मका तो आरंभ ही से तत्त्वज्ञान एक अंग हो गया था, यह ऋग्वेदके अन्तर्गत तत्त्वज्ञानविषयक सूक्तोंसे स्पष्ट हो जाता है।

कालिदासके समयमें हिन्दूधर्मका संधिकाल था। जैन तथा विशेषकर बौद्ध-धर्म के प्रबल आघातोंसे हिन्दूधर्मके विचारशील लोग सचेत हो उठे तथा उन्होंने अपने विशाल धर्मग्रन्थोंमेंसे अनावश्यक भाग निकाल कर अवशिष्ट भागको व्यवस्थित रूप देकर पहले सूत्रग्रन्थोंकी और पीछे सुवोध स्मृतिग्रन्थोंकी रचना की। साथ ही प्रतिपक्षियों द्वारा उठाए हुए तत्त्वज्ञानविषयक आक्षेपोंका उन्होंने अपने वेदान्त आदि दर्शनसूत्रोंमें खंडन किया तथा उनके विरुद्ध मतका परिहार किया। स्वयं हिन्दूधर्म उस समय अनेक परिस्थितिओंमेंसे गुजर रहा था। बौद्ध धर्मको राजाश्रय मिलनेके कारण अहिंसा तत्त्वका जनतामें प्रसार हो रहा था और इससे लोगोंके मनमें वैदिक यज्ञयागादि विषयोंपर अश्रद्धा उत्पन्न हो चली थी। बौद्धों द्वारा की गई उपहासात्मक टीका–टिप्पणियोंके कारण लोगोंका वर्णाश्रम-धर्म परसे विश्वास हट चला था। प्राचीन चातुर्वर्ण्य व्यवस्था विकृत हो गई थी। सब लोगोंको बौद्धधर्म स्वीकार कर बेरोक–टोक संघमें प्रवेश पानेकी सुविधा होनेसे पेटू और आल्सी लोगोंकी खूब बन आई थी। ऐसी विकट परिस्थितिमें राष्ट्रके विवेकी सनातनधर्मी विद्वानोंने स्वकालीन परिस्थितिको ध्यानमें रखकर हिन्दूधर्मका पुनः संगठन करनेके लिए याज्ञवल्क्य, नारद, कात्यायन इत्यादि स्मृतियाँ रचीं। तथापि राजाका आश्रय न होनेसे कुछ काल तक उनके धार्मिक तत्त्वोंका जनतामें अधिक प्रचार न हुआ। ईसाके वाद चौथी शताब्दीके आरम्भमें गुप्तवंशका उदय हुआ और उससे हिन्दूधर्मको राजाश्रय मिला। गुप्तवंशीय सम्राट् हिन्दू धर्मके पक्के अनुयायी थे। उन्होंने स्वयं यज्ञयागादि अनुष्ठान किये। हिन्दू देवताओंके मन्दिर बनवाए, हिन्दू धर्मावलम्बी विद्वानोंको राज्यके बड़े बड़े अधिकार पदोंपर नियुक्त किया। इस तरह उन्होंने अपने धर्मका पुनरुज्जीवन करनेका प्रयत्न किया। ऐसे समयमें प्राचीन हिन्दू संस्कृतिके उदात्त तत्त्वोंको तथा उच्च आदर्शोंको मनोरंजक ढंगसे लोगोंके आगे रख कर उनकी ओर चित्ताकर्षण करना आवश्यक था। यह कार्य, काव्य नाटकके समान मनोरंजक रीतिसे उपदेशामृत पिलानेवाले ग्रन्थोंसे ही हो सकता था! मम्मटने अपने 'काव्यप्रकाश' में 'कान्तासम्मिततयोप-देशयुजे' यह काव्यनिर्माणका एक प्रधान प्रयोजन वतलाया है। जैसे एक सुन्दरी अपने रमणीय विलासोंद्वारा अपने प्रियतमके चित्तको आकृष्ट कर उससे अपना अभीष्ट सिद्ध करा लेती है, उसी तरह कवि भी अपने मनोरम काव्यनाटकादि ग्रन्थोंद्वारा वाचकों और प्रेक्षकोंके मनपर अपने सदुपदेशोंको प्रति-बिम्बित कर देता है। इसी कारण महाविद्वान् अश्वघोषने यह देखकर कि अपने बनाये हुए रुक्ष तत्त्वज्ञानविषयक ग्रन्थोंकी ओर सामान्य लोगोंकी दृष्टि नहीं

जाती है, बौद्धदर्शनके प्रसारके लिए 'सौन्दरनन्द' आदि काव्य तथा 'शारिपुत्र-प्रकरण' आदि नाटक लिखे। ललित वाङ्मयके द्वारा समाजसुधारमें कैसी सहायता मिलती है इसे स्वर्गीय प्रेमचन्दने अपने आबालवृद्धप्रिय उपन्यासोंके द्वारा अच्छी तरह दिखा दिया है। कालिदासने अपने ग्रन्थोंमें कहीं भी अश्वघोषकी तरह 'हम हिन्दूधर्मके प्रसारार्थ काव्य और नाटक बनाते है' यह नहीं कहा। तथापि तत्कालीन परिस्थिति और उनके ग्रन्थोंमें उदात्त आदर्शोंसे प्रेरित हुए व्यक्तियोंके मनोहर चित्र अंकित हुए देख कर उनका यह अप्रत्यक्ष उद्देश्य मालूम हुए विना नहीं रहता।

कालिदासके समयमें अश्विनीकुमार, धर्म, इन्द्र, संकर्षण, कुबेर इत्यादि प्राचीन देवताओंकी पूजाका प्रचार उठ गया था और उसका स्थान ब्रह्मा, विष्णु, शिवने ले लिया था। फिर भी इन देवताओंके उपासकोंमें जो महान् विरोध आजकल दृष्टिगोचर होता है उसका नामोनिशान भी उनके समयमें नहीं दीखता। संभवत: बौद्धोंके आक्रमणोंके कारण भिन्न भिन्न देवताओंके उपासक अपने आपसके भेदभाव भूलकर एक हो गए होंगे और उस समयके दार्शनिकोंकी शिक्षा भी उसी प्रकारकी होगी। कारण कुछ भी हो, फिर भी उस कालमें उन लोगोंमें एकता और सख्य-भाव था, इसमें सन्देह नहीं। इतना ही नहीं, एक ही कुटुम्बमें माता पिता एक देवताके, तो पुत्र दुसरे देवताके उपासक थे, यह वाकाटक नृपति द्वितीय प्रवरसेनके उदाहरणद्वारा हम पहले ही दिखला चुके हैं। कालिदास शिवके उपासक थे। उनके समस्त नाटकोंके नांदीश्लोकमें शंकर ही की स्तुति पाई जाती है। 'माल-विकाग्निमित्र' के आरम्भमें अपने इष्ट देवताका स्मरण उन्होंने निम्नलिखित रीतिसे किया है।—

एकैश्वर्यस्थितोऽपि प्रणतबहुफलो यः स्वयं कृत्तिवासाः
कान्तासंमिश्रदेहोऽप्यविषयमनसां यः परस्ताद्यतीनाम्।
अष्टाभिर्यस्य कृत्स्नं जगदपि तनुभिर्बिभ्रतो नाभिमानः
सन्मार्गालोकनाय व्यपनयतु स वस्तामसीं वृत्तिमीशः॥

'भगवान् शंकर सब जगत्के ईश्वर होकर भक्तोंके बहुविध मनोरथोंको पूर्ण करते हुए भी स्वयं गजचर्म पहिनते हैं, आधा शरीर कान्तासे आलिंगित होनेपर भी उनका स्वरूप विषयोपभोगसे विरक्त रहनेवाले यतियोंके भी ध्यानमें नहीं आता है, अष्टमूर्तियोंसे सारे जगत्को धारण करते हुए भी जिनमें अभिमानका लेश भी नहीं है' इत्यादि रीतिसे कविने विरोधाभाससे शंकरके यथार्थ स्वरूपका

वर्णन किया है। इसी कल्पनाका उन्होंने दूसरे नाटकोंके नांदीमें भी विस्तार किया है। 'शाकुन्तल' के भरतवाक्यमें–

ममापि स क्षपयतु नीललोहितः
पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः।

इस प्रकारसे अपनेको पुनर्जन्मसे मुक्त करनेके लिए शंकरसे प्रार्थना की है। कविने 'कुमारसंभव' में श्रीशंकरके चरित्रमेंसे एक रमणीय प्रसंगका वर्णन किया है। उस काव्यके छठे सर्गमें ऋषियों द्वारा उन्होंने श्रीशंकरकी स्तुति कराई है। उसमें जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेवाले तथा सब प्राणियोंके अन्तर्यामी ऐसा शिवजीका वर्णन किया है। उसी तरह द्वितीय सर्गमें भी देवताओंकी प्रार्थनाका उत्तर देते समय ब्रह्मदेवने निम्नलिखित श्लोकमें 'स्वयं मुझे अथवा विष्णुको भी श्रीशंकरके प्रभावका सम्यक् ज्ञान नहीं होता' यह कहा है—

स हि देवः परं ज्योतिस्तमःपारे व्यवस्थितम्।
परिच्छिन्नप्रभावर्द्धिर्न मया न च विष्णुना।। कुमार. २, ५८.

अतः कालिदासके शिवोपासक होनेमें कोई शंका नहीं रहती। फिर भी वह किसी खास शैव सम्प्रदायके अनुयायी थे यह मालूम नहीं होता, कारण यह है कि उनके ग्रंथोंमें कहीं भी साम्प्रदायिक पारिभाषिक संज्ञाओं अथवा विशेष आचारोंका उल्लेख नहीं पाया जाता। यह हम दिखा चुके हैं कि उन्होंने उपनिषदों तथा भगवद्गीताका अच्छा मनन किया था। इस मननसे उनकी दृष्टि विशाल और उनके धार्मिक विचार बहुत ही उदार हो गये थे। 'कुमारसंभव' के दूसरे सर्गमें ब्रह्मदेवका तथा 'रघुवंश' के दशम सर्गमें विष्णुका वर्णन उन्होंने परमेश्वर मानकर ही किया है–

तिसृभिस्त्वमवस्थाभिर्महिमानमुदीरयन्।
प्रलयस्थितिसर्गाणामेकः कारणतां गतः।। कुमार. २, ६.
नमो विश्वसृजे पूर्वं विश्वं तदनु बिभ्रते।
अथ विश्वस्य संहर्त्रे तुभ्यं त्रेधास्थितात्मने।। रघु. १०, १६.

ब्रह्मा, विष्णु और शंकर एक ही परमेश्वरके कार्यनिमित्तसे भिन्न भिन्न भासमान रूप प्रतीत होते हैं। कार्यवश कभी ब्रह्मदेवको, कभी विष्णुको, कभी

शंकरको श्रेष्ठता मिलती है। इसलिए श्रेष्ठ–कनिष्ठभाव उनके संबंधमें समान ही दिखता है। इस उदात्त तत्त्वका भाव निम्नलिखित श्लोकमें स्पष्ट झलकता है––

एकैव मूर्तिर्बिभिदे त्रिधा सा सामान्यमेषां प्रथमावरत्वम्।
विष्णोर्हरस्तस्य हरिः कदाचिद्वेधास्तयोस्तावपि धातुराद्यौ ।।

कुमार. ७, ४४,

सनातन धर्मका भी यही तत्त्व है। भगवद्गीतामें कहा गया है (भ. गी. ७, २२) कि मनुष्य किसी भी देवताकी श्रद्धासे उपासना करे, वह एक ही परमेश्वर को पहुँचती है और उसीके द्वारा उसकी इच्छा पूरी होती है। अब 'कुमार-संभव' तथा 'रघुवंश' में विविध प्रसंगोंपर आई हुई ब्रह्मा, विष्णु, महेशकी स्तुति-योंमें कालिदासने परमेश्वरका कैसा वर्णन किया है यह देखिए–

परमेश्वरके स्वरूपका यथार्थ वर्णन करना अशक्य है। क्योंकि वह मन और वाणीसे अगोचर है ऐसा कालिदासने अनेक जगहपर वर्णन किया है। प्रत्यक्ष, अनुमान तथा आप्तवचन किंवा शब्द ही ज्ञानके प्रमुख साधन हैं। वस्तुके इन्द्रिय-गोचर होनेसे उसका ज्ञान सुलभ होता है, यह सर्वसाधारण अनुभव है। ईश्वर स्वयं सामान्य जनोंको प्रत्यक्ष नहीं दीखता, फिर भी उसके ऐश्वर्यका ज्ञान जिन पदार्थोंमें होता है (जैसे पृथ्वी आदि) उनका भी ज्ञान जब अच्छी तरह नहीं हो सकता तो भला अनुमान और वेदवचन ही जिसके लिए आधार हैं उस ईश्वरके स्वरूपकी यथार्थ कल्पना अगर हमको न हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या? इसी आशयको कविने निम्नलिखित श्लोकमें व्यक्त किया है––

प्रत्यक्षोऽप्यपरिच्छेद्यो मह्यादिर्महिमा तव।
आप्तवागनुमानाभ्यां साध्यं त्वां प्रति का कथा ।।

रघु. १०, १६.

ईश्वरमें अनेक विरोधी गुणोंका समवाय दीखता है। इसलिए किसीको भी उसके स्वरूपका यथार्थ भान नहीं होता। वह स्वयं अज अर्थात् जन्मरहित है, फिर भी पृथ्वीपर अवतार लेता है। स्वतः आप्तकाम होते हुए भी शत्रुओंका नाश करता है। समस्त प्राणियोंकी रक्षा करता हुआ भी उदासीन रहता है (रघु. १०. २५), । वह सब प्राणियोंके हृदयमें निवास करता हुआ भी उनके पास नहीं रहता। इच्छारहित होकर भी सदा तपस्या करता है। वह दयालु है, फिर भी उसे कभी दुःख नहीं होता। वह पुराणपुरुष है फिर भी बूढ़ा नहीं होता (रघु. १०, १६), वह जितना द्रव है उतना ही घन है; जितना ही स्थूल उतना ही सूक्ष्म है; जितना ही

लघु उतना ही गुरु, और वह व्यक्त तथा अव्यक्त है (कुमार. २, ११) * परमेश्वर ही चराचर सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और लयका कारण है। सांख्यदर्शनकारके मतानुसार पुरुष और प्रकृति दो परस्पर स्वतन्त्र न होकर एक ही परमेश्वरके दो रूप हैं। (कुमार. १, १३)। उसे सृष्टिकी उत्पत्ति और प्रलय करनेमें किसी भी साधनकी जरूरत नहीं होती (कुमार. २, १०)। उसने चराचर सृष्टिको व्याप्त कर लिया है। जिस प्रकार आकाशसे गिरनेवाला मेघजल सर्वत्र एक ही प्रकारका होते हुए भी भिन्न भिन्न स्थलोंमें भिन्न भिन्न रूप प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार स्वतः परमेश्वर एकरूप होते हुए भी सत्त्व, रजस्, तमस्, इन तीन गुणोंसे विविध रूप धारण करता है। हव्य तथा होता, भक्ष्य तथा भोक्ता, ज्ञेय तथा ज्ञाता, ध्येय तथा ध्याता, इस तरह इस सृष्टिमें सर्वत्र दीखनेवाले द्वन्द्वके मूलमें एक ही तत्त्व विद्यमान है (कुमार. २, १५)। तथा वही प्राणियोंके हृदयमें अन्तरात्माके रूपसे वास करता है, इत्यादि उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीताके सिद्धान्तोंका प्रतिपादन कालिदासके ग्रन्थोंमें सब जगह पाया जाता है। उपनिषदोंमें इस तत्त्वको ब्रह्मका नाम दिया गया है, और कालिदासने एक जगहपर उसी नामका प्रयोग किया है (कुमार. ३, १५)। तथापि निर्गुण ब्रह्मको जानना और उसका वर्णन करना अशक्य है इसलिए उन्होंने सर्वत्र ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन सगुण मूर्तियोंका मनोहर वर्णन किया है।

परमेश्वर स्वयं आप्तकाम है, फिर भी सज्जनोंकी रक्षा और दुर्जनोंका नाश करनेके लिए बार बार अवतार लेता है, तथा लोकसंग्रहके लिए विविध कर्मोंमें संलग्न हुआ दीखता है——भगवद्गीताके इस तत्त्वको कालिदासने निम्नलिखित श्लोकमें व्यक्त किया है–

अनवाप्तमवाप्तव्यं न ते किञ्चन विद्यते।
लोकानुग्रह एवैको हेतुस्ते जन्मकर्मणोः॥

इसकी शब्दयोजना भगवद्गीतासे ली हुई है ऐसा मालूम होता है। इसी कारण श्रीशंकरने विवाहके अवसरपर, अग्निप्रदक्षिणा, लाजाहोम, ध्रुवदर्शन

---

*इस प्रकारके परस्परविरोधी विशेषणोंद्वारा किया हुआ ब्रह्मका वर्णन उपनिषदोंमें भी पाया जाता है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित अवतरण पढ़िए——एतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलमनण्व ह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमः इ. (बृहदारण्यक, ३, ८, ८); अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः। (श्वेताश्वतर, ३, १६.)

इत्यादि स्मार्त कर्मोंका अनुष्ठान किया। कालिदासके समयमें केवलाद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत आदि वेदान्तसम्प्रदाय प्रचलित नहीं थे। अतः यह निर्णय करना कठिन है कि इनमेंसे किस सम्प्रदायविशेषको वे मानते थे। शंकराचार्यके 'मायावाद' के बीज उपनिषदोंमें विद्यमान हैं, तो भी उनके पहले मायावादका पूर्ण विवेचन किसीने नहीं किया था। इस कारण कालिदासके ग्रन्थोंमें मायाका उल्लेख नहीं आया, इसमें आश्चर्यकी बात नहीं। कालिदासके पूर्वकालीन ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता आदि ग्रन्थोंमें 'मायावाद' का पोषक कोई उल्लेख नहीं पास आया है। कालिदास स्वयं शिवोपासक थे, फिर भी तत्त्वज्ञानके संबंधमें वे भगवद्गीताके अनुयायी थे, यह हम स्पष्ट कर चुके हैं। उनके तत्त्वज्ञानविषयक सिद्धान्त शंकर, रामानुज, मध्व, वल्लभ आदि आचार्योंके वेदान्तसिद्धान्तोंसे अक्षरशः नहीं मिलते, अतः वे काश्मीरी शैव सम्प्रदायके अनुयायी थे, ऐसा कुछ विद्वानोंने प्रतिपादन किया है।

काश्मीरी शैव मतकी दो शाखाएँ 'स्पन्दशास्त्र' तथा 'प्रत्यभिज्ञाशास्त्र' के नामसे प्रख्यात है। इनमेंसे पहली शाखाकी स्थापना नवम शताब्दीके आरम्भके वसुगुप्त और उनके शिष्य कल्लटने की, तथा दूसरी उनके बाद दशम शताब्दीमें सोमानन्दने प्रचलित की, यह विद्वानोंने निर्णय किया है। पहले सम्प्रदायकी धारणा है कि उस मतका मुख्य ग्रन्थ 'शिवसूत्र' महादेव पर्वतपर खुदा हुआ था और श्रीशंकरके साक्षात्कार होनेपर वसुगुप्तने वहाँ जाकर उसको उतारकर प्रचलित किया। तथापि यह मत वसुगुप्तसे पुराना है यह दिखानेके लिए ही यह धारणा पहले पहल प्रचलित हुई होगी, ऐसा अनुमान डॉ. भाण्डारकरने किया है। इस मतके पूर्ववर्ती ग्रन्थोंका कोई उल्लेख नहीं मिलता इससे यह अनुमान युक्तिसंगत मालूम होता है। अतः यह मत कालिदासके समय प्रचलित था ऐसा कोई प्रमाण नहीं। इसके सिवाय उस मतमें तथा कालिदासके तत्त्वज्ञानमें अधिक साम्य भी नहीं दीखता और जो कुछ थोड़ा-सा दीखता है वह उनके उपनिषदादि ग्रन्थोंके अभ्यासके कारण आया होगा। काश्मीरी शैव सम्प्रदायमें, ईश्वर स्वेच्छासे ही जगत्की उत्पत्ति करता है और उसे उसके उपादान कारणोंकी आवश्यकता नहीं होती, अथवा वह स्वयं उपादान कारण नहीं बनता—ऐसा माना जाता है। जैसे एक योगी अपने यौगिक बलसे विविध पदार्थ उत्पन्न कर सकता है उसी प्रकार ईश्वर भी अपनी शक्तिसे जीव तथा जगत्की उत्पत्ति करता है, यह सम्प्रदायवालोंका मत है। 'निरुपादानसम्भारमभित्तावेव तन्वते। जगच्चित्रं नमस्तस्मै कलाश्लाघ्याय शूलिने ॥' वसुगुप्तके इस श्लोकमें यही

कल्पना की गई है । ईश्वरको अन्य साधनोंकी आवश्यकता नहीं होती, यह कल्पना उपनिषदोंमें भी मिलती है, तथा 'उपसंहारदर्शनान्नेति चेन्न क्षीरवद्धि' इस ब्रह्मसूत्रमें भी इसी बातका उल्लेख है । कालिदासने भी अपने ग्रन्थोंमें इसी बातका प्रतिपादन किया है । तथापि परमेश्वर स्वयं उपादान कारण नहीं होता यह कल्पना कालि-दासको मान्य थी, यह नहीं प्रतीत होता । 'कुमारसम्भव' के दूसरे सर्गमें देवताओं द्वारा की हुई ब्रह्माकी स्तुतिमें 'आत्मानमात्मना वेत्सि सृजस्यात्मानमात्मना । आत्मना कृतिना च त्वमात्मन्येव प्रलीयसे ।।' यह श्लोक आया है । इसमें परमे-श्वर जगत्की उत्पत्ति अपनेमेंसे करता है और अपनेमें ही उसका लय करता है, ऐसा स्पष्ट कहा गया है । और भी एक विषयमें कालिदासका मत काश्मीरी सम्प्रदायसे भिन्न है । जीव परमेश्वरहीका रूप है, परन्तु सत्त्व, रजस्, तमस् गुणोंके कारण उसे अपने स्वरूपका बोध नहीं होता । ध्यानविधिके द्वारा उस मलका नाश होनेपर वास्तविक ज्ञान होता है यह स्पन्दशास्त्रानुयायी मानते हैं । प्रत्यभिज्ञा-शास्त्रका मत इससे थोड़ा भिन्न है । जीव परमेश्वरसे मूलतः भिन्न न होनेपर भी जब तक उसे किसी सद्गुरुके अनुग्रहका लाभ नहीं होता तब तक आत्म-स्वरूपका भान नहीं होता, यह प्रत्यभिज्ञाशास्त्रानुयायी मानते हैं । पिछले एक प्रकरणमें 'काश्मीर ही कालिदासकी जन्मभूमि थी' इस मतका विचार करते समय, उनके नाटकोंपर प्रत्यभिज्ञाशास्त्रकी छाप पड़ी हुई है—इस मतका हमने विस्तारपूर्वक खण्डन किया है । कालिदासने अपने ग्रन्थोंमें कहीं भी केवल गुरूपदेशसे जीवको स्वस्वरूपका ज्ञान होता है, ऐसा नहीं कहा । स्पन्दशास्त्रके अनुसार योग मोक्षका साधन है, ऐसा कालिदास मानते हैं । यह योग भगवद्गीता में भी वर्णित है । अतः भगवद्गीताके छठे अध्यायमें मोक्षसाधन रूपसे योगविधिका वर्णन आया है । कालिदासने अपने ग्रन्थोंमें प्रतिपादित किया है कि मनुष्यको अपनी मुक्तिके लिए योगका आश्रय लेना चाहिए । जब मदन हिमालयपर आया तब स्वतः भगवान् शंकर 'पर्यङ्कबन्ध' आसन मारकर प्राणायामके निरोधसे वायुरहित स्थलपर रक्खे हुए दीपकके समान निष्कंप रहकर योगबलसे अन्तरात्माके दर्शनमें निमग्न थे ऐसा 'कुमारसंभव' में वर्णन है । 'रघुवंश' में भी कहा है 'तमसः परमापदव्ययं पुरुषं योगसमाधिना रघुः ।' (रघुने योगसमाधिके द्वारा अज्ञानसे परे अविनाशी परमात्माकी गति प्राप्त कर ली ।) तथापि इससे उनको काश्मीरी शैवसम्प्रदायान्तर्गत प्रत्यभिज्ञादर्शन मान्य था, यह सिद्ध नहीं होता ।

कालिदासने ''रघुवंश' में अनेक राजाओंकी मरणोत्तरगतिका वर्णन किया है । इससे उनकी दृष्टिमें मनुष्यका अत्युच्च ध्येय क्या होना चाहिए, यह समझमें

आ जाता है। दिलीपने ९९ अश्वमेघ करके मृत्युके अनन्तर स्वर्गारोहणके लिए मानो ९९ सीढ़ियाँ तैयार की थीं। अजने गंगा तथा सरयूके संगम पर तीर्थमें देहत्याग करके स्वर्गमें इन्दुमतीको प्राप्त करके उसके साथ नंदनवनके क्रीडाभवनमें रमण किया। इसी तरह 'मेघदूत' में भी अलकापुरीमें यक्षोंके विविध विलासोंके रमणीय वर्णन आये हैं। तथापि स्वर्गकी प्राप्ति और वहाँके सुखोंमें रमण करना कालिदासकी दृष्टिसे अत्युच्च ध्येय था, यह प्रतीत नहीं होता। 'तद्यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयते एवमेवामुत्र पुण्यजितो लोकः क्षीयते।' इस छान्दोग्य उपनिषद्के (८, १, ६) कथनानुसार स्वर्गके सभी सुख नाशवान् हैं। भगवद्गीतामें भी कहा है, 'ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीण पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।' (९, २१) स्वर्गमें सुखभोगके द्वारा पुण्य-संचयका ह्रास होता है, यह बात कालिदासको सम्मत थी। इसलिए उन्होंने अपने 'मेघदूत' में उत्प्रेक्षा की है कि 'पुण्य-संचयकी कमी होने पर स्वर्गीय जनोंने पृथ्वी पर आकर अवशिष्ट पुण्याईसे उज्जयिनी नगरीके रूपमें स्वर्गका एक सुंदर भाग बसाया'। 'स्वर्गमें सुख अक्षय न होनेसे मारीचके आश्रममें रहनेवाले ऋषि उस सुखका मोह दूर कर उच्चतर पदप्राप्तिके लिए सदैव तपश्चर्या करते हैं' ऐसा 'शाकुन्तल' में वर्णन है। स्वर्गप्राप्ति होने पर भी मनुष्य जन्म-जरा-मृत्युके चक्रसे नहीं छूटता, इसीलिए उन्होंने 'शाकुन्तल' नाटकके भरतवाक्यमें स्वर्गप्राप्ति न माँग कर पुनर्जन्मसे मुक्त करनेकी शंकरसे प्रार्थना की है। संसारसे मुक्त होनेके लिए यज्ञादि साधन उपयोगी नहीं हैं। योगाभ्याससे परमेश्वरके स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करनेसे ही मोक्षप्राप्ति हो सकती है, यह निर्विवाद कविका मत था। यही बात उन्होंने 'तमसः परमापदव्ययं पुरुषं योगसमाधिना रघुः।' इस श्लोकमें स्पष्ट कर दी है। रघु अत्यन्त शीलवान्, दानशूर और कर्तव्यपरायण राजा था। धर्मशास्त्रमें कहे अनुसार उसने अपनी प्रजासे वर्णाश्रमधर्मका पालन कराया और गृहस्थाश्रमके सभी कर्तव्योंको पूरा कर उसने स्वयं संन्यासाश्रम ग्रहण किया, तथा योगाभ्यासके द्वारा परमात्माका दर्शन कर मृत्युके अनन्तर अविद्यासे परे स्थित परमात्माका साक्षात्कार किया, ऐसा कविने वर्णन किया है। प्रत्यभिज्ञा-दर्शनके प्रमाणके अनुसार उसे अपने स्वतःके शिवस्वरूपका ज्ञान हो गया था ऐसा नहीं कहा है, यह बात ध्यानमें रखने लायक है। कालिदासकी उपर्युक्त पंक्तिसे ऐसा भ्रम हो सकता है कि मोक्षावस्थामें जीवेश्वरका भेद वना रहता है, यह उनका मत था, फिर भी अन्यत्र (रघु. १८, २८) किये हुए 'स ब्रह्मभूयं गतिमाजगाम' इस वर्णनसे संशय नहीं रहता कि परब्रह्मरूप होना ही उनकी दृष्टिमें उच्च ध्येय था।

परमात्माकी प्राप्तिके लिए योगाभ्यासके समान ही और दो साधनों का कालिदासने प्रसंगवश वर्णन किया है। 'विक्रमोर्वशीय' के

अन्तर्यश्च मुमुक्षुभिर्नियमितप्राणादिभिर्मृग्यते
स स्थाणुः स्थिरभक्तियोगसुलभो निःश्रेयसायास्तु वः।।

इस मंगल श्लोकार्धमें कहा है कि 'मुमुक्षु जन प्राणायामादि साधनों द्वारा जिन हृदयस्थ शंकरका दर्शन करनेका प्रयत्न करते हैं, वह एकनिष्ठ भक्तिसे शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं'। इसी तरह फलेच्छाका त्याग कर स्वकर्तव्यका अच्छी तरह पालन करनेसे मनुष्य मुक्त हो जाता है, यह उन्होंने 'मारुतिः सागरं तीर्णः संसारमिव निर्ममः।' (रघु. १५, ६०) इस उपमामें सूचित किया है। कालिदासका मत था कि योगसाधन, निष्कामकर्मयोग और भक्तियोग ये एक ही परमेश्वरके पास पहुँचनेके भिन्न भिन्न मार्ग हैं। प्रत्येक मनुष्यको अपनी शक्तिके अनुसार इन मार्गोंका उपयोग करना चाहिए। यही बात उन्होंने निम्नलिखित श्लोकमें स्पष्ट की है—

बहुधाप्यागमैर्भिन्नाः पन्थानः सिद्धिहेतवः।
त्वय्येव निपतन्त्योघा जाह्नवीया इवार्णवे।।
रघु. १०, २६.

श्रीमद्भगवद्गीतामें भी ज्ञान, पातञ्जल योग, भक्ति, निष्काम कर्म इत्यादि परमेश्वर-प्राप्तिके विविध साधनोंका वर्णन करके उनका समन्वय किया गया है। यही मत कालिदासका भी था, यह उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट हो जाता है।

कालिदासका कर्मवाद और पुनर्जन्मपर विश्वास था, यह हम पिछले परिच्छेदमें बतला चुके है। अपने कर्मोंके द्वारा उर्वशी तथा हरिणी इन दो अप्सराओंको मृत्युलोकमें आना पड़ा। 'आत्माको स्वकर्मानुसार मरणोत्तरगति प्राप्त होती है, तब तेरे देहत्याग करनेपर तुझे परलोकमें अपनी पत्नीका सहवास प्राप्त होगा ही, ऐसा मत समझ' यह कहकर वसिष्ठने अजको पत्नी-शोकसे मुक्त करनेका प्रयत्न किया था। मनुष्यको किये हुए कर्मका फल भोगना ही पड़ता है, सिर्फ ज्ञानके द्वारा कर्म दग्ध होते हैं, यह भगद्गीताका तत्त्व कविने 'इतरो दहने स्वकर्मणां ववृते ज्ञानमयेन वह्निना' (दूसरा अर्थात् रघु ज्ञानाग्निमें स्वकर्मोंका दहन करनेके लिए प्रवृत्त हुआ।) इस श्लोकार्धमें उल्लिखित किया है। मोक्ष-प्राप्तिके लिए इन्द्रियनिग्रहकी अधिक आवश्यकता भी उन्होंने 'रघुवंश' के श्लोक ८, २३ में प्रतिपादित की है।

उन्होंने कहीं कहीं कहा है कि जीवन-मरणके चक्रमें पड़े हुए जीवको कई बार पूर्वजन्मकी अज्ञात बातोंका ज्ञान होनेपर खिन्नता आती है। राम विश्वामित्रके साथ वामनाश्रममें पहुँचे, उस समय अपने पूर्वावतारके कृत्योंकी उन्हें कुछ भी स्मृति नहीं थी तो भी रामके अन्तःकरणमें कुछ खलबलीसी मच गई ऐसा कविने 'रघुवंश' में (११, २२) वर्णन किया है। 'शाकुन्तल'के निम्नलिखित श्लोकमें भी यही तत्त्व बतलाया गया है —

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुकीभवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ॥

शाकु. ५, २.

आज भी अमेरिकामें परलोकविद्याका अनुसन्धान जारी है, वहाँ अनुसन्धान करनेवालोंको इस तरहके अनुभव रखनेवाले व्यक्तियोंका पता लगा है तथा इससे उनकी पुनर्जन्मकी कल्पना पर श्रद्धा होती है, यह देखकर कालिदासकी सूक्ष्म मनोविज्ञानकी दृष्टिपर आश्चर्य होता है।

अब हम कालिदासके सामाजिक विचारोंकी ओर ध्यान देंगे। बौद्धधर्मने जातिभेदको उठा दिया था, और संसार दुःखमय है ऐसा समझा बुझाकर आबाल-वृद्ध जनताको संन्यासमार्गका उपदेश देना आरम्भ कर दिया था। इस उपदेशकी अस्वाभाविकता, तथा मनुष्यकी नैसर्गिक मनोवृत्तिसे विरोधभाव देखकर, सनातन धर्मके पुनरुज्जीवनार्थ लिखी हुई स्मृतियोंमें वर्णाश्रमधर्मकी श्रेष्ठता बतलाई गई थी। कालिदासने अपने ग्रन्थोंमें उसीका महत्त्व दिखाया है। 'रघुवंश' में कहा है कि राज्यमें प्रत्येक जातिके लोग अपना कर्तव्य पालन करते हैं या नहीं इस बातकी ओर श्रेष्ठ राजा ध्यान देते थे। दुष्यन्तके राज्यमें नीच जातिके लोग भी बुरे मार्गसे नहीं चलते थे, ऐसा 'शाकुन्तल' में कहा गया है। ब्राह्मणादि वर्णोंके अपने स्मृत्युक्त कर्म करनेसे राज्यमें सब जगह सुख, समृद्धि फैलती है और लोग दीर्घायु होते हैं, उन पर मानवी तथा दैवी आपत्तियाँ नहीं आतीं, यह भी दिलीपादि राजाओंकी राजव्यवस्थाके वर्णनमें कविने बतलाया है। वर्णधर्मके साथ ही आश्रम-धर्मको भी कालिदासने प्रधान माना है। 'शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्। वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ॥' (रघुवंशी राजा लोग बाल्यावस्थामें विद्याका अभ्यास करते थे, युवावस्थामें विषयोपभोग करते थे,

और वृद्धावस्थामें ऋषियोंकी तरह तपोवनमें तपश्चर्या करते थे, तथा अन्त में योगके द्वारा देहविसर्जन करके मुक्त हो जाते थे।) इस श्लोकमें कालिदासने आश्रमधर्मके कर्तव्योंका संक्षेपमें वर्णन किया है। उनके ग्रन्थोंमें राजाओंकी जीवन-चर्याका भी इसी तरहसे विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। उनके नाटकोमें राज-कुमारका बाल्यकाल किसी एक आश्रममें व्यतीत हुआ बतलाया गया है। बाल्यकालमें ब्रह्मचर्य व्रत पालन कर विद्याका सम्पादन करो, यौवन में विषयो-पभोग द्वारा संसार सुखोंका अनुभव तथा आनन्द लूटो, यह कालिदासने कहा है। परन्तु साथ ही राजा अग्निवर्णके वर्णनमें यह भी कह दिया है कि 'न पुनरेति गतं चतुरं वयः' (रघु. ९, ४७) (उपभोगक्षम वय अर्थात् युवावस्था फिर नहीं आती) यह मान कर, सदैव विषयासक्तिसे शरीरकी हानि मत करो, एक बार इन्द्रियोंको विषयोपभोगका चस्का लगा कि उससे निवृत्त होना अत्यन्त कठिन हो जाता है। इन्द्रियतृप्तिकी अपेक्षा इन्द्रियनिग्रह ही श्रेष्ठ है यह उन्होंने 'रघुवंश' के तेरहवें सर्गमें शातकर्णी तथा सुतीक्ष्णके परस्परविरोधी जीवनक्रमके चित्रों को पास पास रखकर दिखला दिया है। ये दोनों ही ऋषि महान् तपस्वी थे, उनकी उग्र तपस्यासे डरकर इन्द्रने दोनोंको भी मोहजालमें डालनेके लिए उनके पास दो अप्सराएँ भेजीं। ऋषि शातकर्णी उनके जालमें फँस गए और 'पञ्चाप्सर' नामक सरोवरमें अदृश्य महलोंमें उनके नृत्यादि गीत-विलासमें अपना समय बिताने लगे। इससे उल्टा सुतीक्ष्णका उदाहरण है। उनके सामने भी अप्सराओंने आकर सस्मित कटाक्ष फेंक कर, किसी बहानेसे अपने शरीरके मेखलांकित भागको आधा खोलकर उनको नीचे गिरानेका प्रयत्न किया, परंतु वे उनके मोहजालमें न फँसकर पंचाग्निसाधन करते रहे, ऐसा वर्णन कालिदासने किया है। 'प्रजायै गृहमेधिनाम्' (सन्तानोत्पत्तिके लिए गृहस्थाश्रम) यह आदर्श उन्होंने अपने पाठकोंके सामने रक्खा है। सब आश्रमोंसे गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ है, क्योंकि वह सर्वोपकारक्षम है, अर्थात् उस आश्रममें मनुष्यको सब प्राणियोंपर उपकारभाव दिखलानेका अवसर मिलता रहता है। गृहस्थाश्रममें स्वजातिके कर्मोंका अनुष्ठान कर वृद्धावस्थामें किसी तपोवनमें जाकर ऋषियोंके सहवासमें आत्मानात्मका विचार करना चाहिए, योगाभ्यास सीखना चाहिए और अन्तमें योगसे देहत्याग कर जीवन सार्थक करना चाहिए, यही कालिदासकी शिक्षा है।

कालिदासने प्रसंगानुसार अनेक कौटुंबिक तथा सामाजिक सद्गुणोंका उल्लेख किया है। माता-पिताका प्रेम, पति-पत्नीका प्रेम, बन्धुप्रेम, सन्तानप्रेम इत्यादि कौटुंबिक संस्थाके प्रेम-सम्बन्धी मनोहर चित्र उन्होंने अपने ग्रंथोंमें अंकित किए

हैं। खुदको चौदह वर्षके लिए वनवासमें भेजनेवाली कैकयीके प्रति रामका कितना आदरभाव था ! 'माता ! हमारे पिता स्वर्गसाधनीभूत सत्यसे डिगे नहीं, इसका श्रेय तुम्हीको है,' ऐसा कह कर रामने उसकी लज्जाको कैसे दूर किया, यह कविने बहुत सुन्दर ढंगसे वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त गुरुजनोंकी आज्ञा, उसकी युक्तायुक्तताका विचार न कर, मानना चाहिए (आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया), पूज्य जनोंका आदर करना चाहिए। (प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः), अतिथिका स्वागत करना चाहिए और विद्वानोंका सन्मान करना चाहिए, यह उपदेश भी उन्होंने प्रसंगानुसार दिया है।

कालिदासके ग्रन्थोंका अनुशीलन करनेसे यह मालूम होता है कि उनको प्रौढ-विवाह सम्मत था। मालविका, पार्वती, शकुन्तला, इन्दुमती—ये कालिदासके ग्रन्थोंकी मुख्य नायिकाएँ हैं। कविने इनको विवाहके समय विविधकलानिपुण और प्रौढ दिखलाया है। इन्होंने अपने अपने पतिको स्वयं चुना है, इससे कुछ लोग कहते है कि कालिदासको प्रीति-विवाह मान्य था। पर कुछ अन्य लोग कहते हैं कि कालिदासने उसके दुष्परिणाम दिखाये है। 'शाकुन्तल' के पाँचवे अंक में जब राजाने शकुन्तलाका परित्याग कर दिया तो 'अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात्संगतं रहः। अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम् ॥' (एकान्तकी मित्रता बहुत विचारपूर्वक करनी चाहिए, नहीं तो जिसके हृदयको अच्छी तरह नहीं पहिचाना उसपर किए हुए प्रेमका पर्यवसान वैरमें होता है।) इस प्रकारकी शार्ङ्गवकी उक्तिकी तरफ़ वे इशारा करते हैं। किन्तु हमारी समझमें इन दोनों विभिन्न मतोंके बीचमें सत्य निहित है। कालिदासने 'रघुवंश' में सर्वत्र राजाओंका केवल प्रीतिविवाह ही नहीं वर्णन किया है। रघु, दिलीप इत्यादिका उन्होंने आजकलके अनुसार ब्राह्म-विधिसे विवाहसंस्कार वर्णन किया है। राम, कुश आदि कुछ राजाओंको उनके पराक्रमके कारण विशिष्ट स्त्रियाँ मिलीं ऐसा जो दिखाया है, उसमें भी प्रेमका सम्बन्ध नहीं आता। ये सम्बन्ध दुःखपर्यवासी हुए थे, ऐसा वर्णन कहीं नहीं मिलता। इसलिए प्रीति-विवाह कौटुंबिक सुखके लिए अत्यावश्यक है—ऐसा कालिदासका मत मालूम नहीं पड़ता। फिर भी प्रीतिविवाहकी ओर उनकी उदासीनता भी न थी। नहीं तो वे अपने सभी नाटकोंमें उनके रमणीय चित्र न रंगते। उर्वशी और शकुन्तलापर उनके विवाहके बाद घोर आपत्ति आई यह सच है, किन्तु इसका कारण उनका प्रणयविवाह न होकर भवितव्यता ही थी, यह हम पहले बतला चुके हैं। नाटकोंमें किसी एक पात्रके उद्गारोंमें कविके मतका प्रतिबिंब देखना योग्य नहीं होगा। कविका रचनाकौशल इसीमें

है कि किसी विशेष परिस्थितिमें पात्रोंके हृदयोंमें जो विचार उठते हैं उन्हें उनके मुखसे कहलवा दे। तथापि केवल बाह्य सौंदर्यपर टिका हुआ प्रेम स्थायी नहीं होता, इसलिए प्रेमी जनोंको विवाहके पहले अपने अपने माता-पिताकी सम्मति लेनी चाहिए और उनको भी सभी बातोंका विचार करके अपने कन्या-पुत्रोंको सुखावह सलाह देनी चाहिए, यही मत उन्होंने 'श्रीः साभिलाषापि गुरोरनुज्ञां धीरेव कन्या पितुराचकाङ्क्ष।' (रघु. ५, ३८) इस पंक्तिमें लक्ष्मी को गम्भीर स्वभावकी कन्याकी उपमा देकर व्यक्त किया है। उनकी सभी नायिकाओंमें पार्वती श्रेष्ठ है। अपनी तपश्चर्या तथा एकनिष्ठ प्रेमके द्वारा श्रीशंकरको वशमें कर लेनेपर भी पार्वतीने एकदम उनसे गान्धर्व विवाह न कर 'पिताकी सम्मति लेनी चाहिए' इस प्रकार श्रीशंकरको सखीके द्वारा 'कुमारसंभव' में सूचित किया है। इससे भी उपर्युक्त अनुमान ठीक मालूम होगा।

राज्यतन्त्र–कालिदासके तीनों नाटकोंका तथा 'रघुवंश' काव्यका प्रधान विषय राजचरित्र वर्णन करना था। इसलिए उन्होंने अपने राजनैतिक विचार जगह जगहपर व्यक्त किये हैं। राज्यसंस्था किस प्रकारकी होनी चाहिए, राजामें क्या क्या गुण होने चाहिए इत्यादि अनेक विषयोंपर अपना निश्चित मत उन्होंने प्रतिपादन किया है। यहाँ इन बातोंपर विचार करना प्रासंगिक तथा मनोरंजक होगा।

कालिदासके समयमें हिन्दुस्तानमें कुछ गणराज्य अस्तित्वमें थे, फिर भी उनका वर्णन कहीं नहीं किया गया। कविको अपने ग्रंथोंमें उनके वर्णन करनेका कोई प्रसंग ही नहीं आया होगा या उनको वह राज्यपद्धति पसन्द नहीं होगी। हिमालयमें रहनेवाले 'उत्सवसंकेत' नामक पर्वतीय गणोंका रघुके दिग्विजयमें एक बार उल्लेख आया है, पर उससे युद्धविषयक पद्धतिके सिवाय उनके बारेमें अधिक परिचय नहीं मिलता। सामान्यतः कालिदासको प्रजाहिततत्पर एकतन्त्र राज्यपद्धति पसन्द थी। 'मालविकाग्निमित्र' में एक बार मंत्रिपरिषद्का उल्लेख आया है, पर वे मन्त्री प्रजाद्वारा निर्वाचित हुए नहीं दीखते। इसके अतिरिक्त उनका मत राजाको अवश्य मान्य था, ऐसा भी नहीं मालूम होता। कौटिल्यके 'अर्थशास्त्र' में सलाहकार मन्त्री तथा कार्यकारी अमात्य इन दोनोंके बीचमें जैसा भेद दिखाया गया है, वैसा कालिदासने नहीं किया। कारण, ऊपर उल्लिखित मंत्रिपरिषद्को ही अमात्य-परिषद् बताया गया है। अमात्य, मन्त्री तथा सचिव इन संज्ञाओंको कालिदासने समानार्थक माना है। इन मंत्रियोंकी सलाह लेकर राजा जो ठीक समझता था वही करता था। राजाको किसी कारण

राजधानीसे बाहर जाना होता था तब वह मन्त्रियोंपर राज्य का भार छोड़कर चला जाता था। वसिष्ठके आश्रमको जाते समय दिलीपने, गन्धमादन पर्वतपर उर्वशीसहित विहार करनेके लिए जाते हुए राजा पुरूरवाने, तथा राजधानीमें ही रहते हुए विषयभोगोंमें आसक्त राजा अग्निवर्णने राज्यका भार सचिवोंके अधीन कर दिया था। राजाकी आकस्मिक मृत्यु होनेपर उसके लड़केको गद्दी-पर बैठानेका तथा उसके नाबालिग होने पर उसकी माताकी सहायता करते हुए उसके द्वारा योग्य रीतीसे प्रजापालन करवानेका उत्तरदायित्व मंत्रीपर होता था। इससे कभी कभी मन्त्रियोंके हाथमें ही सारी सत्ता रहती थी। तथा कई राजा मंत्रियों की ही सलाहसे चलते थे। उदाहरणार्थ, मृगया एक व्यसन माना गया था, इसलिए दशरथने मंत्रियोंकी सम्मति लेकर वनमें मृगयार्थ प्रस्थान किया। राज्यके भिन्न भिन्न विभागोंके अधिकारियोंकी उपाधि 'तीर्थ' थी, इसका भी कालिदासने उल्लेख किया है। (रघु. १७,६८)

एकतन्त्र राज्यपद्धति पर यह आक्षेप किया जाता है कि सारी राज्यव्यवस्था एक ही व्यक्तिकी इच्छाके अनुसार संचालित होती है, इससे अगर वह कहीं अत्याचारी हुआ तो प्रजापर अन्याय, जुल्म, जबर्दस्ती होना अधिक सम्भव है। ऐसा न हो इसके लिए हमारे प्राचीन राज्यशास्त्रज्ञोंने दो संरक्षक उपायोंकी (Safeguards) योजना की थी। उनमेंसे पहला यह की नियम बनानेकी सत्ता राजाके हाथमें न देकर विद्वान् और निःस्पृह ऋषियोंके हाथोंमें रक्खी गई थी। राज्यशासनके लिए आवश्यक बहुतसे नियम स्मृतियोंमें लिखकर रक्खे गये थे। उनमें परिवर्तन करनेका अधिकार राजाको न था। जब समयके अनुसार नियमोंमें परिवर्तन करनेकी आवश्यकता दीखती थी तब नवीन स्मृतियाँ लिखी जाती थीं अथवा प्राचीन स्मृतियोंसे ही समयके अनुकूल अर्थ निकाला जाता था। नियम बदला गया तो भी वह बदला नहीं यह दिखलानेकी पद्धति (Fiction) प्रत्येक देशके प्राचीन कानून-शास्त्रोंमें मिलती है। राजाको मनु आदि स्मृतियोंके नियमोंको ही कार्यमें लाना चाहिए, यह बात कालिदासने, 'नृपस्य वर्णाश्रम-पालनं यत्स एव धर्मो मनुना प्रणीतः।' (रघु. १४, ६६), 'रेखामात्रमपि क्षुण्णा-दामनोर्वर्त्मनः परम्। न व्यतीयुः प्रजास्तस्य नियन्तुर्नेमिवृत्तयः।।' (रघु. १, १७) इन श्लोकमें सूचित किया है। तथा न्याय करते समय राजा अतिथि धर्मवेत्ताकी सहायता लिया करता था, ऐसा स्पष्ट कहा गया है (रघु. १७, ३९)। दूसरा संरक्षक उपाय यह था कि राजकुमारोंको उत्तम शिक्षा देकर तथा इन्द्रियनिग्र-हका महत्त्व अच्छी तरह समझाकर, योग्य राजकुमारको ही युवराज बनाया जाता

था। कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें राजकुमारकी शिक्षाके विषयमें विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है, तथा काम, लोभ आदि दुर्गुणोंसे नाशको प्राप्त हुए अनेक राजाओंके उदाहरण देकर 'तस्मादरिषड्वर्गत्यागेन इन्द्रियजयं कुर्वीत' (अपने शरीरके षड्रिपुओंका त्यागकर इन्द्रियोंपर अधिकार करना चाहिए।), ऐसा उपदेश दिया गया है। कालिदासके समयमें भी समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त आदि नरपतियोंकी विद्वत्ता, कलाप्रवीणता वगैरहका उत्कीर्ण लेखोंमें जो उल्लेख मिलता है, उससे ऐसा मालूम होता है कि उनकी शिक्षाके विषयमें विशेष सावधानी रक्खी जाती थी। पिछले एक परिच्छेदमें प्रयागके स्तम्भकी हरिषेणकृत प्रशस्तिका एक श्लोक उद्धृत किया गया है। उससे यह स्पष्ट दीखता है कि प्रथम चन्द्रगुप्तने दूसरे राजकुमारोंको दूर रखकर समुद्रगुप्त को सिर्फ उसकी योग्यताके कारण अपना उत्तराधिकारी बनाया था, तथा इसी अर्थका उल्लेख गुप्तोंके दूसरे शिलालेखों में भी मिलता है। कालिदास ने भी 'रघुवंश' में वर्णन किया है कि दिलीपको कुमार रघुकी शिक्षाकी कितनी चिन्ता थी और वहाँ कहा है कि 'निसर्गसंस्कारविनीत इत्यसौ नृपेण चक्रे युवराजशब्दभाक्।' राजा दिलीपने 'स्वभावसे ही तथा उत्तम शिक्षासे विनयसम्पन्न होनेके कारण रघुको युवराज बनाया।' राजसिंहासनपर आते ही राजा अतिथि ने बाह्य शत्रुओंको जीतनेके पहले अन्तः शत्रुओंको जीता था। दशरथको मृगया, द्यूत, मद्य और स्त्री—इनमेंसे किसीका भी व्यसन नहीं था। (रघु. ९, ७), दिलीप ज्ञानी थे, बकवादी नहीं, बलवान् थे, साथ ही क्षमाशील भी, दाता थे पर आत्मश्लाघी नहीं थे, इत्यादि वर्णनोंसे राजामें कौन कौनसे गुण होने चाहिए और किन किन दुर्गुणोंसे उसे बचना चाहिए इन सब बातोंका दिग्दर्शन कराया है। राजाको अपना जीवनक्रम किस प्रकार रखना चाहिए, इस विषयका सविस्तर विवेचन कौटिल्यने किया है और दिन और रात के चौबीस घंटोंके सोलह भाग कर प्रत्येक भागके लिए अलग अलग कर्तव्य निर्धारित किए हैं। उन्हीं नियमोंके अनुसार कालिदासके नायक अपनी जीवनचर्या रखते थे (रात्रिंदिवविभागेषु यदादिष्टं महीभृताम्। तत्सिषेवे नियोगेन स विकल्पपराङ्मुखः।। रघु. १७, ४९)। 'विक्रमोर्वशीय' में दिखाया है कि राजा प्रातःकाल राज्यकार्य देखनेके बाद (कार्यासनादुत्थितः) विहारके समय उर्वशी का ध्यान करता था। 'शाकुन्तल' में कण्वके शिष्य शकुन्तलाको लेकर राजाके पास जाते हैं, उस समय वह राजसभामें लोगोंका न्याय करके तत्काल उठा ही था, इससे कुछ तपस्वी राजासे भेंट करने आये हैं, यह राजाको सूचित करना कंचुकीको कुछ

कष्टकर मालूम होता है। इन सब उल्लेखोंसे राजाको सदैव प्रजाहितमें तत्पर रहना चाहिए, ऐसा कालिदासने उपदेश किया है। किं बहुना, राजा शब्दकी उत्पत्ति भी 'राज्-शोभने' इस धातुके बदले 'रञ्ज्-अनुरञ्जने' इस धातुसे करके (तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात्) प्रजाका अनुरंजन ही राजाका ध्येय होना चाहिए, यह उन्होंने सूचित किया है।

कर—राजाको प्रजाकी आयका षष्ठांश (छठवाँ हिस्सा) कर मिला करता था। यह कर सभी वर्णों और आश्रमोंपर लगाया जाता था। (यथास्वमाश्रमैश्चक्रे वर्णैरपि षडङ्गभाक्) (रघु. १७, ६५)। अरण्यमें रहनेवाले वानप्रस्थ तथा तपस्वी, वनमें उत्पन्न होने वाले नीवार धान्यका षष्ठांश राजाके अधिकारियोंको देनेके लिए नदीके तटपर जमा करके रख देते थे। (तान्युञ्छषष्ठाङ्कितसैकतानि शिवानि वस्तीर्थजलानि कच्चित्) (रघु. ५)। तथापि दुष्यंत जैसे महात्मा राजा उस षष्ठांश करकी अपेक्षा नहीं रखते थे। उससे तपस्वी जन जो अपनी तपश्चर्याका छठवाँ हिस्सा दिया करते थे वही दुष्यन्तको अधिक मूल्यवान प्रतीत होता था। (तपःषड्भागक्षय्यं ददत्यारण्यका हि नः। शाकु.)। संपत्तिके लोभसे राजाको प्रजासे पैसा वसूल नहीं करना चाहिए, ऐसा कालिदासने कई स्थलोंमें सूचित किया है। (प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्। सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।) (रघु. १, १८)। रघुको दिग्विजयसे जो अटूट सम्पत्ति मिली थी उसका उसने सर्वस्वदान कर डाला था। उसके बाद एक विद्वान् ब्राह्मण जब गुरुदक्षिणाके लिए आया, उस समय अपनी मानरक्षाके लिए उसने प्रजाके ऊपर अधिक कर न लादकर कुबेरपर चढाई करनेका निश्चय किया तथा उससे मिली हुई सुवर्णराशि सबकी सब उस ब्राह्मणको दे डाली। राज्यमें जब एक धनवान् व्यापारी निपुत्रिक मरा तब तत्कालीन राज्यनियमके अनुसार उसकी सारी सम्पत्ति राजाको मिल रही थी, फिर भी उस धनका लोभ न करते हुए, उस व्यापारीकी स्त्री अगर गर्भवती हो तो उस सम्पत्तिको उस गर्भके नामसे रख दो, ऐसी आज्ञा दुष्यन्तने दी थी। इससे राजाओंको कितना निर्लोभी होकर रहना आवश्यक है, इसपर कालिदासने प्रकाश डाला है।

राजकर्तव्य—लोगोंसे कर लेने के कारण राजाको अनेक कर्तव्य पालन करने पड़ते थे। उनमेंसे कुछ खास कर्तव्योंका निर्देश 'प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि। स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः।।' (रघु. १, २४) इस श्लोकमें किया गया है। लोगोंकी रक्षा करना, उनको शिक्षा देना तथा उनकी जीविकाका साधन प्रस्तुत करना, राजाके ये मुख्य कर्तव्य 'रघुवंश' के राजा-

ओंने उत्तम रीतिसे पूर्ण किए थे, ऐसा कालिदासने दिखाया है। उनके राज्य-कालमे प्रजाको शत्रुके आक्रमणका डर नहीं था, दिलीपके कठोर शासनके कारण लोगोंको चोरका परिचय तदर्थक शब्दसे ही होता था, पुत्रजन्मके उत्सवमें मुक्त करनेके लिए उसके बन्दीगृहमें एक भी कैदी नहीं था, उसके राज्यमें इतनी शांति और सुव्यवस्था थी कि रात्रिमें विहारस्थलको जाती हुई अभिसारिकाएँ थक जानेके कारण रास्तेमें ही निद्रावश हो जाती थीं। तब उनके शरीरपर वस्त्रोंको हिलानेकी हिम्मत वायुको भी नहीं होती थी। दशरथके राज्यमें रोगका निशान भी नहीं था तब शत्रुका आक्रमण कहाँसे होता? (रघु. ९, ४) राजा अतिथिके शासनमें व्यापारियोंको नदियाँ नालोंकी तरह और गहन वन उद्यानकी तरह प्रतीत होते थे और व्यापारी उत्तुङ्ग पर्वतोंपर घरकी तरह निःशङ्क होकर घूमते थे (रघु. १७, ६४), ऐसा वर्णन 'रघुवंश' में आया है। व्यापारियोंकी तरह तपश्चर्या करनेवाले अरण्यवासी ऋषियोंकी राक्षसादिकोंसे रक्षा करना राजाका प्रधान कर्तव्य माना जाता था। इसीलिए दुष्यन्तके पास जब तपस्वी आए तब 'ऋषियोंकी तपश्चर्यामें कुछ विघ्न तो नहीं आ रहे हैं? तपोवनके प्राणियोंकी किसीने हत्या तो नहीं कर डाली? मेरे दुष्कृत्योंके कारण अरण्यमें लतावृक्षोंमें फल–फूलोंका आना बन्द तो नहीं हो गया है?' इस प्रकारके अनेक संकल्प–विकल्प उसके मनमें उठे थे। इसी तरह के प्रश्न रघुने भी कौत्ससे किए हैं (रघु. ५, ५–९)। इससे राज्यमें शान्ति तथा सुव्यवस्थासंबन्धी कालिदासके विचार समझमें आ जाते हैं।

शिक्षा—लोगोंको शिक्षित बनाना ही राजाका प्रधान कर्तव्य माना जाता था। इसके लिए राज्यमें जगह जगह नदियोंके तटोंपर ऋषियोंको आश्रम होते थे और उनके निर्वाहके लिए आसपासकी जमीन खेतीके लिए छोड़ दी जाती थी। उन आश्रमोंमें शिक्षाका क्रम निर्विघ्नतासे चलानेके लिए राजा एक अधि-कारी नियत करता था। 'आश्रमके सारे काम निर्विघ्नतापूर्वक चल रहे हैं—यही देखनेके लिए मैं यहाँ अधिकारी रूपसे आया हूँ,' इस तरह दुष्यन्त 'शाकुन्तल' में अपना प्रथम परिचय देता है। शिक्षाका क्रम समाप्त करनेपर शिष्यको जो गुरुदक्षिणा देनी पड़ती थी, वह राजाके पाससे मिलती थी। इस तरह अप्रत्यक्ष रूपसे भी शिक्षाके लिए द्रव्यद्वारा राजा सहायता किया करता था। कौत्स नामक ब्रह्मचारीको गुरुदक्षिणा देनेके लिए जब चौदह करोड़ मुद्राएँ आवश्यक हुईं तो रघुने कुबेरसे पाकर कौत्सको दे दी थीं—ऐसा प्रसंग 'रघुवंश' में आया है।

पोषण—राजा लोग रास्ते, पुल इत्यादि आवागमनके साधन प्रस्तुतकर

सर्वत्र शान्ति तथा सुरक्षाकी व्यवस्था करके व्यापारियोंको प्रोत्साहन देते थे। इसके सिवाय राज्यकी तरफसे छोटे बड़े कई कारखाने चलाये जाते थे जिनके द्वारा लोगोंको जीविकाका साधन मिलता था। कालिदासके ग्रंथोंमें इनका सविस्तर वर्णन नहीं मिलता, फिर भी एक दो जगह सेतु अर्थात् नदियोंपर बड़े बड़े पुल बँधवाना, खेती कराना, जंगली हाथियोंको पकड़वाना और खानोंसे रत्न निकलवाना इत्यादि कामोंका निर्देश है। उससे उनके संबंधमें यह कल्पना की जा सकती है (रघु. १६, २, १७, ६६)।

यज्ञकर्म—कालिदासके समयमें, 'देवता यज्ञोंसे सन्तुष्ट होते हैं' (रघु. १, ६२) ऐसी लोगोंकी धार्मिक श्रद्धा होनेके कारण राजा लोग समयपर अनेक यज्ञ किया करते थे। दक्षिणमें आन्ध्रों तथा वाकाटकोंने आप्तोर्याम, अग्निष्टोम इत्यादि अनेक यज्ञ किये थे, इसका उल्लेख उत्कीर्ण लेखोंमें मिलता है। कालिदासने भी अपने काव्योंमें दिलीप, रघु इत्यादि राजाओंके यज्ञोंका वर्णन किया है। राजा दिलीप यज्ञद्वारा स्वर्गका और इन्द्र वृष्टिद्वारा मर्त्यलोकका पालन करते थे। (रघु. १)। वसिष्ठके आश्रमको जाते समय स्वतः याज्ञिकोंको दिए हुए ग्रामोंमें दिलीपको यज्ञस्तम्भ खड़े हुए दीख पड़े—ऐसा वर्णन कालिदासने किया है। इससे राजा लोग यज्ञकर्मके उपलक्षमें विद्वान् और धार्मिक ब्राह्मणोंको अग्रहार दिया करते थे इसका पता चलता है।

इसके अतिरिक्त राजाको धर्मसंरक्षण, न्यायदान इत्यादि कर्तव्य करने पड़ते थे। लोगोंके द्वारा, स्मृतियोंके अनुसार, वर्णाश्रम–धर्मका आचरण करवाना राजाका कर्तव्य था। वह किसीको भी स्वजातिविहित कर्म छोड़कर परजातिके कर्म नहीं करने देता था। स्वयं राजाको लोगोंकी शिकायतें सुनकर निष्पक्षपात रीतिसे वादी प्रतिवादीका जिससे समाधान हो, इस तरहका न्याय करना चाहिए ऐसा कालिदासने कई जगह सूचित किया है। दिलीप हमेशा गुणोंकी कद्र किया करता था। सज्जन मनुष्य अपना शत्रु हो, फिर भी उसे वह सम्मान देता था और अपना निकटसे निकट सम्बन्धी क्यों न हो अगर वह दुर्गुणी हो तो उसका त्याग कर देता था। अपराधके अनुसार सजा देकर रघुने सब लोगोंका मन आकर्षित कर लिया था, इत्यादि वर्णनोंसे उन राजाओंकी न्यायप्रियता और निष्पक्षपातका महत्त्व कालिदासने दिखाया है।

'रघुवंशमें' राजालोग संरक्षण, शिक्षण, पोषण इत्यादि विविध प्रकारसे अपनी प्रजाका पालन करते थे, और वे ही प्रजाके सच्चे पिता समझे जाते थे—इस तरहका कालिदासने स्थान स्थानपर वर्णन किया है। प्रजाके दुःखोंका कारण

खोजकर उन्हें दूर करनेमें हमेशा लगे रहनेसे राम अपनी प्रजाको पुत्र की तरह प्रिय हो गये थे। 'तेनास लोकः पितृमान् विनेत्रा तेनैव शोकापनुदेन पुत्री।' (रघु. १४, २३)। "जब तक पासमें खूब सम्पत्ति रहती है तब तक मनुष्यको भाई बन्धु घेरे रहते हैं, परन्तु जब वह नष्ट हो जाती है तब वे ही बन्धु तीन तेरह हो जाते हैं। राजा, तू ही सदैव लोगोंके काम आता है, इसलिए तुझमें बन्धुत्वका भाव अपनी पराकाष्ठाको पहुँच गया है" इस प्रकार वैतालिकका कथन दुष्यन्तके चरित्रसे अक्षरशः सत्य मालूम होता है। इस प्रकार आठों प्रहर प्रजाके कल्याणकी चिन्ता रखनेवाला राजा एक प्रकारसे कठिन तपश्चर्या करता था। इसीलिए उसको 'राजर्षि' की पदवी शोभा देती थी। यह बात कालिदासने निम्न-लिखित श्लोकमें बतलाई है।

अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाप्याश्रमे सर्वभोग्ये
रक्षायोगादयमपि तपः प्रत्यहं सञ्चिनोति।
अस्यापि द्यां स्पृशति वशिनश्चारणद्वन्द्वगीतः
पुण्यः शब्दो मुनिरिति मुहुः केवलं राजपूर्वः॥
शाकु. २, १४.

प्राचीन कालमें दूसरे राजाओंको जीतकर स्वयं चक्रवर्ती होनेकी महत्त्वाकांक्षा प्रत्येक राजाको होती थी। अन्य राजा उसका सार्वभौमत्व स्वीकार करें, इसके लिए राजा दिलीपने ९९ अश्वमेध यज्ञ तथा रघुने दिग्विजय किया था। इस दिग्विजयमें रघुने अनेक राजाओंको परास्त कर दिया था। कई एक राजा युद्धमें मारे गए, तथापि उनके राज्योंको हड़प न कर उनसे सिर्फ कर लिया तथा मृत राजाओंके उत्तराधिकारियोंको गद्दीपर बिठाया। शत्रुपर विजय प्राप्त करना गौतम–धर्मसूत्रमें क्षत्रियोंका कर्तव्य बतलाया गया है, परन्तु यह विजय पराए राज्योंको लोभसे हड़प लेनेके लिए नहीं होती थी किन्तु निर्बलोंकी रक्षा और दुर्जनोंका नाश करके पृथ्वीपर धर्मराज्य स्थापित करनेके लिए तथा अश्वमेध, राजसूय, विश्वजित् जैसे बड़े बड़े यज्ञोंसे देवताओंको सन्तुष्ट करनेके लिए थी। अतः कालिदासने जगद्विजयी रघुको 'धर्मविजयी' यह सार्थक विशेषण दिया है (रघु. ४, ४३)। ईसाकी पहली तीन शताब्दियोंमें शक तथा कुशानवंशी विदेशी राजाओंसे टक्कर लेकर हिन्दूधर्मको पुनरुज्जीवित करनेकी शक्ति भारतवर्षके छोटे छोटे राज्योंमें नहीं थी। यह काम दिग्विजयी समुद्रगुप्त तथा द्वितीय चन्द्र-गुप्तने किया। चक्रवर्तीका आदर्श कवि अच्छी तरह जानता था, इसलिए उसने अपने ग्रन्थोंमें उस आदर्शकी गहरी छाप लगा दी है।

शिक्षा — कालिदासके ''विक्रमोर्वशीय', 'शाकुन्तल' तथा 'रघुवंश' में आश्रमोंकी परिस्थितिका वर्णन किया गया है तथा 'मालविकाग्निमित्र' में भी शिक्षाविषयक विचार आए हैं। उनसे हम कविके शिक्षासंबंधी सिद्धान्तोंको समझ सकते हैं। 'मालविकाग्निमित्र' में मालविकाका नाटचप्रयोग राजाके सामने होना चाहिए, इस उद्देश्यसे विदूषकने वह प्रसंग लाकर उपस्थित कर दिया है। उस प्रसंगमें परिव्राजिका आदिके भाषणोंमें आए हुए शिक्षाविषयक विचारोंके आपाततः एकांगी मालूम होनेसे वे स्वयं कालिदासके न होंगे ऐसी शंका होना सम्भव है। तथापि यदि वे सचमुच वैसे होते तो धारिणीने अवश्य उनके विरुद्ध आक्षेप किया होता। एक दो स्थलोंपर जहाँ मतभेदके लिए स्थान था वहाँ उसने आक्षेप उठाया ही है। इससे हम अनुमान कर सकते हैं कि उस प्रवेश में कालिदासने अपने सर्वसम्मत शिक्षाविषयक विचार उल्लिखित किए हैं।

कालिदासके ग्रन्थोंमें, तपोवनमें ऋषियोंके आश्रमोंकाही शिक्षाके मुख्य केन्द्रके रूपमें वर्णन किया गया है। ये आश्रम बहुधा बड़े बड़े नगरोंसे बहुत दूर किसी नदीके तटपर हुआ करते थे। 'शाकुन्तल' में कण्वका आश्रम दुष्यन्तकी राजधानीसे इतना दूर था कि वहाँ तक पहुँचनेमें कई दिन लग जाते थे और वह हिमालयकी उपत्यकामें मालिनी नदीके तटपर स्थित था,। 'रघुवंश' में वसिष्ठाश्रम तक पहुँचनेके लिए दिलीपको लगभग दिवसभर रथमें प्रवास करना पड़ा था। 'विक्रमोर्वशीय' में ऋषि च्यवनका आश्रम राजधानीसे दूर नहीं था, कारण वहाँसे राजधानीमें आनेके लिए तापसी और राजकुमार आयुको देर नहीं लगी। इसके सिवाय संपन्न लोग घरोंमें ही शिक्षक रखकर अपने बालकोंको विविध विद्याओं और कलाओंकी शिक्षा देते थे। रघु, पार्वती आदिको घर ही पर विविध विषयोंके योग्य शिक्षक रखकर शिक्षा दिलाई गई थी। मालविका तथा इरावतीको नृत्य–गायन आदिकी शिक्षा देनेके लिए राजमहलोंमें नाटचाचार्य नियुक्त किये गए थे। कहीं कहीं पिता पुत्रको और पति पत्नीको कुछ विषयोंकी शिक्षा दिया करता था। रघुने अपने पिता दिलीपसे धनुर्विद्या प्राप्त की थी। इन्दुमती अपने पति अजकी ललितकलायें सीखनेवाली प्रिय शिष्या थी।

आश्रमोंमें बालकोंकी तरह बालिकाओंको भी शिक्षा दी जाती थी। प्राचीन कालमें गृहस्थाश्रमके कर्तव्योंको पूरा कर लोग वानप्रस्थ बनकर तपश्चर्याके लिए किसी तपोवनमें चले जाते थे उस समय उनके साथ छोटे छोटे बालक भी रहते थे। मारीच आश्रममें सर्वदमनको देखनेपर तथा यह पुरुवंशी संतान है ऐसा समझनेपर दुष्यन्तको वह किसी वानप्रस्थी पौरव राजाका कुमार होगा, ऐसा मालूम

हुआ था। 'फूल फल तथा देवताओंके नैवेद्यके लिए उपयुक्त वन्य नीवार धान्य लाकर तथा मीठे मीठे बचन बोलकर ये मुनिकन्यायें तेरे दुःखका परिहार करेंगी' –ऐसा कहकर वाल्मीकि ऋषिने वनमें परित्यक्त सीताको सान्त्वना दी थी। 'शाकुन्तल' की प्रियंवदा, अनसूया और शकुन्तला आश्रममें ही बड़ी हुईं और वहींपर उन्होंने शिक्षा पाई थी। बालक–बालिकाओंकी एक ही शिक्षा होती थी या उनके अलग अलग वर्ग थे, इसका कालिदासके ग्रन्थोंमें उल्लेख नहीं मिलता। फिर भी उनके बाद ३०० वर्षके पश्चात् उत्पन्न हुए भवभूतिके 'उत्तररामचरित' में आत्रेयी, लव और कुशका कुछ समय तक सहशिक्षण दिखलाया गया है। इससे कालिदासके समयमें भी वही पद्धति प्रचलित होगी ऐसा प्रतीत होता है।

इन आश्रमोंमें सामान्यतः उपनयन संस्कार होनेपर अर्थात् आठवें वर्षसे बालक लिए जाते थे तथा वहाँ उनकी शिक्षा सोलहसे लेकर बीस वर्षकी अवस्था तक होती थी। 'विक्रमोर्वशीय' में आयु नामक राजकुमार आश्रमकी शिक्षा समाप्त करते समय कवच धारण करने योग्य हो गया था—ऐसा कविने वर्णन किया है। उससे ऐसा मालूम होता है कि उस समय उसकी अवस्था १६–१७ वर्षकी होगी। ब्राह्मण वर्णमें बुद्धिमान् विद्यार्थीको चौदहों विद्याओंका अभ्यास करना पड़ता था, इसलिए उसे अध्ययन करनेमें अधिक वर्ष लगते थे। शकुन्तला और उसकी सखियाँ वयस्क होने तक आश्रममें ही रही थीं, और शकुन्तलाके जानेके अनन्तर कण्वने तुरन्त ही उनका विवाह करनेका निश्चय किया था। हारीतधर्मसूत्रमें आश्रममें शिक्षा पानेवाली विद्यार्थिनियोंके सद्योवधू (विवाहयोग्य) तथा ब्रह्मवादिनी इस प्रकारके दो भेद वर्णन किये हैं। इनमेंसे पहले वर्गकी कन्याओंकी शिक्षा समाप्त होनेपर विवाह होता था और दूसरे वर्गकी कन्यायें आजीवन आश्रममें ब्रह्मचर्य व्रत पालन करके रहती थीं। ऐसी ही परिस्थिति कालिदासके समयमें भी रही होगी। इसलिए दुष्यन्तने शकुन्तलाकी सखियोंसे यह प्रश्न किया था कि तुम्हारी यह सखी विवाह पर्यन्त वैखानस व्रतका आचरण करती रहेगी या आजीवन हरिणियोंके सहवासमें ही रहेगी।

आश्रमोंका जीवन बहुत ही सादा था। रहनेके लिए घास, फूस अथवा वृक्षोंके पत्तोंसे बनी हुई पर्णशाला, पहिननके लिए वल्कल, भोजनके लिए बिना जोती हुई भूमिमें उत्पन्न हुए नीवार धान्यके पदार्थ, वन्य फल और कन्दमूल, सोनेके लिए दर्भकी शय्या अथवा मृगचर्म, ऐसी आश्रमोंमें व्यवस्था थी। (रघु. १९,५; १४,८१)। रातमें दीपकके लिये इंगुदीका तेल काममें आता था। जख्मोंपर भी औषधिके रूपमें उसका उपयोग होता था। (शाकु. ४, १४)। 'पश्चिमा-

द्यामिनीयामात्प्रसादमिव चेतना' (रघु. १७, १०) कालिदासकी इस उपमाके अनुसार उषःकालके समय बुद्धि प्रसन्न होती है। इसलिए उस पहरमें उठ कर विद्यार्थी अध्ययनमें लग जाते थे। इनके अध्ययनसे दिलीपको प्रभात होनेकी खबर लगी थी, ऐसा 'रघुवंश' में वर्णन आया है। प्रातःकाल और सन्ध्याकालमें समिधा, कुश, फल आदि लानेके लिए तपस्वी तथा विद्यार्थी तपोवनसे बाहर जाते थे। स्त्रियोंको तथा विद्यार्थिनियोंको समीपस्थ नदियोंसे अथवा जलाशयोंसे गृहकृत्यके लिए अथवा वृक्षोंमें पानी देनेके लिए जल लाना पड़ता था। प्रातःकाल और सायं-काल अग्निपूजन तथा होम होता था (रघु. १, ५३)।

आश्रमोंमें सदैव शान्तिमय वातावरण होनसे वहाँके पशु पक्षियोंपर भी उसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता था। वाल्मीकिके आश्रममें सब प्रकारके प्राणी तपस्वियोंके संसर्गमें आनेके कारण शान्त स्वभावके हो गये थे, ऐसा कालिदासने कहा है। आश्रमोंमें किसी भी प्राणीकी हत्या न होनेका कड़ा नियम था। शिकार करते करते दुष्यन्त कण्वके तपोवनके समीप जाकर पहुँचा। वहाँ एक हरिण उसके सामनेसे गुजरा ही था कि उसे वह बाणसे मारनेको तैयार हो गया। इतनेमें समिधा लानेवाले तपस्वी बीचमें आ पड़े और उन्होंने राजासे यह कहकर कि 'यह आश्रमका मृग, है, अतएव अवध्य है' बाणको पीछे तरकशमें रख लेनेकी प्रार्थना की। राजाने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली, ऐसा प्रसंग 'शाकुन्तल' में आया है। 'विक्रमोर्वशीय' में ऋषिकुमारोंके साथ फूल, समिधा वगैरह लेनेके लिए गए हुए राजकुमार आयुने संगमनीय मणि लेकर जानेवाले गीधको बाण मार कर नीचे गिरा दिया, यह आश्रमके नियमविरुद्ध होनेसे ऋषि च्यवनने एक ताप-सीके साथ उसे उसके संबंधियोंके पास भेज दिया। इससे पता चलता है कि आश्रमोंमें इस नियमका पालन कितनी कड़ाईसे किया जाता था।

आश्रमोंमें ब्राह्मण बालकोंको चौदहों विद्याओंकी शिक्षा मिलती थी। उन विद्याओंका उल्लेख पहले आ चुका है। क्षत्रिय कुमारोंको अनिवार्य रूपसे धनु-र्वेदकी शिक्षा आश्रमोंमें दी जाती थी, वह बात 'विक्रमोर्वशीय' से मालूम होती है। स्त्रियोंको लिखना, पढ़ना, चित्रलेखन, संगीत, गृहकृत्य इत्यादि विषयोंकी शिक्षा दी जाती थी, यह 'शाकुन्तल' में शकुन्तला तथा उनकी सखियोंके भाषणसे स्पष्ट होता है। जो स्त्रियाँ सांसारिक बातोंमें पड़ना चाहती थीं उन्हें उद्यानक-लाकी शिक्षा अवश्य मिलनी चाहिए, ऐसा कालिदासका अभिप्राय मालूम पड़ता है। वृक्षोंको ठीक समय पर पानी देकर उनकी देखरेख करनेसे स्त्रियोंके हृदयमें अप्रगट रूपसे धीरे धीरे अपत्यवात्सल्यका अंकुर उत्पन्न होता है, ऐसा उन्होंने

अनेक जगह वर्णन किया है। तपश्चर्या करते समय पार्वतीने जिस वृक्षको पानी देकर बड़ा किया था उसपर उनको अपने पुत्र कार्तिकेयसे भी अधिक प्रेम हो गया था। उठा सकने योग्य घड़ों द्वारा आश्रमके छोटे छोटे वृक्षोंमें पानी डालनेसे पुत्रोत्पत्तिके पहले ही तुझे सन्तानप्रेमका अनुभव होगा, ऐसा वाल्मीकिने सीतासे कहा था। कुछ स्त्रियाँ पुरुषोंकी तरह, अन्य विद्याओंका भी अभ्यास करती थीं। 'मालविकाग्निमित्र' में परिव्राजिका इसी तरहकी विविध–विद्या–पारंगत विदुषी दीखती है।

'यतस्त्वया ज्ञानमशेषमाप्तं लोकेन चैतन्यमिवोष्णरश्मेः' इस श्लोकमें कालिदासने अज्ञानका नाश कर मनुष्यको नवीन दृष्टि देनेवाले शिक्षकको रात्रिका अन्धकार दूर कर सारे विश्वमें चैतन्य उत्पन्न करनेवाले सूर्यकी उपमा दी है। इससे यह भी मालूम होता है कि कालिदासकी सम्मतिमें समाजमें शिक्षकवर्गको कितना उच्च सम्मान प्राप्त होना चाहिए। सच्चा शिक्षक ही विद्याद्वारा निष्ठापूर्वक अध्यापनका कार्य करता है। जो सिर्फ पेट भरनेके लिए ही विद्याका उपयोग करता है उसको ज्ञानरूपी माल–मसाला बेचनेवाला बनिया कहते हैं। (यस्यागमः केवलजीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति), इस प्रकारकी स्पष्टोक्ति उन्होंने 'मालविकाग्निमित्र' में की है। सभी शिक्षक समान योग्यतावाले नहीं होते। कुछका ज्ञानभंडार बहुत विशाल होता है, परन्तु उनसे अपनी विद्या शिष्यको देना सधता नहीं। कुछ शिक्षक टुटपुँजिए—बहुत ही सीमित ज्ञानवान्—होते हैं, फिर भी उनका सिखानेका ढंग अच्छा होता है। ये दोनों गुण जिसमें एक साथ हों उसीको सब शिक्षकोंमें श्रेष्ठ समझना चाहिए। ऐसा स्वानुभव कालिदासने 'शिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता। यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव॥' (माल. १, १६) इस श्लोकमें स्पष्ट कर दिया है।

विद्यार्थियोंके मनकी लगन, बुद्धि, पात्रता इत्यादि देखकर उसके योग्य विषयको चुननेमें शिक्षकका कौशल है। यदि ऐसी सावधानी पहले ही से की जाय तो विद्यार्थियोंका तथा शिक्षकोंका परिश्रम व्यर्थ नहीं जाता। ऐसे विद्यार्थियोंको परीक्षाके हालकी यात्रा नहीं करनी पड़ती, यह सिद्धान्त आजकल सर्वमान्य हो चुका है। इसीको कालिदासने अपने 'मालविकाग्निमित्र' के पात्रोंके संभाषणमें कहलाया है। दोनों नाटयचार्योंको अपनी अपनी शिष्यासे नाटयकी परीक्षा दिलवा कर अपनी शिक्षा–निपुणता दिखलानी चाहिए, ऐसा परिव्राजिकाके सूचित करने पर धारिणी कहती है–'अगर कोई विद्यार्थिनी मन्दबुद्धि हो और वह सिखाई हुई विद्याको क्रियात्मक रूप न दे सके तो उसका दोष शिक्षकके मत्थे मढ़ा

जाना चाहिए क्या?' इसपर विदूषक उत्तर देता है, 'शिक्षाके लिए अयोग्य विद्यार्थिनीको चुननेमें शिक्षकका मन्दबुद्धित्व प्रगट होता है।' अन्यत्र कविने 'क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति'। (रघु. ३, २९) योग्य विद्यार्थी देखकर शिक्षा देनेसे वह फलदायी होती है, ऐसा कहा है।

उपर्युक्त प्रवेशमें कालिदासने विद्यार्थियोंके लिए कुछ सूचनायें दी हैं। 'अपरिनिष्ठितस्योपदेशस्यान्याय्यं प्रकाशनम्' ली हुई शिक्षा पूरी तरहसे आत्मसात् हुए बिना परीक्षामें बैठनेसे विद्यार्थीको हानि होती है, साथ ही अध्यापकके प्रति भी अन्याय होता है। वर्तमान कालमें परीक्षा पास कर लेने पर ही सारी सफलता निर्भर है और अधिकांशमें विद्यार्थियोंके लिए परीक्षा लाटरीकी तरह हो गई है। यह भ्रम सर्वत्र फैलनेके कारण बहुतसे विद्यार्थी आजकल सन्तोषदायक तैयारी न होते हुए भी परीक्षामें यों ही बैठ जाते हैं। यदि कभी पास भी हो गये तो उनको वह मिला हुआ ज्ञान अच्छी तरह आत्मसात् नहीं होता, इस कारण आगेकी श्रेणियोंमें या व्यवहारमें वे उसका कुछ भी उपयोग नहीं कर सकते। उसी तरह सिर्फ रट रट कर कोई विद्या हस्तगत नहीं होती, मन लगाकर उसका अभ्यास करना पड़ता है, यह 'विद्यामभ्यसनेनेव प्रसादयितुमर्हसि' (रघु. १, ८८) इस श्लोकमें कविने सूचित किया है।

शिक्षकों और विद्यार्थियोंकी तरह ही परीक्षा लेनेवाले विश्वविद्यालयों और मण्डलोंको भी कुछ उपयुक्त सूचनाएँ उक्त प्रवेशमें मिलती हैं। 'हरदत्त तथा तथा गणदासके झगड़ेका निपटारा आपको करना चाहिए' ऐसा राजाके परिव्राजिकासे कहते ही वह हँसकर कहती है—'यह दिल्लगी रहने दीजिए। समीपमें नगरके रहते हुए रत्नकी परीक्षा क्या कोई गाँवमें करेगा?' इसपर राजा कहता है— 'आप विदुषी और मध्यस्थ हैं। मैं और रानी दोनों पक्षपाती हैं।' इसमें कालिदासने यह बात सूचित की है कि ऐसे परीक्षकोंको कभी नियुक्त न करे जो विद्यार्थियोंके सगे-सम्बन्धी हों या उनके पास होनेमें उनका कुछ हितसम्भव हो। साथ ही कविने आगे चलकर यह भी कहा है कि 'सर्वज्ञस्याप्येकाकिनो निर्णयाभ्युपगमो दोषाय' परिव्राजिकाकी इस उक्तिमें एक ही परीक्षकके मतपर परीक्षाका परिणाम निर्धारित रखनेसे विद्यार्थीके प्रति अन्याय हो सकता है, इसलिए परीक्षामें दो या उससे अधिक परीक्षकोंको नियुक्त करना चाहिए। इस प्रकारकी व्यवस्था करनेसे अन्यायकी सम्भावना नहीं रहती है। यह पद्धति आजकल सर्वसम्मत हो चुकी है। चित्रलेखन, नृत्य, गीत इत्यादि जितनी प्रयोग-प्रधान कला और विद्याएँ हैं। उनकी केवल पुस्तकी शिक्षा पूर्ण न मानकर प्रत्यक्ष प्रयोग देखकर

ही परीक्षकोंको विद्यार्थीकी योग्यताका निर्णय करना चाहिए। यह सिद्धान्त भी कविने इस प्रवेश में दिखलाया है।

प्रसंगानुसार कालिदासने शिक्षाके हेतुका उल्लेख किया है, उसका विचार करके हम इस प्रकरणको समाप्त करेंगे । शिक्षाका ध्येय अनेकोंने अनेक तरहसे वर्णन किया है। जिसके द्वारा शरीर सुदृढ़, वाणी प्रगल्भ और मन सुसंस्कृत हो उसीको कुछ लोग सच्ची शिक्षा कहते हैं। दूसरोंकी सम्मतिमें जिसके द्वारा विद्यार्थी उत्तम नागरिक बने वही शिक्षा है। कालिदासने 'सम्यगागमिता विद्या प्रबोधविनयाविव' इस उपमामें प्रबोध अर्थात् ज्ञानप्राप्ति तथा विनय अर्थात् शीलसम्पन्नता इन दोनोंको ही विद्याका उद्देश्य बतलाया है। केवल ज्ञानसे मनुष्य श्रेष्ठ नहीं होता। साथ ही उसे सच्छील होना चाहिए, यह बात उन्होंने उक्त उपमामें सूचित की है। विद्याकी अच्छी तरह उपासना करनेसे ये दोनों उद्देश्य सफल होते हैं। परीक्षाके लिए नियुक्त पुस्तकोंको रटकर नियत समयपर परीक्षा पास करनेसे शीलकी परीक्षा तो दूर रही, ज्ञान तक हाथ नहीं लगता, यह आजकलका भी अनुभव है। ज्ञानसे संसारमें मनुष्यके सुखसाधन बढ़ते हैं। शीलके न होनेसे मनुष्यके स्वभावमें लोभ, मात्सर्य, द्वेष इत्यादि दुष्ट मनोविकारोंकी वृद्धि होकर संसारमें सर्वत्र कलह, युद्ध तथा रक्तपात दिखाई देते हैं। इसीलिए कालिदासने ज्ञानके उद्देश्योंमें प्रबोधके साथ साथ विनयका भी उल्लेख किया है।

९-कालिदास और उत्तरकालीन ग्रन्थकार

ख्यातः कृती सोऽपि च कालिदासः शुद्धा सुधा स्वादुमती च यस्य।
वाणीमिषाच्चण्डमरीचिगोत्रसिन्धोः परं पारमवाप कीर्तिः।।

सोड्ढलकृत उदयसुन्दरीकथा।

(धन्य हैं वे कवि कालिदास जिनकी कीर्ति कविताके समान दोषरहित, अमृततुल्य और मधुर है। उनकी वाणी जैसे सूर्यवंशका पूर्ण वर्णन कर सकी वैसे ही उनकी कीर्ति भी समुद्रके पार पहुँची है।)

मालूम होता है कि कालिदासके जीवनकाल में ही उनके सुधामधुर ग्रन्थोंकी प्रशंसा और प्रसिद्धि सर्वत्र फैल गई थी। दानशूर गुप्त सम्राट्के आश्रयसे कीर्तिके साथ साथ धन–दौलत भी उनको खूब मिली थी। अतः भवभूतिकी तरह उन्होंने 'उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा कालो ह्ययं निरवधिर्विपुलाच पृथ्वी।" * इस तरह असन्तोषके और अपने समकालीन विद्वान् लोगोंके सम्बन्धमें तुच्छता-दर्शक और अभिमानपूर्ण उद्‌गार उन्होंने कहींपर नहीं निकाले। मृत्युके बाद तो उनकी कीर्ति उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। उनके ग्रन्थोंने आबालवृद्धोंको मोहित कर लिया। उनके बाद ईस्वी सन्‌की छठी शताब्दीसे आज तक प्राचीन और अर्वाचीन कवियोंने जो स्तुतिपुष्पांजलियाँ कालिदासकी प्रशंसामें अर्पण की हैं उनमें से कुछ सूक्तियाँ इस ग्रन्थके अन्तमें संकलित की गई हैं। परन्तु प्रत्यक्ष प्रशंसाके उद्‌गारोंकी अपेक्षा उत्तरकालीन ग्रन्थकारोंने कालिदासके ग्रन्थोंकी कल्पनाओं और वर्णित प्रसंगोंका अनुकरण कर एक प्रकारसे जो उनकी श्रेष्ठता स्वीकार की है उसका महत्त्व विशेष है। क्योंकि उससे उनके ग्रन्थोंकी लोकप्रियता और सार्वजनिक प्रचारकी कल्पना सहजमें ही हो जाती है। हम पीछे बतला चुके हैं कि कालिदासकी मृत्युके अनन्तर शीघ्र ही रची हुई वत्सभट्टिकी मन्दसोरवाली प्रशस्तिमें उनके 'ऋतुसंहार' और 'मेघदूत' काव्योंकि कल्पनाओंका स्वच्छ प्रतिबिम्ब किस खूबीसे झलका है। ईसाकी छठी शताब्दीमें गयाके समीप नागार्जुन पहाड़ीके ऊपर गुफामें खुदे हुए अनन्तवर्मानामक मौखरी राजाके लेखमें

---

* अर्थ—कभी न कभी तो कहीं कोई मेरे ग्रन्थोंका सहानुभूतिपूर्ण समालोचक उत्पन्न होगा या अब भी पृथ्वीतलपर विद्यमान होगा, क्योंकि काल अनन्त और पृथ्वी विशाल है।

'यस्याहूतसहस्रनेत्रविरहक्षामा सदैवाध्वरैः, पौलोमी चिरमश्रुपातमलिनां धत्ते कपोलश्रियम् ।।' इस श्लोकमें 'रघुवंश' के (६, २३) श्लोककी नकल स्पष्ट मालूम होती है। ईसाकी ७ वीं शताब्दीमें भट्टि-काव्यमें और ऐहोलेकी रविकीर्तिकृत प्रशस्तिमें कई स्थलोंपर कालिदासकी कल्पनाओंकी प्रतिध्वनि सुननेमें आती है। इस शताब्दीमें कालिदासकी कीर्ति भारतवर्षमें ही नहीं, हिन्दुस्तानके बाहर समुद्र पार तक फैल गई थी। क्योंकि उस शताब्दीमें कम्बोडियामें खुदे हुए भववर्माके निम्नलिखित दो श्लोकोंमें कालिदासकी कल्पना स्पष्ट प्रतिबिम्बित दीखती है —

शरत्कालाभियातस्य परानावृततेजसः ।
द्विषामसह्यो यस्यैव प्रतापो न रवेरपि ।।
यस्य सेनारजोधूतमुज्झितालंकृतिष्वपि ।
रिपुस्त्रीगण्डदेशेषु चूर्णभावमुपागतम् ।। *

उत्तरकालीन ग्रंथकारोंने कालिदासके ग्रंथोंसे कुछ रमणीय कल्पनायें ही नहीं ली हैं किन्तु उनके ग्रंथोंकी अनेक घटनायें भी कालिदासकी घटनाओंसे मिलतीजुलती हैं। संस्कृतके नाटचसाहित्यमें कालिदासके बाद भवभूतिका स्थान है। किंबहुना ऐसी जनश्रुति है कि ये दोनों कवि समकालीन और परस्पर प्रतिस्पर्धी थे। परन्तु इन कवियोंके समय निर्णय करनेसे यह कल्पना निराधार मालूम पड़ती है। इतना ही नहीं बल्कि यह भी सिद्ध होता है कि भवभूतिने कालिदासके नाटकोंका बहुत सूक्ष्म रीतिसे अनुशीलन कर उनमेंसे अनेक मनोहर कल्पनाओं, शब्द-प्रयोगों और मार्मिक घटनाओंका अपने नाटकोंमें अच्छी तरह उपयोग किया है। 'मालतीमाधव' में मालतीका मन आकृष्ट करनेके लिए कामन्दकी दुष्यन्तशकुन्तला तथा पुरूरवा-उर्वशी—इनकी प्रेमकथाओंका दृष्टान्त देती है। ये दृष्टांत कालिदासके नाटकोंसे भवभूतिको अवगत हुए होंगे। इस नाटकके नवम अंकमें मालतीके एकाएक अदृश्य हो जानेसे माधव उन्मत्त हो जाता है और अपनी प्रियतमाके पास संदेश ले जानेके लिए मेघसे प्रार्थना करता है और हाथी, वायु इत्यादिकोंसे मालतीका समाचार पूछता है। यह कल्पना भवभूतिको कालिदासके 'मेघदूत' और 'विक्रमोर्वशीय' से मिली होगी। 'उत्तररामचरित'के अंतिम अंकमें विविध कारणोंसे कुश-लव अपने ही पुत्र हैं ऐसा विश्वास रामचन्द्रको होता है। यह प्रसंग शाकुन्तलके अंतिम अंकके 'प्रत्यभिज्ञान' प्रसंगकी तरह दीखता है। इसके अतिरिक्त 'गौरीगुरोः पावनाः' ऐसे शब्दप्रयोग भी मिलते हैं। इस तरहकी समानताओंसे,

* देखिए 'रघुवंश' ४, ४९; ४, ४५.

कालिदासकृत काव्य–नाटकोंकी छाप भवभूतिके नाटकोंपर कितनी पड़ी है, इसका अनुमान किया जा सकता है। परन्तु, भवभूतिके नाटक कालिदासके नाटकोंकी हूबहू नकल नहीं हैं। उन नाटकोंकी रचनामें उस विख्यात नाटककारकी निजकी कुछ विशेषतायें हैं। इसके विरुद्ध हर्षकी 'प्रियदर्शिका' और 'रत्नावली,' राजशेखरकी 'कर्पूमञ्जरी' और बिल्हणकी 'कर्णसुन्दरी' नाटिकाओंपर कालिदासके 'मालविकाग्निमित्र' नाटककी पूर्ण रूपसे छाप पड़ी है। इससे यह कहा जा सकता है कि कालिदासके इस नाटकने संस्कृतसाहित्यमें एक विशेष प्रकारके नाटयसम्प्रदायको जन्म दिया। कालिदासके पूर्ववर्ती कवि भासका 'स्वप्नवासवदत्त' भी कुछ अंशोंमें इन नाटकोंसे मिलता–जुलता है। फिर भी उसमें उदयन, वासवदत्ता तथा पद्मावती जैसे प्रधान पात्रोंके समान उदात्त स्वभावके पात्र, हर्ष आदिके नाटकोंमें दिखाई नहीं पड़ते। 'मालविकाग्निमित्र' के अग्निमित्र, धारिणी, इरावती, मालविका जैसे पात्रोंको उत्तरकालीन नाटककारोंने अपनी अपनी रचनाओंमें चित्रित किया है। उन नाटकोंकी रचना 'स्वप्नवासवदत्त' के समान न होकर 'मालविकाग्निमित्र' के अनुसार है। इससे यह सिद्ध होता है कि उन नाटककारोंने कालिदासके नाटकोंको ही आदर्श माना था।

इन सब नाटकोंको अन्तःपुरकी घटनाओंके आधारपर खड़ा किया गया है। उनमें नायकका स्वच्छन्द रूपसे एक अन्तःपुरवासिनी राजकन्यापर आसक्त होना, विवाहिता रानीका ईर्ष्यावश होकर उस प्रेममें बाधा डालना, आगे किसी निमित्तसे उस राजकन्याका पूर्ववृत्त प्रगट हो जाने पर राजासे उसका विवाह होना–इत्यादि कल्पनाएँ सभीमें किसी न किसी रूपमें विद्यमान मालूम होती हैं। नाटकके अन्तमें राजाको खबर मिलती है कि उसकी सेनाने शत्रुपर विजय पाई। परन्तु इस घटनाका संविधानक (कथावस्तु) से जैसा घनिष्ठ संबंध भास तथा कालिदासके नाटकोंमें दीख पड़ता है वैसा अन्य नाटकोंमें नहीं दीख पड़ता। किंवहुना प्रतीत होता है की बिल्हण और राजशेखरके आश्रयदाता राजा ही उन के नाटकोंके नायक हैं। इसलिए उनके विजयोत्सव या विवाहोत्सवपर उन नाटिकाओंकी रचना राजाकी आज्ञासे हुई, प्रतीत होती है। इन नाटिकाओंमें विजय और विवाहका वादरायण संबंध प्रदर्शित किया गया है। इससे उनके संविधानकोंमें कार्यैक्य (unity of action) नहीं दीख पड़ता। पात्रोंके चरित्र–चित्रण और भाषा–सौन्दर्यमें भी ये नाटक–नाटिकाएँ 'मालविकाग्निमित्र' की अपेक्षा निम्नश्रेणीकी हैं।

कालिदासने नाटच–साहित्यकी तरह ही काव्य–साहित्यमें भी एक खास सम्प्रदायकी स्थापना की है। उनका नितान्त रमणीय 'मेघदूत' काव्य लोगोंको

इतना पसन्द आया कि अन्य अन्य कवि भी उसीका अनुकरण करने लगे और सौ डेढ़सौ वर्षोंके भीतर ही वायुदूत, भ्रमरदूत, हारीतदूत, चक्रवाकदूत आदि अनेक दूतकाव्योंका निर्माण हुआ। ये काव्य अब उपलब्ध नहीं हैं, तथापि ईसाकी छठी शताब्दीमें वर्तमान भामह नामक काश्मीरी आलंकारिक ग्रन्थकारने अपने ग्रन्थोंमें ऐसे दूतकाव्योंपर बड़ी कड़ी टीका-टिप्पणी की है। इससे यह अनुमान होता है कि भामहके समयमें ऐसे दूतकाव्य रहे होंगे। भामहकी कड़ी आलोचनाकी परवाह न करके उत्तरकालीन कवियोंने दूतकाव्योंकी रचना जारी रक्खी। सम्प्रति ऐसे लगभग पचास दूत-काव्य उपलब्ध अथवा नाममात्रसे परिचित हैं। उनमेंसे बहुतसे ईसाकी ११ वी शताब्दीके बादके हैं। इन काव्योंमें उद्धव सदृश मनुष्य; शुक, कोकिल, चातक, चक्रवाक जैसे पक्षी; चन्द्र, पवन जैसे अचेतन पदार्थ; और मन, भक्ति सदृश अमूर्त कल्पनाओंको दूत बनाकर उनके द्वारा काव्यके नायक-नायिकाओंने एक दूसरेको संदेश भेजे हैं। इनमेंसे अधिकांश विप्रलम्भ-शृङ्गारात्मक होनेसे 'मन्दाक्रान्ता' वृत्तमें ही रचे हुए हैं। इनमें अनेक स्थानोंपर मेघदूतकी कल्पना और पदोंका उपयोग दीख पड़ता है। कुछ कवियोंने तो 'मेघदूत' के प्रत्येक श्लोकका चौथा चरण लेकर समस्यापूर्ति करके अपने काव्योंकी रचना की है। इस बातका भी यहाँपर उल्लेख करना आवश्यक है कि आधुनिक कालमें 'मेघदूत' की पूर्ति करनेवाले दो काव्योंकि रचना हुई है। उनमेंसे 'मेघप्रतिसन्देश' नामक एक दूतकाव्यम, यक्षपत्नीने अपने प्रियतमको मेघके द्वारा संदेश भेजा है। दूसरे 'मेघदौत्य' नामक काव्यमें इस तरहका कथाभाग है कि यक्षपत्नीने कुबेरके समीप मेघके द्वारा अपनी विज्ञप्ति भेज कर अपने प्रियतम यक्षको मुक्त कराया।*

मालूम होता है कि 'मेघदूत' के अत्यन्त लोकप्रिय हो जानेसे वैष्णव और जैन कवियोंने अपने धर्मके सिद्धान्तोंके प्रचारके लिए उसका पूरा पूरा उपयोग किया है। वैष्णव कवियोंने सीता-राम और गोपी-कृष्णकी प्रेमकथाओंको लेकर अपने अपने दूतकाव्य रचे। दूसरी ओर जैन कवियोंके काव्योंमें शान्तरसका साम्राज्य दीख पड़ता है। ईसाकी आठवीं शताब्दीमें 'जिनसेन' नामक एक जैन कविने अपने 'पार्श्वाभ्युदय' नामक काव्यमें 'मेघदूत' की प्रत्येक पंक्ति समस्यापूर्तिके लिए ले ली है। 'मेघदूत' काव्य सम्पूर्ण शृङ्गारका है। उसके प्रत्येक चरणका अपने

* Chintaharan Chakravarti — "The Origin and Development of Dutakavya Literature in Sanskrit" (I.H.Q., Vol. III, pp. 273-293).

तीर्थङ्करके चरित्रमें उपयोग करते समय कविको मतलब निकालनेके लिए कल्पनाओंकी बहुत खींचतान करनी पड़ी है, पर उसने यह काम प्रसन्नताके साथ किया है। इससे मालूम होता है कि कालिदासके काव्योंने लोगोंको कितना मोहित कर डाला था। इतर जैन कवियोंने भी उपर्युक्त कारणोंसे दूतकाव्यके रूपमें अपने आचार्योंको स्ववृत्तविषयक पत्र भेजे हैं।

'मेघदूत' में अनेक देश, नगर, पर्वत, नदी आदिका अत्यन्त रम्य वर्णन आनेसे वह अधिक हृदयंगम हुआ है। कालिदासने स्वयं देशपर्यटन कर अथवा भिन्न भिन्न देशोंके यात्रियोंसे बहुतसी बातें जानकर उनको अपनी इस रचनामें स्थान दिया है, जिससे इसकी ऐतिहासिक महत्ता बढ़ गई है। उनके अनुकरण करनेवालोंमें वैसी सूक्ष्मदर्शिताके न होनेसे उनके बनाये हुए ग्रन्थोंमें ऐतिहासिक महत्त्व नहीं आया है। अधिकांश कवियोंने भौगोलिक उल्लेख छोड़ दिए हैं। अगर किसीने भौगोलिक उल्लेख किए भी हैं तो उल्लिखित स्थलोंका प्रामाणिक वर्णन न होनेसे वे पाठकको भ्रममें डाल देते हैं।

जब कालिदासके ग्रन्थोंका अनुवाद यूरोपीय भाषाओंमें हुआ तब यूरोपीय रचनाओंपर भी उनका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। 'शाकुन्तल' का जर्मन अनुवाद देखकर ही प्रसिद्ध जर्मन कवि गेटेको अपने 'फाउस्ट' नामक जगद्विख्यात नाटकके आरम्भमें संस्कृत नाटककी तरह प्रस्तावना लिखनेकी बात सूझी। दूसरे जर्मन कवि शिलरने 'मेघदूत' पढ़नेके बाद रचे हुए अपने 'Maria Stuart' नामक काव्यमें वन्दीगृहमें पड़ी हुई स्कॉटलण्डकी रानीसे मेघको दूत बनाकर उसके द्वारा स्वदेशको संदेश भेजवाया है।

प्रसिद्ध अंगरेजी दार्शनिक तथा ग्रंथकार कार्लाइलने अपने एक ग्रंथमें एक जगह कहा है कि यदि कभी शेक्सपियर और भारतीय साम्राज्य, इनमेंसे सिर्फ एकको चून लेनेकी जरूरत पडे तो मैं शेक्सपियरकोही पसन्द करूंगा। नियतिने कार्लाइलका मत सत्य किया है। अंग्रेजोंको भारतीय साम्राज्य छोड़ना पड़ा, किन्तु उनका शेक्सपीयर उनसे कोई भी नहीं छीन सकता। कार्लाइलके मतसे यह प्रतीत होता है कि विचारशील लोग अपने राष्ट्रके ग्रन्थकारको कितना महत्त्व देते हैं। समृद्ध और एकधर्मी इंग्लण्ड शेक्सपियरको जितना प्यार करता है और महत्त्व देता है, उससे सौगुना अधिक महत्त्व अनेक जाति-उपजाति, मतमतान्तर और विविध भाषाओंमें विभक्त भारतको अपने कालिदासको देना चाहिए। धर्म, संस्कृति और भाषाकी तरह ही श्रेष्ठ ग्रंथकार भी राष्ट्रके एकीकरणमें और उत्थानमें सहायक होते हैं, इसका उत्कृष्ट उदाहरण कालिदास है। उत्तरमें पंजा-

बसे लेकर दक्षिणमें मद्रास तक और पश्चिममें महाराष्ट्रसे लेकर पूर्वमें वंगाल तक सभी प्रांतोंके विद्वानोंने कालिदासको अपना ही समझकर उसके कालनिर्णयमें, जीवन-चरित्रपर प्रकाश डालनेमें और उनके ग्रंथोंमें भरे हुए गूढ़ रहस्योंको प्रकट करनेमें सहायता दी है। युरोपीय विद्वानोंको भारतीय संस्कृति और संस्कृत भाषाका प्रथम-परिचय कालिदासके 'अभिज्ञानशाकुंतल' से ही हुआ। आज भारतीय लोगोंके पास अभिमानपूर्वक उल्लेखनीय वस्तूओंमें कालिदासकी कृतियोंका समावेश होता है। इंग्लंड का शेक्सपियर, जर्मनीका गेटे और इटलीका डाण्टे—इन महाकवियोंकी तरह भारतके कालिदासको भी संसारकी कविमालामें अत्यन्त प्रमुख स्थान मिला है। ऐसे सर्वश्रेष्ठ महाकविके ग्रंथोंको कौन भारतीय साभिमान होकर नहीं पढ़ेगा ?

—

कालिदासस्तुतिकुसुमाञ्जलिः ।

१ लिप्ता मधुद्रवेणासन् यस्य निर्विषया गिरः ।
तेनेदं कर्म वैदर्भं कालिदासेन शोधितम् ।। दण्डिनः । (षष्ठशताब्दी)

२ निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मन्जरीष्विव जायते ।। बाणस्य । (सप्तमशताब्दी)

३ एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित् ।
शृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ।। राजशेखरस्य । (दशमशताब्दी)

४ अस्पृष्टदोषा नलिनीव दृष्टा हारावलीव ग्रथिता गुणौघैः ।
प्रियाङ्कपालीव विमर्दहृद्या न कालिदासादपरस्य वाणी ।। (श्रीकृष्णकवेः)

५ ख्यातः कृती सोऽपि च कालिदासः शुद्धा सुधा स्वादुमती च यस्य ।
वाणीमिषाच्चण्डमरीचिगोत्रसिन्धोः परं पारमवाप कीर्तिः ।।
सोड्ढलस्य । (एकादशशताब्दी)

६ साकूतमधुरकोकिलविलासिनीकण्ठकूजितप्राये ।
शिक्षासमये ऽपि मुदे रतलीलाकालिदासोक्ती ।। ।
गोवर्धनाचार्यस्य । (द्वादशशताब्दी)

७ काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला ।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम् ।। सुभाषितम् ।

८ पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासा । ।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावात्कनिष्ठिका सार्थवती बभूव ।। सुभाषितम् ।

९ वासन्तं कुसुमं फलं च युगपद् ग्रीष्मस्य सर्वं च यद्
यच्चान्यन्मनसो रसायनमतः सन्तर्पणं मोहनम् ।
एकीभूतमभूतपूर्वमथवा स्वर्लोकभूलोकयो-
रैश्वर्यं यदि वा-छसि प्रियसखे शाकुन्तलं सेव्यताम् ।।
शर्मण्यदेशीय 'गेटे' कवेः । (अष्टादशशताब्दी)

कालिदास प्रति

(भज गोविंदम्)

१

दिव्यो मोही विलसति विटपः कुञ्जो मञ्जुरयं परितः।
त्वमेव तत्र कवीन्द्र! प्रियया यौवनसिंहासने स्थितः।।
जगदिदमखिलं कालिदास! तव मरकतमणिमयपदपीठम्।
बृहन्नभ इदं तवैव मूर्धनि बिभर्ति छत्रं हेममयम्।
ऋतुषड्वर्गच्छलेन नूनं षडिमा वारविलासिन्यः।
भ्रमन्ति कविवर! भवन्तममितः सुललितलीलं नृत्यन्त्यः।।
मधूनि पात्रैः सदा नूतनैश्छ्वि नवनवां बिभ्रन्ति।
तृष्णामभिनवयौवनल्य ते प्रशमयितुं ताः सिञ्चन्ति।।
क्वापि न शोको न वा यातना न कोऽपि जन्तुर्विलोक्यते।
नान्तरेण तव राज्ञी किञ्चित् त्वमेव राजा विराजसे।।

२

कवितावनिताविलास! सम्प्रति कविः केवलं नान्यस्त्वम्।
क्वासौ राज्ञो विदग्धपरिषद्? क्व च भवनं भवतो यातम्।।
क्व गतः सम्प्रति कालिदास! ननु महान् स नृपतिः स्वामी ते।
क्व च सावन्ती! हन्त न लेशः कस्याप्यधुना विलोक्यते।।
शश्वद्दिव्यानन्दस्यन्दिनि कुवेरनगरे कविनृपते।
वसतिं सततं त्वं कृतवानिति लोकः सम्प्रति मन्त्रयते।।
यदाभ्रंलिहे शिखरिशेखरे सान्ध्यं ध्यानादनन्तरम्।
हर्षाकुलहृदयेन भगवता शिवेन ताण्डवमारब्धम्।
वारिपरिप्लुतमेघगर्जनाच्छलेन पटहध्वनिरभवत्।
स्फुरत्कान्तिमद्विद्युद्वलयं तालैस्ताण्डवमनुगतवत्।।
संस्तुतिगीतं त्वं च गीतवान् अन्ते सदयं स्मित्वा स्वम्।
श्रवणभूषणं मयूरपिच्छं गौर्या मूर्धनि ते निहितम्।।

☆ मॉडर्न रिव्ह्यू के जून १९३२ के अंकमें प्रकाशित कवीन्द्र रवीन्द्रकी कालिदास-विषयक कविताका यह संस्कृत अनुवाद मेरे प्रियशिष्य और मित्र श्रीयुत पुरुषोत्तम नारायण वीरकरने किया है।

३

मनोहारिणीं कुमारसम्भवकथां गायता यावत्तौ ।
स्तूयेते स्म कवीश्वर! भवता गौरीगिरिशौ भगवन्तौ ।।
तस्थुः परितः प्रमथाः सर्वे शान्ततमाश्च ततो मन्दम् ।
सायन्तन्यो नीरदमाला आचक्रमिरे गिरिशिखरम् ।।
गगनमण्डले तडिल्लतासौ न विलासं निजमदर्शयत् ।
जलदानां वृन्दोऽपि समर्थो न तत्क्षणे गर्जितुमभवत् ।
कण्ठमुन्नतं निजमवनमयन् कमनीयं च तथा वर्हम् ।
स्कन्दमयूरो देव्यास्तस्थौ गिरिजाया निकटे निभृतम् ।
किमपि चकम्पे क्वचित्सुमन्दस्मितेन देव्या ओष्ठयुगम् ।।
तदनु च शीघ्रं मुक्तवती सा दीर्घमलक्षितनिःश्वासम् ।।
क्षणे च तस्या नयनापाङ्गे जाते बाष्पैः परिलुप्ते ।
व्रीडाकुलसम्भ्रान्तलोचना सपदि स्म च सा विलोक्यते ।।
ततस्तादृशीं देवीं ि:रिजां कविकुलभूपण! विलोकयन् ।
सपदि नीतवान् भवान् विरामं मधुगानं निजमसमाप्तम् ।।

४

सुखदुःखाशानिराशादिभिर्द्वन्द्वैर्वयमिव कदाचन ।
किमभूदभिभूतो न भवानपि कथय कवीश्वर सनातन ।।
उपजापा वा राजकुले किं प्रावर्तन्त न दिवानिशम् ।
प्रवृत्तं च किं हननं नासीत्कृपाणादिभिः प्रच्छन्नम् ।।
निर्घृणार्थितानिकारानयैः किं ते पीडा नैव कृता ।
तीव्रवेदनाकुले त्वयि गता किं वाऽनिद्रा नैव निशा ।।
निखिलमूर्ध्नि तव कविता विमला समुल्ललास स्वच्छन्दम् ।
मन्ये शोभापद्मं विकसितमभिप्रमोदप्रभाकरम् ।।
नैवापत्तिर्न चापि शोकः परमदारुणा न वा व्यथा ।
नैताभिस्ते समवलोक्यते कविता क्वचिदपि कलङ्किता ।।
जीवितसिंधुं प्रमथ्य गरलं प्राणहरं त्वं प्राशितवान् ।
उदीर्णाश्च ये सुधातुषाराः समन्ततस्तान् विकीर्णवान् ।।

रवीन्द्रनाथठक्कुरस्य । (विंशी शताब्दी)

संदर्भग्रंथावलिः

(निम्नलिखित सूचीमें ग्रंथोंके नामके सामने दिये गये कोष्टकवेष्टित संक्षिप्त रूपोंका प्रयोग प्रस्तुत पुस्तकमें किया गया है।)

(अ) कालिदास के ग्रंथ

१ ऋतुसंहार (ऋतु.) (निर्णयसागर प्रेस)

२ कुमारसंभव (कुमार.) (साहित्य अकादेमी)

३ मेघदूत (मेघ.) (साहित्य अकादेमी)

४ रघुवंश (रघु.) (संपादक गो. र. नंदर्गीकर)

५ मालविकाग्निमित्र (माल.) (संपादक शि. मा. परांजपे)

६ विक्रमोर्वशीय (विक्र.) (साहित्य अकादेमी)

७ शाकुन्तल (शाकु.) (संपादक प्रो. अ. बा. गजेन्द्रगडकर)

८ कालिदास–ग्रंथावली (अखिल भारतीय विक्रमपरिषद्, काशी)

(आ) हिन्दी अनुवाद

१ कालिदासग्रंथावली (अनूदित) (ग्रंथ १–१०) हिमालय बुक डिपो, हरद्वार.

२ कुमारसंभव, रघुवंश, मेघदूत और ऋतुसंहार—लाला सीताराम कृत (रामनारायणलाल, प्रयाग).

३ मेघदूत—पं. केशवप्रसाद मिश्र कृत (इंडियन प्रेस अलाहाबाद).

४ शाकुन्तल—मोहन राकेश.

५ रघुवंश—इन्द्र विद्यावाचस्पति.

६ मालविकाग्निमित्र—प्र. द. शास्त्री.

(इ) समालोचनात्मक ग्रन्थ

१ कालिदास—चन्द्रबली पाण्डेय.

२ कालिदास और उनकी कविता—पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी.

३ कालिदासकी निरंकुशता और उसका निराकरण—पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी और जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी (गंगापुस्तकालय).

४ कालिदास : जीवन, कला और कृतित्व—जयकृष्ण चौधरी.

५ महाकवि कालिदास—रमाशंकर त्रिपाठी.

६ कालिदास : जीवन और साहित्य—भगवतशरण उपाध्याय.

७ राष्ट्रकवि कालिदास—सीताराम सहगल.

८ मेघदूतविमर्श—कन्हैयालाल पोद्दार.

९ मेघदूत—डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल.

१० मेघदूत में रामगिरि अर्थात् रामटेक—वा. वि. मिराशी.

(ई) संस्कृत ग्रन्थ

१ बुद्धचरित (बुद्ध.) अश्वघोषकृत (सं. प्रो. कोवेल).

२ सौन्दरनन्द " (सं. जॉन्स्टन्).

३ भासनाटकचक्रम्—सी. आर. देवधर.

४ सेतुबन्ध, प्रवरसेनकृत (निर्णयसागर प्रेस).

५ भरतचरित, श्रीकृष्णकविकृत (त्रिवेंद्रम संस्कृत सीरिज).

६ काव्यमीमांसा (का. मी.) राजशेखरकृत (गायकवाड ओरिएंटल सीरिज)

७ कामसूत्र (का. सू.) वात्स्यायनकृत (निर्णयसागर प्रेस).

८ ज्योतिर्विदाभरण.

९ शिवपुराण.

१० मत्स्यपुराण

११ पद्मपुराण.

१२ कथासरित्सागर, सोमदेवकृत (निर्णयसागर प्रेस).

(उ) अन्य उपयुक्त ग्रन्थ

1 K. C. Chattopadhyaya: *The Date of Kalidasa.*

2 Lachhmidhar Kalla: *The Birth-place of Kalidasa.*

3 Aravinda Ghose: *Kalidasa.*

4 S. C. De: *Kalidasa and Vikramaditya.*

5 Hillebrandt: *Kalidasa* (German).

6 S. S. Bhave: *Kalidasa.*

7. S. A. Sabnis: *Kalidasa.*

8. R. D. Karmarkar: *Kalidasa.*

9. T. G. Mainkar: *Kalidasa: His Art and Thought.*

10. H. D. Sharma: *Padmapurana and Kalidasa*

11. A. B. Keith: *The Sanskrit Drama.*

12. A. B. Keith: *A History of Sanskrit Literature.*

13. S. K. De: *History of Sanskrit Literature.*

14. M. Winternitz: *Geschichte der indischen Litteratur* (German).

15. Rapson: *Cambridge History of India, Vol. 1 (Ancient India).*

16. R. C. Majumdar: and A. D. Pusalkar: *History and Culture of the Indian People,* Vol. III *(The Classical Age).*

17. H. C. Chakladar: *Social Life in Ancient India.*

18. R. G. Bhandarkar: *Vaishnavism, Saivism and Minor Religious Systems.*

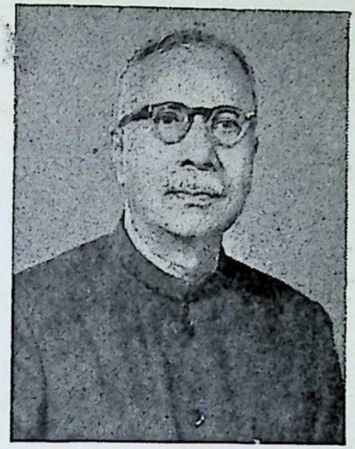
19. V. V. Mirashi: *Studies in Indology,* Vol. I.

20. Fleet: *Gupta Inscriptions* (C. I. I., Vol. III).

21. V. V. Mirashi: *Inscriptions of the Vakatakas* (C.I.I., Vol. V).

22. वा. वि. मिराशी–वाकाकट राजवंशका इतिहास तथा अभिलेख.

सूची



महामहोपाध्याय डॉ. वासुदेव विष्णु मिराशी,
एम्. ए., डी. लिट्.

—मॉरिस कॉलेज, नागपुर और विदर्भ महाविद्यालय, अमरावतीके भूतपूर्व प्रिन्सिपल।

—नागपुर युनिवर्सिटीके संस्कृत, प्राकृत विभागके भूतपूर्व अध्यक्ष और फॅकल्टी ऑफ आर्ट्स्‌के भूतपूर्व डीन।

—प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृतिके सुप्रसिद्ध विद्वान और नागपूर युनिवर्सिटीके उस विभागके भूतपूर्व अध्यक्ष।

—मुख्य मुख्य अंग्रेजी अन्वेषण पत्रिकाओंमें प्रकट हुए अढाई सौसे अधिक लेखोंके लेखक।

—'कल्चुरि-चेदि संवत्‌के उत्कीर्ण लेख' और 'वाकाटकोंके उत्कीर्ण लेख' नामक बृहत् अंग्रेजी ग्रन्थोंके लेखक (भारतीय पुरातत्त्व विभागद्वारा प्रकाशित)।

—'संशोधन मुक्तावली' के पाँच विभागोंके लेखक जिसमें अनेक मराठी अन्वेषण लेखोंका संग्रह है।

—'कल्चुरि नृपति और उनका काल' तथा 'वाकाटक नृपति और उनका काल' नामकी मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद और नागपूर युनिवर्सिटीद्वारा प्रकाशित दो व्याख्यानमालाओंके व्याख्याता।

—प्रस्तुत 'कालिदास' ग्रन्थ के लेखक, जिसकी विद्वानों और समीक्षकोंने मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की है।

महामहोपाध्याय मिराशीजी के कालिदाससंबंधी सभी विषयोंपर व्यापक रूप से सर्वांगीण विवेचन करनेवाले ग्रंथ का यह हिन्दी रूपान्तर है, जो कि मूल पुस्तकका-सा आनंद देता है। अनुवाद की पूर्ण सफलता इसीसे परिलक्षित होती है। इस ग्रंथ की सबसे बडी और महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें कालिदाससंबंधी पिछले दस-पंद्रह वर्षों के भी शोध का विवेचन किया गया है। इसके निष्कर्ष इसीलिए लगभग सर्वमान्य होंगे। प्रत्येक मत को लेकर उसके पक्षविपक्ष के तर्कों की परख तथा विद्वत्तापूर्ण निष्कर्ष इस पुस्तकके विशेष गुण हैं।

× × ×

इस ग्रंथकी अपनी एक विशेषता है लेखकका बृहत् ऐतिहासिक दृष्टिकोण। और उसने कालिदाससंबंधी अध्ययन में विशेष सहायता प्रदान की है। विशेषकर वाकाटक सम्राटों के अन्तरंग संबंध तथा विभिन्न स्थानों पर पाये गये शिलालेखों एवं प्राचीन ग्रंथोंने इस अध्ययनको बडाही महत्त्वपूर्ण तथा पूर्ण बना दिया है।

× × ×

हमारे मन से यह पुस्तक प्रत्येक पुस्तकालयमें रहनी चाहिए तथा प्रत्येक संस्कृत के विद्यार्थी को पढ़नी चाहिए।

विनयमोहन शर्मा
(प्रा. शुकदेवप्रसाद तिवारी)